सस्ता-साहित्य-मण्डल

अठारहवाँ ग्रन्थ

निवेदन

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य तथा अध्यापक जे० सी० कुमारप्पा द्वारा सम्पादित एवं 'नवजीवन'-कार्यालय, (अहमदाबाद) द्वारा अंग्रेज़ी में प्रकाशित Nation's voice के उत्तरार्द्ध का यह हिन्दी-अनुवाद पाठकों की भेंट है।

गोलमेज़-परिषद् में महात्माजी ने जो भाषण दिये थे, Nation's voice के पूर्वार्द्ध में उनका सङ्कलन है। उसका हिन्दी अनुवाद 'राष्ट्र-वाणी' के नाम से अलग प्रकाशित है। प्रस्तुत पुस्तक में जगह-जगह पर इन भाषणों का उल्लेख हुआ है। अतः इसके पाठकों को 'राष्ट्र वाणी' का अपने पास रखना आवश्यक हो जाता है। उसके बिना यह पुस्तक अधूरी-सी मालूम होगी। अतः आशा है पाठक उसे भी मँगाकर पूरा लाभ उठावेंगे।

मन्त्री

दो शब्द

गाँधी-इर्विन-समझौते के बाद, राष्ट्रीय-महासभा-(काँग्रेस) द्वारा एकमात्र प्रतिनिधि निर्वाचित होकर, महात्मा गाँधी गोलमेज-परिषद् में सम्मिलित होने इंग्लैण्ड गये थे। वहाँ परिषद् में उन्होंने जो भाषणादि दिये, वे 'राष्ट्र-वाणी' के नाम से पुस्तक-रूप में पृथक् प्रकाशित हो चुके हैं। किन्तु इतने ही पर उनका कार्य समाप्त नहीं हो जाता। सच पूछा जाय तो, यह तो एक प्रकार से उनका गौण कार्य था। वह परिषद् से कोई विशेष आशा लेकर नहीं गये थे। उनका वास्तविक कार्य तो परिषद् से बाहर था। इसलिए परिषद् से बचा हुआ उनका सारा समय लन्दन और उससे बाहर के आस-पास के प्रमुख व्यक्तियों से भेंट करने एवं संस्थाओं में सम्मिलित होकर भारत के सम्बन्ध में फैली हुई गलतफहमी को दूर कर राष्ट्रीय-महासभा के दावे को सिद्ध करने में ही व्यतीत होता था। उनका यह कार्य परिषद् के कार्य से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण था। श्री महादेवभाई देसाई इस सबका विवरण प्रति-सप्ताह 'यंग इण्डिया' में प्रकाशनार्थ भेजते रहते थे। इससे पूर्व, जहाज़ पर, जो-जो मनोरंजक घटनायें घटीं, मार्ग में स्थल-स्थल पर गाँधीजी का जो अपूर्व स्वागत हुआ, उसका मनोरंजक विवरण भी यथासमय 'यंग इण्डिया' में

प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत पुस्तक में उन्हीं सबका सङ्कलन है। 'हिन्दी नवजीवन' में संयुक्त सम्पादक की हैसियत से इनके हिन्दी-अनुवाद का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। परिस्थितिवश मेरे बाहर रहने से आदरणीय बन्धु मोहनलालजी भट्ट को भी इस सम्बन्ध में काफ़ी काम करना पड़ा था। स्थानीय दो-एक मित्रों से भी इसमें मुझे सहयोग मिला है। अतः इस सबके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

अजमेर
ज्येष्ठ पूर्णिमा, १९८९

विनीत—
शङ्करलाल वर्मा

सागर की लहरों पर से—

यह एक प्रकार से बिलकुल जादू सा ही हुआ, अन्यथा गाँधीजी के सचमुच जहाज पर सवार होने से पहले किसीको यह विश्वास न हुआ होगा कि वह विलायत जा रहे हैं।

मेघाणी का संदेश

अधगोरे पत्रों के शिमला के संवाददाताओं ने सुख की साँस ली होगी कि 'शान्ति में विघ्न डालने वाला,' 'असुविधाजनक व्यक्ति', 'दुःखदायी आदमी' रवाना हो गया—और, प्रायः ऐसे ही भाव अफसरों के भी हुए होंगे। सतत जागरूकता ऐसी चीज है, जिसे कोई सत्ताधारी सहन नहीं कर सकता। लेकिन गाँधीजी के लिए तो यह सतत जागरूकता ही जीवन का मूल श्वास है। किसीको यह न समझ बैठना चाहिए कि चूँकि गाँधीजी कुछ सप्ताहों के लिए गैरहाजिर रहेंगे, इसलिए इस जागरूकता अथवा सावधानी में शिथिलता आ जायगी। गत २७ अगस्त को गृहसचिव (होम सेक्रेटरी) को लिखा हुआ पत्र, जो कि दूसरे समझौते का भाग है, कॉंग्रेस की सतत जागरूकता अथवा सावधानी के वचन और गाँधीजी के इन भावों के सार्व-

जनिक वक्तव्य के सिवा और कुछ नहीं है कि यदि वह जा रहे हैं, तो सशङ्क और कम्पित हृदय से जा रहे हैं ।

+ + +

'राजपूताना' जहाज के बंबई से रवाना होते समय गाँधीजी को बहुत से तार मिले । एक तार वायसराय सा० का था और बहुत से मित्रों और साथी कार्यकर्ताओं के थे, जिनमें उनकी यात्रा और उससे भी अधिक उनकी वापसी के शुभ होने की कामना की गई थी और उनकी ग़ैरहाज़िरी में झण्डे को ऊँचा रखने का वचन दिया गया था । दो ऐसे थे, जिनमें वास्तविक सूचना एवं प्रार्थना थी । एक में कहा गया था, 'ईश्वर आपके मार्ग को प्रकाशमान करें ।' दूसरे में कहा गया था, 'या तो आप विजयी होंगे अथवा भारी हानि उठावेंगे । ईश्वर आपको विजयी बनावे ।' किन्तु इस समय गाँधीजी जिस स्थिति में थे, उसका सच्चा और सुस्पष्ट चित्र तो, स्वयं गाँधीजी के शब्दों में, गुजराती की वह कविता थी, जो हमारे नवयुवक कवि श्री मेघाणी ने उनकी बिदाई के उपलक्ष्य में लिखी थी । यदि मैं उसका सार देने में सफल भी होऊँ, तो भी उसके स्वारस्य और आन्तरिक सद्भावनायुक्त उद्‌गार को अनुवाद में परिणत करना असम्भव होगा । ऐसा मालूम होता है, मानों १३ अगस्त के समझौता-भङ्ग के बाद से गत १५ दिन तक गाँधीजी के अन्तस्थल में उठनेवाले विचारों और भावनाओं को

कवि की आत्मा अत्यन्त निकट से देखती रही है। कवि कहता है—"आपने अनेक कड़वी घूँटें पी हैं, जाइए, अब विष का अंतिम प्याला पीने के लिए और जाइए। आपने असत्य का सत्य से, घृणा का प्रेम से और कपट का सरल व्यवहार से मुक़ाबला किया है। आपने अपने घोरतम शत्रु तक का अविश्वास करने से इनकार कर दिया है। तब जाइए और वह कड़वी घूँट और पीजिए, जो आपके लिए सुरक्षित रक्खी है। हमारे कष्ट और आपत्तियों के ख़याल से आपको हिचकिचाने की ज़रूरत नहीं (चटगाँव की बरबादी की ख़बर धीरे-धीरे आ रही है)। आपने हमें प्रसन्नतापूर्वक कष्ट-सहन करना सिखाया है। आपने हमारे कोमल हृदय को फ़ौलाद-सा कठोर बना दिया है। ऐसी दशा क्या चिन्ता, यदि आप ख़ाली हाथ लौटें? केवल आपका जाना ही काफ़ी है। जाइए, और मानव समुदाय को अपना प्रेम और भ्रातृत्व का सन्देश सुनाइए। मानवजाति रोगों से कराह रही है और शान्ति के मरहम के लिए, जो कि वह जानती है, आप अपने साथ ले जायँगे, अत्यन्त चिन्तातुर है।" ×

× मूल गुजराती कविता इस प्रकार है:—

"अणखूट विश्वासे वह्युं जीवन तमारूँ,
धूर्तो, दगाळबाजो थकी पड़ियुं पनारूँ;
शत्रु तणे खोळे ढळी सुखथी सूनारूँ,
आ आखरी ओसीकडे शिर सोंपवुं बापू!

गाँधीजो ने एक मित्र को जहाज में सबसे नीचे दर्जे की पाँच जगहें तय कर लेने के लिए तार दे दिया था। जहाज में सबसे नीचा दर्जा सेकेंड क्लास था, इसलिए हम दूसरे दर्जे की कोठरी में रहे। लेकिन ज्यों ही गाँधी-जी को अवसर मिला, उनकी गृद्ध-दृष्टि हमारी कोठरी की चीजों की जाँच-पड़ताल करने लगी। उन्होंने कहा, भाग्य से हम दूसरे

हमारा सामान

कापे भले गर्दन, रिपु-मन मापवुँ बापू !
जा बाप ! माता आखलाने नाथवाने !
जा विश्वहत्या ऊपरे जल छाँटवाने !
जा सात सागर पार सेतु बाँधवाने !
घनघोर वननी वाटने अजवाळतो बापू,
विकराल केसरियाळने पंपाळतो बापू,
चाल्यो जजे ! तुझ भोमियो भगवान छे बापू !
'छेल्लो कटोरो' झेर नो पीवा जजो बापू !
सुर असुर आ नवयुगी उदधि वलोणे
शी छे गतागम रत्नना कामी जनोने ?
तू बिना शंभू ! कोण पीशे झेर दोणे ?
हैया लगी गळवा गरल झट जावरे बापू !
ओ सौम्य-रौद्र ! कराल कोमल ! जावरे बापू !
कहेशे जगत-जोगी तणा शूँ जोग खूट्यां ?
दरिया गया शोषाई ? शुं घन नीर खूट्यां ?
शूं आभ सूरज-चन्द्रमांना तेल खूट्यां ?
देखी अमारां दुःख नव अटकी जजो बापू।
सहियूँ घणूँ, सहेशूं वधू-नव थड़क जो बापू।

दर्जे की कोठरी में हैं, किन्तु मान लो यदि हम निचले दर्जे के मुसाफिर होते, तो अपने साथ के इतने मनों सामान की हम किस तरह व्यवस्था करते ? एक जवाब था, 'कुछ ही घंटों में हमें तैयार होना पड़ा था।' दूसरा जवाब था, 'हमने ये सब सूटकेस उधार लिये हैं और वापस घर पहुँचते ही हम ये सब लौटा देंगे।' एक तीसरा जवाब यह था कि कई मित्रों ने अपने पास फ़ालतू

चाबूक, जप्ती, दण्ड, डण्डा मारनां,
जीवतां कब्रस्तान कारागारनां,
थोड़ा घणा छंटकाव गोळीबारना—
ए तो बधांय झरी गयां कोठे पड़यां बापू।
फूल समां अम हैड़ां तमें लोढे घड़यां बापू।
शूं थयुं, त्यांथी ढींगलूं लावो न लावो;
बोसा दईशुं, भले खाली हाथ आवो !
रोपशुं तारे कण्ठ रस बसती भु जाओ !
दुनियां तणे मोर्ये जरी जई आवजो बापू !
हमदर्दोना संदेशड़ा दई आवजो बापू !
जग मारशे महेणां—न आव्यो आत्मज्ञानी !
नाव्यो गुम नी पोल पोतानी पिछानी !
जग प्रेमी जोयो ! दास दुनियानी न जाणी !
आभार आनन्द जात आकुल थई रही बापू !
तारी तबीबी काज ए तलबी रही बापू।
छेल्लो कटोरो झेरनो आ पी जजो बापू
सागर पीनारा ! अंजलि नव ढोळजो बापू !

पड़ी हुई चीज़ों की भरमार कर दी और उन्हें रोकने का हमारे पास कोई उपाय न था। एक जवाब यह भी था कि जानकार मित्रों ने हमें कुछ आवश्यक चीज़ों से लैस रहने की सलाह दी थी और इसलिए उन्होंने जो कुछ कहा उसे करने के सिवा और कोई चारा न था।

इन जवाबों ने हमारे मामले को और भी ख़राब कर दिया। उन्हें इनमें विशेष बहानेबाज़ी मालूम हुई और वह उत्तेजित हो गये। देश के दरिद्रतम समुदाय के प्रतिनिधि के साथी अपने साथ ऐसे बहुमूल्य सूटकेस रक्खें, कोई बात नहीं, चाहे वे भेंट में आये अथवा उधार लिये क्यों न हों, इसी ख़याल से उन्हें बड़ा आघात पहुँचा; और इसीलिए हममें से जो कोई भी उनके सामने आया, उसे उनकी कड़ी फटकार सुननी पड़ी—"तैयारी के लिए समय के अभाव का बहाना करना कुछ अच्छा नहीं। किसी तैयारी की ज़रूरत न थी। उचित ही नहीं बल्कि यह अधिक अच्छा होता कि जो कुछ भी चीज़ें आईं, सबके लिए तुम मित्रों से कह देते कि हमें इन सब की कुछ भी आवश्यकता नहीं है, और अपने लिए जयराजानी के भंडार से कुछ गरम और सूती थान ले आते। लेकिन तुम तो जो कुछ आया सब लेते गये, मानों तुम्हें लन्दन में पाँच वर्ष रहना हो! मैंने तुमसे कह दिया था, कि हमें जिस किसी चीज़ की आवश्यकता होगी वहाँ मिल सकेगी और लौटने

पर हम उसे ग़रीबों के लिए छोड़ते आवेंगे। तुमने ये सूटकेस वापस करने का वादा कर लिया है, इससे तुम्हारे अपराध में कमी नहीं हो सकती। मैंने यह कभी ख़याल नहीं किया था कि तुम ये साथ रख रहे हो; लेकिन तुम लोगों ने बिना किसी हिचकिचाहट के इन चमड़े के ट्रंकों को स्वीकार कर लिया, इससे अपनी ग़रीबी और अपरिग्रह की प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या धारणा है, इसका मुझे ख़याल हो आया। तुम कहते हो कि इनमें की कुछ चीजें पुरानी हैं और मित्र के पास फ़ालतू पड़ी हुई थीं। इससे तुम या तो खुद अपनेको धोखा दे रहे हो, या मुझे धोखे में डालना चाहते हो। यदि ये फ़ालतू होतीं, तो उन्होंने इन्हें फेंक दिया होता। उन्होंने ये तुम्हें कभी न दी होतीं, यदि तुमने उनसे यह न कहा होता कि हमें इनकी ज़रूरत है। और यह कहना कि तुमने जानकारों की सलाह के अनुसार यह सब कुछ किया, बेहूदगी है। अगर तुमने उनकी सलाह ली, तो तुम्हें उनके साथ ही रहना चाहिए था। यहाँ तुम मेरे साथ हो और इसलिए मेरी सलाह के अनुसार चलना चाहिए।" इस तरह कई दिनों तक यह फटकार पड़ती रही। सौभाग्य से हम बहुत अच्छे प्रवासियों में थे, किन्तु यह फटकार किसीको भी खिन्न अथवा बीमार कर देने के लिए काफ़ी थी। इससे हमने यह अच्छा उपाय सोच निकाला कि हमें जिन चीज़ों की ज़रूरत

है, और जिनकी जरूरत नहीं है, उनकी छँटनी कर डालें और अनावश्यक चीजों को अदन से वापस लौटा दें। और इसलिए यह हमारा पहला काम हो गया।

इसीमें तीन दिन लग गये और चौथे दिन हमने अपनी सूची निरीक्षण के लिए पेश की। उन्होंने कहा, 'अब मैं तुम्हारी सूची में दख़ल न दूँगा, यद्यपि मैं यह यह चाहूँगा कि लन्दन की गलियों में तुम्हें उसी तरह घूमता देखूँ, जिस तरह कि तुम लोग शिमले में घूमा करते हो। यदि तुम शिमले में एक धोती, एक कुर्ता और एक जोड़ी चप्पल पहन कर घूम सकते हो, तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि लन्दन में ऐसी कोई बात नहीं है, जो तुम्हारे इस तरह घूमने में रुकावट डाल सके। यदि मैं देखूँगा कि तुम पर्याप्त कपड़े नहीं पहने हुए हो, तो मैं स्वयं तुम्हें सावधान करूँगा और तुम्हारे लिए अधिक ऊनी कपड़े प्राप्त करूँगा। लेकिन तुम किसी ऐसे काल्पनिक भय के कारण कुछ भी न पहनो कि यदि तुम यह न पहनोगे तो वहाँ के लोग दुःखित होंगे। विश्वास रक्खो कि वहाँ के लोग तो तुम्हारे अथवा मेरे पास बढ़िया सूटकेस देखकर दुःखित होंगे।' एक कम्पनी की तरफ़ से भेंट-स्वरूप दिये गये चमड़े के एक बेग की तरफ इशारा करते हुए उन्होंने कहा—'यदि तुम हिन्दुस्थान में खादी के झोले से काम चला सकते हो, तो इंग्लैण्ड में क्यों नहीं

चला सकते ? और क्या तुम समझते हो कि वहाँ के आदमी ऐसे सुन्दर बेगों में ही अपने कागज़-पत्र ले जाते हैं ? हर्गिज़ नहीं। सम्भव है लोम्बर्ड स्ट्रीट में कुछ मालदार पूँजी-पतियों, व्यवसाइयों अथवा बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों के हाथ में तुम ऐसे बेग देखो, वे उनमें महत्वपूर्ण सरकारी कागज़-पत्र ले जाते हुए दिखाई दें, लेकिन तुम्हारे हाथ में ये हास्यास्पद मालूम होंगे।' एक मित्र ने बड़े आग्रह से एक दुर्बीन दिया था। उसकी भी वही दशा हुई, जब उसपर वही साधारण कसौटी लगाई गई, कि हमें ऐसी कोई चीज़ न रखनी चाहिए, जो साधारण अवस्था में हम न रख सकते हों। लेकिन इस तरह की बातों से काफ़ी मनोरञ्जन हुआ और गाँधीजी का क्रोध शान्त हो गया। एक मित्र ने कृपा कर जहाज पर गाँधीजी के इस्तैमाल के लिए एक मोड़ कर रक्खी जा सकने योग्य, अमेरिका की बनी हुई, सफ़री चारपाई दी थी। उसे देखकर गाँधीजी ने कहा—'ओह, क्या यह सफ़री चारपाई है ? मैं तो समझता था कि यह हाकी का सेट है ! अच्छा, इस हाकी-सेट को भी जाने दो। क्या तुमने कभी मुझे इसका उपयोग करते देखा है ?' इसी क्षण हमारे और उनके कष्ट को दूर करने के लिए श्री शुएब कुरेशी आ पहुँचे और तुरन्त ही गाँधीजी ने मज़ाक करते हुए उनसे कहा—"अच्छा शुएब, यदि नवाब साहब (भोपाल) की पार्टी में कोई काश्मीरी दुशाले

खरीदना चाहते हों, तो मुझे बताओ। मित्रों ने मेरे लिए जो बहुत से शाल दिये हैं, मैं उनकी दूकान खोल सकूँगा। एक मित्र ने मुझे ७००) का जो बहुमूल्य शाल दिया है, वह इतना मुलायम और बारीक है कि एक अँगूठी के बीच में से निकल सकता है। कदाचित् उन्होंने यह ख़याल किया होगा कि यह दिखाने के लिए कि करोड़ों भारतीयों का मैं कितना अच्छा प्रतिनिधित्व करता हूँ, मैं यह शाल ओढ़कर गोलमेज़-परिषद् में जाऊँगा! अच्छा हो, यदि बेगम साहबा इस बहुमूल्य शाल से मुझे मुक्त करें और इसके बदले ग़रीबों के उपयोग के लिए मुझे ७०००) रुपये दें। ग़रीबों के एकमात्र प्रतिनिधि के लिए यही सबसे उपयुक्त है।"

यह फटकार अनुपयुक्त नहीं थी, यह बात इसीसे निश्चित रूप से सिद्ध हो जायगी कि इसके परिणामस्वरूप हमें जो छँटनी करनी पड़ी, उससे हम कम-से-कम सात सूटकेस अथवा केबिन ट्रंक अदन से वापस लौटा कर उनसे छुट्टी पा गये।

समुद्र क्षुब्ध है। हममें से अधिकांश गाँधीजी से, जिनसे बढ़कर 'राजपूताना' जहाज पर शायद और कोई नाविक नहीं है,

उत्तम नाविक

कोई गम्भीर बात या बहस करने के लिए तैयार नहीं है। सेकेण्ड क्लास की सतह पर उन्होंने एक कोने में अपने लिए जगह चुन ली है, और वे

अपने दिन का अधिकांश और सारी रात वहीं बिताते हैं। उस दिन बिड़लाजी ने उनसे कहा, 'मालूम होता है, हम लोगों से पिण्ड छुड़ाने के लिए आपने जानबूझ कर यह जगह चुनी है। हमारे लिए तो प्रार्थना के समय भी कुछ मिनट भी यहाँ बैठना कठिन प्रतीत होता है।'

लेकिन हिन्दुस्थानी मुसाफिरों की काफ़ी संख्या ने अपनी समुद्री बीमारी से छुटकारा पाना शुरू कर दिया है, जिससे कि भोजन के कमरे अब पूरे भर जाते हैं, और २२ यात्री कल शाम की प्रार्थना में सम्मिलित हुए थे। गाँधीजी ने अपने दैनिक कार्य-क्रम में कोई परिवर्त्तन नहीं किया है। अपने नियमित समय पर वह सोते और उठते हैं और हमेशा की भाँति ही काम करते हैं। यहाँ मुझे यह कहना ही होगा कि न सिर्फ़ गाँधीजी के प्रति बल्कि उनके सब साथियों के साथ, जो कि खादी का कुर्ता, धोती

जहाज के कर्मचारी

और टोपी पहने हुए सारे जहाज़ में धमा-चौकड़ी मचाये रहते हैं, जहाज़ के सब अधि-कारियों का व्यवहार न केवल असाधारण बल्कि अत्यधिक शिष्टतापूर्ण रहा है। पी० एण्ड ओ० जहाजी कम्पनी के खिलाफ हिन्दुस्थानी मुसाफिरों की रंगभेद और जातीय पक्षपात की जो अनेक शिकायतें आप सुनते हैं, वे किसी तरह इस यात्रा के समय इस जहाज से गायब हो गई दिखाई देती हैं।

[२]

बम्बई से ठीक पश्चिम की तरफ़ के १,६६० मील दूर थका देने वाले समुद्री सफ़र के बाद, विश्राम का पहला बन्दरगाह

अदन

अदन है। नगर ज्वालामुखी चट्टानों का समूह है—नगर का केन्द्र भाग अभी तक 'क्रेटर' (ज्वालामुखी का मुख) कहलाता है और यात्री को जहाज पर से ही मछलियों के बड़े-बड़े ढेर और शहर के चारों ओर की वृक्षहीन, कोयले-सी काली चट्टानें दिखाई देने लगती हैं। कहा जाता है कि सदियों से इसपर अनेक शासकों ने शासन किया, और अब भी बयान किया जाता है कि जिस समय सन् १८३९ में इसपर अधिकार किया गया यह एक मछली के शिकार का छोटासा गाँव था, जिसमें मुश्किल से ६०० प्राणी रहते थे। यदि विश्वस्त विवरण मालूम हो सके तो इसके कब्जा किये जाने की कथा भी बड़ी मनोरंजक होगी और कदाचित् साम्राज्यवादी लुटेरों की उन्नीसवीं सदी की लूट में और वृद्धि करेगी। अवश्य ही अंग्रेज़ी स्कूल के विद्यार्थी को तो यही पढ़ाया जाता है कि लाहेज का सुलतान, जो कि सालाना ख़िराज के तौर पर अदन छोड़ने के लिए तैयार हो गया था, अपने वादे से फिर गया और एक अंग्रेजी जहाज पर हमला करके उसे लूट लिया। नतीजा यह हुआ कि

किलों पर धावा करना जरूरी हो गया और तदनुसार सन् १८३९ में उनपर आक्रमण करके कब्जा कर लिया गया। लेकिन सच बात तो यह है कि लाल महासागर—संसार के सबसे बड़े जल-मार्ग—पर अपना निश्चित अधिकार बनाये रखना जरूरी था, और यह तबतक सम्भव न था, जबतक अदन और पेरिम में एक जबर्दस्त फौज न रक्खी जाती। पेरिम अदन से सुदूर पश्चिम की ओर १०० मील के फासले पर एक द्वीप है, जिसपर इतनी सख्ती से निगरानी रक्खी जाती है कि अदन के रेजिडेण्ट की स्वीकृति बिना वहाँ कोई भी नहीं ठहर सकता।

शहर की आबादी ५२,००० है, जिसमें ३१,००० अरब, ६,५०० सोमाली और ५,५०० हिन्दुस्थानी हैं, जिनमें अधिकांश बम्बई के गुजराती और कच्छी हैं। इन कुल ९२ वर्षों से अदन अभी तक बम्बई-सरकार के अधीन था, लेकिन अब एक प्रस्ताव इसे भारत-सरकार के अधीन कर देने का चल रहा है। अनेक स्पष्ट कारणों से अदन के भारतीय इस परिवर्तन का विरोध कर रहे हैं। विरोध का एक सर्वथा स्वाभाविक कारण यह है कि यहाँ के अधिकांश निवासी बम्बई के हैं और उनका व्यापार-सम्बन्ध भी बम्बई से ही है, इसलिए उनके लिए सबसे अधिक सुविधा बम्बई के अन्तर्गत रहने में ही है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि यदि बम्बई को प्रान्तीय स्वतन्त्रता के अधिकार मिलें, जो कि

अब अवश्य ही मिलेंगे, तो अदन उसके लाभ से वञ्चित न किया जाना चाहिए। एक और भी कारण है और वह यह कि यदि अदन केन्द्रीय सरकार के सुपुर्द कर दिया गया तो यह बहुत सम्भव है कि वह एक बन्दोबस्ती ज़िला या अर्द्धफ़ौजी क्षेत्र बना दिया जायगा और इस प्रकार वहाँ का सारा सार्वजनिक जीवन नष्ट हो जायगा।

यहाँ के हिन्दुस्थानी गाँधीजी तथा गोलमेज़-परिषद् के दूसरे प्रतिनिधियों का स्वागत करना चाहते थे, और इसके लिए राष्ट्रीय

राष्ट्रीय झण्डा

झण्डा साथ रखना चाहते थे। किन्तु रेज़िडेण्ट ने राष्ट्रीय झंडा साथ रखने की इजाज़त न दी और जबतक स्वयं गाँधीजी ने इस स्वागत-समिति के अध्यक्ष श्री फ़ाम-रोज़ कावसजी को यह न सुझाया, कि रेज़िडेण्ट से टेलीफ़ोन द्वारा कहा जाय कि वह (गाँधीजी) इन शर्तों के रहते अभिनन्दन-पत्र के स्वीकार करने की कल्पना तक नहीं कर सकते, और जब कि सरकार और काँग्रेस में सन्धि है, तब कम से कम सन्धि के अनुसार सरकार को राष्ट्रीय झण्डे का विरोध नहीं करना चाहिए, तबतक किसी को भी रेज़िडेण्ट के इस कार्य का विरोध करने का साहस नहीं हुआ। यह दलील काम कर गई, और गाँधीजी को अभिनन्दनपत्र दिये जाने की जगह राष्ट्रीय झंडा फहराने की स्वीकृति देकर रेज़िडेण्ट ने इस अप्रिय स्थिति को बचा लिया।

दूसरी बात जो मैंने देखी वह यह थी कि यद्यपि अदन के भारत सरकार के अधीन किये जाने का प्रश्न कई दिनों से सामने था, फिर भी गाँधीजी को दिये गये अभिनन्दनपत्र में उस संबंध में एक शब्द तक न था। मैं इसका कारण अधिकारियों के भय के सिवा और कुछ नहीं समझता। किन्तु कुछ नवयुवक ऐसे हैं, जो बम्बई के महासभा के उत्साहप्रद वातावरण की कुछ चिनगारियाँ वहाँ ले गये हैं, और गुजरातियों के कारण, जो कि प्रत्यक्षतः आन्दोलन से परिचित रहे हैं, वहाँ काफी खादी दिखाई दी, हालांकि मैं नहीं कह सकता कि वह सब शुद्ध थी या नहीं।

इस स्थिति से गाँधीजी को महासभा का सन्देश सुनाने का मौक़ा मिल गया, और क्योंकि स्वागत की तैयारी में अरबों ने भी योग दिया था—स्वागत का अभिनन्दन-पत्र गुजराती और अरबी दोनों भाषाओं में पढ़ा गया था—इसलिए अरबों को भी वह अपना सन्देश सुना सके।

अभिनन्दन-पत्र का उत्तर और ३२८ गिन्नियों की थैली के लिए धन्यवाद देते हुए गाँधीजी ने कहा—

"आपने मेरा जो सम्मान किया है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मैं जानता हूँ कि यह सम्मान व्यक्तिशः मेरा या मेरे साथियों का नहीं है, वरन् महासभा का है, जिसका कि, ऐसी आशा है, मैं गोलमेज़ परिषद् में योग्य प्रतिनिधित्व करूँगा।

मुझे मालूम हुआ है कि अभिनन्दन-पत्र के इस कार्यक्रम में आपके सामने राष्ट्रीय झण्डे के कारण कुछ रुकावट थी। अब मेरे लिए तो हिन्दुस्थानियों की ऐसो सभा की, खास कर जब कि राष्ट्रीय नेता निमन्त्रित किये गये हों, कल्पना करना ही असम्भव है, जहाँ पर राष्ट्रीय झण्डा न फहराता हो। आप जानते हैं कि राष्ट्रीय झण्डे के सम्मान की रक्षा में बहुतों ने लाठियों के प्रहार सहे हैं और कइयों ने अपने प्राण तक दे दिये हैं, इसलिए आप राष्ट्रीय झण्डे का सम्मान किये बिना किसी हिन्दुस्थानी नेता का सम्मान नहीं कर सकते। फिर सरकार और महासभा के बीच समझौता हो चुका है, और महासभा इस समय उसका विरोधी दल नहीं वरन् मित्र-वत् है। इसलिए सिर्फ राष्ट्रीय झण्डे का केवल फहराना सहन कर लेना या उसकी इजाजत दे देना ही काफी नहीं है; वरन् जहाँ महासभा के प्रतिनिधि निमन्त्रित किये जायँ, वहाँ उसे सम्मान का स्थान देना चाहिए।

"महासभा की ओर से मैं आपको यह विश्वास दिलाता हूँ कि उसका उद्देश्य ऐसी ही स्वाधीनता प्राप्त कर लेना नहीं है,

विश्व-शान्ति और भारत

जिससे भारतवर्ष संसार के अन्य राष्ट्रों से अलग पड़ जाय; क्योंकि ऐसी स्वाधीनता तो आसानी से संसार के लिए खतरा बन सकती है। सत्य और अहिंसा के अपने ध्येय के कारण महासभा सम्भवतः

संसार के लिए ख़तरा हो भी, नहीं सकती। मेरा यह विश्वास है कि मानवजाति का पाँचवाँ भाग—भारत—सत्य और अहिंसा द्वारा स्वतन्त्र होने पर, समस्त मनुष्य-जाति की सेवा की एक जबर्दस्त शक्ति हो सकता है। इसके विरुद्ध आज का पराधीन भारत संसार के लिए एक ख़तरा है। वर्तमान भारत असहाय है और इसे सदैव लूटते रहनेवाले दूसरे देशों की ईर्षा और लालच को इससे उत्तेजना मिलती रहती है। लेकिन जब भारत इस तरह लुटने से इनकार कर अपना काम स्वयं अपने हाथ में लेने में काफ़ी समर्थ होगा, और अहिंसा और सत्य के द्वारा अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा, तब वह शान्ति की एक शक्ति होगा और अपने इस पीड़ित भूमण्डल पर शान्तिपूर्ण वातावरण पैदा करने में समर्थ होगा।

"इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि इस समारोह के संगठन में अरब और अन्य लोगों ने हिन्दुस्थानियों का साथ दिया।

अरबों को संदेश

शान्ति के सब उपासकों को शान्ति को चिर-स्थायी बनाने के काम में सहयोग देना ही चाहिए। मुहम्मद और इस्लाम की जन्मभूमि, यह महा-द्वीप, हिन्दू-मुसलिम समस्या के हल करने में मदद कर सकता है। मेरे लिए यह अस्वीकार करना लज्जा की बात है कि अपने घर में हम एक-दूसरे से अलग हैं। कायरता और

भय से हम एक-दूसरे का गला काटने को दौड़ते हैं। हिन्दू कायरता और भय के कारण मुसलमानों का अविश्वास करते हैं और मुसलमान भी वैसी ही कायरता और कल्पित भय से हिन्दुओं का अविश्वास करते हैं। इतिहास में शुरू से आखीर तक इस्लाम अपूर्व बहादुरी और शान्ति के लिए खड़ा है। इसलिए मुसलमानों के लिए यह गौरव की बात नहीं है कि वे हिन्दुओं से भयभीत हों। इसी तरह हिन्दुओं के लिए भी यह बात गौरवपूर्ण नहीं है कि वे मुसलमानों से, चाहे उन्हें संसार भर के मुसलमानों की सहायता क्यों न मिली हो, भयभीत हों। क्या हम इतने पतित हैं कि हम अपनी ही परछाईं से डरें ? आपको यह सुन कर आश्चर्य होगा कि पठान लोग हमारे साथ शान्तिपूर्वक रह रहे हैं। पिछले आन्दोलन में वे हमारे साथ कन्धे-से-कन्धा भिड़ा कर खड़े रहे और स्वतन्त्रता की वेदी पर अपने नौजवानों का उन्होंने खुशी-खुशी बलिदान किया। मैं आपसे, जो कि पैग़म्बर की जन्मभूमि के निवासी हैं, चाहता हूँ कि भारत के हिन्दू-मुसलमानों में शान्ति क़ायम रखने में आप अपने हिस्से का सहयोग दें। मैं यह नहीं बता सकता कि आप यह किस तरह करें, लेकिन जहाँ इच्छा होती है वहाँ कुछ रास्ता निकल ही आता है। मैं अरब के अरबों से चाहता हूँ कि वे हमारी मदद के लिए आगे बढ़ें और ऐसी स्थिति पैदा करने में हमारी सहायता करें,

जिसमें कि मुसलमान हिन्दुओं की और हिन्दू मुसलमानों की सहायता करना अपने लिए इज़्ज़त और सम्मान की बात समझें।

"बाक़ी के लिए मैं आपको अपने घरों में चर्खा और करघा चलाने का संदेश भी देना चाहता हूँ। कई ख़लीफ़ाओं ने अपना जीवन अनुकरणीय सादगी से बिताया है, और इसलिए यदि आप भी अपना कपड़ा स्वयं बना सकें, तो इसमें इस्लाम के विरुद्ध कोई बात न होगी। इसके अलावा शराबख़ोरी का भी सवाल है, जो कि आपके लिए दुहरा पाप होना चाहिए। यहाँ पर शराब की एक भी बूँद नहीं होनी चाहिए थी। लेकिन क्योंकि यहाँ दूसरी जातियाँ भी हैं, मैं समझता हूँ, अरब लोग उन्हें इस बात के लिए तैयार करेंगे कि अदन में शराब की सर्वथा बन्दी हो जाय। मैं आशा करता हूँ कि हमारा पारस्परिक सम्बन्ध दिन-ब-दिन बढ़ता रहेगा।"

आप चाहे समुद्र के बीचोंबीच हों, तो भी बाहरी दुनिया से आपका सम्बन्ध बराबर बना रह सकता है। आपको न

मार्ग में बधाइयाँ

केवल किनारे से ही वरन् एक जहाज़ से दूसरे जहाज तक से सन्देश मिल सकते हैं। बम्बई से रवाना होने के तीन दिन में ही हमें मित्रों के बधाई के अनुमंख्यक बेतार के तार मिले। 'सिटी आफ़ बड़ोदा' तथा 'क्रेकोविया' नामक जहाज़ से भारतीय यात्रियों

के बहुत से सन्देश मिले। इसी प्रकार करांची और बम्बई से भी बहुत से सन्देश आये। किन्तु विशेष कर सुखद आश्चर्य तो बरबेरा के भारतीयों के तार से हुआ। एक क्षण के लिए हम इस चक्कर में पड़ गये कि बरबेरा कहीं दूसरे जहाज़ों की तरह कोई जहाज़ तो नहीं है, जिससे कि हमें बेतार के बधाई के सन्देश मिले हैं। किन्तु अन्त में पता चला कि बरबेरा ब्रिटिश सोमलीलैण्ड का मुख्य नगर है और १८८४ से संरक्षक स्थान है।

और अब क्योंकि हम स्वेज़ के निकट पहुँच रहे हैं, हमें काहिरा के भारतीयों और मिश्र-निवासियों से थोड़ी-थोड़ी देर में बधाई के सन्देश मिल रहे हैं। इनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय श्रीमती बेगम

श्रीमती ज़गलुलपाशा

ज़गलुलपाशा का यह सन्देश था—"मिश्री सागर को पार करते हुए इस सुखद अवसर पर भव्य भारत के महान् नेता को मैं अपने हृदय के अन्तरतम से बधाई देती हूँ और भारतीय हितों की सफलता के लिए हृदय से कामना करती हूँ।" मिश्र के प्रमुख पत्र 'अल बलग़' का संदेश भी देने योग्य है। वह यह —"काहिरा का 'अल बलग़' पत्र आपके रूप में भारत को बधाई देता है और परिषद् में भारतीय हितों की सफलता चाहता है।"

जहाज़ पर के अपने मित्रों में सबसे पहले गिनती होनी चाहिए अपने घर—इंग्लैण्ड—जानेवाले अंग्रेज़ यात्रियों के बालक-

बालिकाओं की। बच्चों के न तो कोई लिंगभेद होता है, न रंगभेद। और हमारे जहाज़ पर सबसे अधिक आम बात गाँधीजी का अक्सर बच्चों के कान खींचना, पीठ ठोंकना और गाँधीजी के नाश्ते अथवा भोजन के समय इन बालकों का उनकी केबिन—कोठरी—में अपने छोटे सिर डालना या झाँकना है। "अंगूर या खजूर ?" यह मामूली प्रश्न है, जो उनसे पूछा जाता है, और वे प्रसन्नता से अंगूर की तश्तरी ले भागते हैं और तुरन्त खाली करके लौटा जाते हैं। मैंने इन्हें घूमते हुए चर्खे के चक्र को मिनटों तक बड़े आश्चर्य और विनोद के साथ देखते हुए देखा है। लेकिन इन मित्रों के सम्बन्ध में अधिक फिर कभी कहने की आशा करता हूँ।

गाँधीजी का चर्खा यहाँ सबके लिए एकसमान आकर्षण का विषय रहा है। यह आश्चर्य की बात है कि पुरुष, स्त्री सब

चर्खा

ज़िन्दगी भर कपड़े पहनते हैं, किन्तु रुई, कताई और बुनाई के सम्बन्धमें वे कितना कम जानते हैं ! इसलिए जब गाँधीजी और मीराबहन डेक (नौकास्तल) पर चर्खा चलाने बैठते तो उनसे अनेक मनोरंजक प्रश्न पूछे जाते। लेकिन चर्खे के प्रति इस तरह जो दिलचस्पी पैदा हुई है, वह सरसरी नहीं है। उच्च शिक्षा-प्राप्ति के लिए इंग्लैण्ड जाते हुए अनेक विद्यार्थियों ने मशीनों के इस युग में कताई की आर्थिक उपयोगिता और चर्खे के स्थान के सम्बन्ध में कई प्रश्न पूछे। लेकिन फिर भी यह देख

कर कि पिछले कुछ वर्षों से चर्खा हमारे जीवन की एक विशेषता हो गई है, उनका अज्ञान उल्लेखनीय है।

प्रातःकाल की प्रार्थना का समय इन मित्रों के आकर्षण के योग्य नहीं था, क्योंकि वह बहुत जल्दी होती है। लेकिन शाम की

प्रार्थना के सम्बन्ध में

प्रार्थना में हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिख आदि प्रायः सब हिन्दुस्थानी (जिनकी संख्या ४२ से अधिक है) और इक्के दुक्के अंग्रेज़ सम्मिलित होते हैं। इन मित्रों में से कुछ के प्रार्थना करने पर, प्रार्थना के बाद, गाँधीजी से पन्द्रह मिनट का वार्तालाप एक दैनिक कार्य बन गया है। प्रत्येक शाम को एक प्रश्न पूछा जाता है, और दूसरी शाम को गाँधीजी उसका उत्तर देते हैं। एक दिन एक मुसलमान युवक ने गाँधीजी से प्रार्थना के सम्बन्ध में सैद्धान्तिक विवेचन नहीं, वरन् प्रार्थना के फलस्वरूप उन्हें जो कुछ व्यक्तिगत अनुभव हुआ हो, वह बताने के लिए कहा। गाँधीजी ने इस प्रश्न को अत्यधिक पसन्द किया और पूर्ण हृदय से प्रार्थना के सम्बन्ध में अपने अनुभव का प्रवाह शुरू किया। उन्होंने कहा—"प्रार्थना मेरे जीवन की रक्षिका रही है। इसके बिना मैं बहुत पहले ही पागल हो गया होता। मेरी 'आत्म-कथा' से आपको मालूम होगा कि अपने जीवन में मुझे सार्वजनिक और खानगी सब तरह के कटु से कटु काफी अनुभव हुए हैं। उन्होंने मुझे क्षणिक निराशा में डाल दिया

था; लेकिन अन्त में मैं उससे अपने आपको बचा सका, और इसका कारण था प्रार्थना। अब मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि जिस अर्थ में सत्य मेरे जीवन का एक भाग रहा है, उस तरह प्रार्थना नहीं रही है। इसका आरम्भ सर्वथा आवश्यकता के कारण हुआ, क्योंकि जब कभी मैंने अपनेको कठिनाई में पाया, कदाचित् इसके बिना मैं सुखी न हो सका। और जितना अधिक मेरा ईश्वर में विश्वास बढ़ा, उतनी ही अधिक प्रार्थना के प्रति मेरी लगन बढ़ने लगी। इसके बिना जीवन सुस्त और नीरस मालूम होने लगा। दक्षिण अफ्रिका में मैं ईसाइयों की प्रार्थना में सम्मिलित हुआ था, लेकिन वह मुझे आकर्षित करने में असफल हुई। मैं प्रार्थना में उनका साथ न दे सका। उन्होंने ईश्वर की प्रार्थना की, किन्तु मैं ऐसा न कर सका, मैं बुरी तरह असफल हुआ। मैंने ईश्वर और प्रार्थना में अविश्वास करना शुरू कर दिया और आगे चलकर जीवन की एक खास अवस्था के सिवा, मैंने जीवन में किसी बात को असम्भव नहीं समझा। लेकिन उस अवस्था में मैंने अनुभव किया कि जिस तरह शरीर के लिए भोजन अनिवार्य है, उसी तरह आत्मा के लिए प्रार्थना अनिवार्य है। वस्तुतः भोजन शरीर के लिए इतना आवश्यक नहीं है, जितनी प्रार्थना आत्मा के लिए; क्योंकि शरीर को स्वस्थ रखने के लिए भूखे रहने या उपवास करने की अक्सर आवश्यकता हो जाती है, किन्तु

'प्रार्थना का उपवास' जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। सम्भवतः आप प्रार्थना का अतिरेक नहीं पा सकते। संसार के सबसे बड़े शिक्षकों में के तीन महान् शिक्षक बुद्ध, ईसा और मुहम्मद अपना यह अकाट्य अनुभव छोड़ गये हैं कि उन्हें प्रार्थना के द्वारा प्रकाश मिला और उसके बिना जीवित रह सकना सम्भव नहीं। पास का उदाहरण लीजिए। करोड़ों हिन्दू, मुसलमान और ईसाई अपने जीवन का समाधान केवल प्रार्थना में पाते हैं। या तो आप उन्हें झूठा कहेंगे या आत्मवंचक। तब मैं कहूँगा, कि यदि यह 'झुठाई' है, जिसने मुझे जीवन का वह मुख्य आधार दिया है, जिसके बिना मैं एक क्षण को भी जीवित नहीं रह सकता था, तो मुझ सत्य-संशोधक के लिए इस झुठाई में मोहकता है। राजनैतिक क्षितिज में निराशा के स्पष्ट दर्शन होने पर भी मैंने कभी अपनी शान्ति नहीं खोई। वस्तुतः मुझे ऐसे आदमी मिले हैं, जो मेरी शान्ति से ईर्षा करते हैं। मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि मुझे यह शान्ति प्रार्थना से ही मिलती है। मैं कोई विद्वान् व्यक्ति नहीं हूँ; किन्तु नम्रता-पूर्वक कहना चाहता हूँ कि मैं प्रार्थना का प्राणी हूँ। प्रार्थना के रूप के सम्बन्ध में मैं उदासीन हूँ। इस सम्बन्ध में अपने लिए नियम निश्चित करने में प्रत्येक स्वतन्त्र है। किन्तु कुछ सुचिन्हित मार्ग हैं, और प्राचीन शिक्षकों द्वारा अनुभूत मार्ग पर चलना अच्छा है। मैं अपना निजी अनुभव बता चुका हूँ। प्रत्येक को प्रयत्न करना और यह

अनुभव करना चाहिए कि दैनिक प्रार्थना के रूप में वह अपने जीवन में किसी नवीन वस्तु की वृद्धि कर रहा है।"

दूसरी रात को एक दूसरे युवक ने पूछा—"लेकिन गाँधीजी, आप तो ईश्वर के विषय में मूल से ही आस्तिकता अर्थात् विश्वास से आरम्भ करते हैं, जब कि हम नास्तिकता अर्थात् अविश्वास से आरम्भ करते हैं, ऐसी दशा में हम प्रार्थना किस तरह कर सकते हैं?"

गाँधीजी ने कहा—"ईश्वर के सम्बन्ध में आपमें विश्वास पैदा करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। कई बातें स्वयं-सिद्ध होती हैं और कई ऐसी होती हैं, जो सिद्ध हो ही नहीं सकतीं। ईश्वर का अस्तित्व रेखागणित के स्वयं-सिद्ध सत्यों की तरह है। यह सम्भव है कि हमारे हृदय से वह ग्रहण न हो सके। बुद्धि-ग्राह्यता की तो मैं बात ही न करूँगा। बौद्धिक प्रयत्न तो थोड़े-बहुत अंश में निष्फल ही हैं। बुद्धिगम्य युक्तियों अथवा दलीलों से ईश्वर के विषय में श्रद्धा पैदा नहीं हो सकती। क्योंकि यह वस्तु बुद्धि की ग्रहण-शक्ति के परे है। युक्तियाँ इसके सामने काम नहीं करतीं। ऐसी बहुत सी घटनायें हैं, जिनसे ईश्वर के अस्तित्व की दलीलें दी जा सकती हैं; लेकिन ऐसी बुद्धिगम्य दलीलों में उतर कर मैं आपकी बुद्धि का अपमान नहीं करना चाहता। मैं तो आपको यही सलाह दूँगा कि ऐसी सब बौद्धिक दलीलों को एक तरफ़ रख दीजिए और ईश्वर के सम्बन्ध में सीधी-सादी बालो-

चित श्रद्धा रखिए। यदि मेरा अस्तित्व है—यदि मैं हूँ, तो ईश्वर का भी अस्तित्व है—ईश्वर भी है। करोड़ों लोगों की तरह वह मेरे जीवन की एक आवश्यकता है। चाहे ये करोड़ों लोग ईश्वर के सम्बन्ध में व्याख्यान न दे सकें; किन्तु उनके जीवन से आप जान सकते हैं कि ईश्वर के प्रति विश्वास उनके जीवन का अङ्ग है। आपका यह विश्वास दब गया है, मैं केवल उसे सजीव करने के लिए आपसे कहता हूँ। इसके लिए, अपनी बुद्धि को चौंधिया देनेवाला और अपनेको चञ्चल बना देनेवाला जो बहुतसा साहित्य हमने पढ़ा है, उसे भुला देना होगा। ऐसी श्रद्धा से आरम्भ कीजिए, जिसमें नम्रता का भी आभास है और यह स्वीकृति भी है कि हम कुछ नहीं जानते—इस संसार में हम अणु से भी छोटे हैं। हम अणु से भी छोटे हैं, यह मैं इसलिए कहता हूँ कि अणु तो प्रकृति के नियमों की अधीनता में रहकर उनका पालन करता है, जब कि हम अपनी अज्ञानता के मद में प्रकृति के नियमों—कुदरत के क़ानून—का इनकार करते हैं—उनका भंग करते हैं। लेकिन जिनमें श्रद्धा नहीं है, उन्हें समझा सकने जैसी कोई बौद्धिक दलील मेरे पास है ही नहीं।

"एक बार ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार कर लिये जाने पर प्रार्थना की आवश्यकता स्वीकार किये बिना कोई गति नहीं। हमें इतना बड़ा भारी दावा न करना चाहिए कि हमारा तो सारा

जीवन ही प्रार्थनामय है, इसलिए किसी खास समय प्रार्थना के लिए बैठने की कोई ख़ास ज़रूरत नहीं। जिन व्यक्तियों का सारा समय अनन्त के साथ एकाग्रता करने में बीता है, उनतक ने ऐसा दावा नहीं किया है। उनका जीवन सतत प्रार्थनामय होने पर भी, हमें कहना चाहिए कि, हमारे लिए वे एक निश्चित समय पर प्रार्थना करते और प्रतिदिन ईश्वर के प्रति अपनी वफ़ादारी की प्रतिज्ञा को दुहराते हैं। अवश्य ही ईश्वर को ऐसी किसी प्रतिज्ञा की आवश्यकता नहीं, लेकिन हमें तो नित्य इस प्रतिज्ञा को दुहराना चाहिए और मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि उस दशा में हम अपने जीवन के सब प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जायँगे।"

इस समय लाल सागर के १२०० मील समाप्त कर हम स्वेज़ नहर के निकट पहुँच रहे हैं।

नहसपाशा की बधाई

मिश्र की जिस स्वतन्त्रता के लिए लड़ते-लड़ते जगलुलपाशा मर गये, उसीके लिए लड़नेवाली सरकार-विरोधी वफ्द पार्टी के प्रधान श्री नहसपाशा का उत्साहवर्धक बधाई का निम्नलिखित सन्देश मिला—

"महान् नेता महात्मा गाँधी की सेवा में,

'राजपूताना' जहाज़ पर।

"अपनी स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के लिए लड़ते हुए मिश्र के नाम पर मैं आपका, जो इसी स्वतन्त्रता के लिए लड़नेवाले

भारत के सर्वप्रधान नेता हैं, स्वागत करता हूँ। आपकी यह यात्रा सकुशल समाप्त होने और प्रसन्नतापूर्वक लौटने के लिए मैं हार्दिक कामना प्रकट करता हूँ। मैं ईश्वर से भी प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको वैसी ही सफलता प्रदान करे, जैसा महान् आपका निश्चय है। मैं आशा करता हूँ कि आप जब वहाँ से लौटकर स्वदेश जाने लगेंगे, तब मुझे आपसे मिलने का आनन्द होगा। मुझे भरोसा है कि, आपकी यात्रा का फल चाहे जो कुछ हो, उस समय आप मिश्र देश पर कृपा करके हमारे यहाँ पधारेंगे और वफ्द पार्टी तथा मिश्र राष्ट्र को ऐसा अवसर देंगे, जिसमें वह आपकी देश-सेवा के फलों के लिए तथा आपने अपने सिद्धान्तों के लिए जो त्याग किया है उसके प्रति अपना आदर-भाव प्रकट कर सके। ईश्वर आपको दीर्घजीवी बनावे और आपके प्रयत्नों में आपको स्थायी और विस्तृत विजय प्रदान करे! हमारे प्रतिनिधि स्वेज़ तथा सईद बन्दर दोनों ही स्थानों में आपकी सेवा में उपस्थित हो हमारी ओर से स्वागत करेंगे और शुभ कामनायें प्रकट करने का सौभाग्य प्राप्त करेंगे।

मुस्तफा नहसपाशा, वफ्द दल का प्रधान।"

श्रीमती जगलुलपाशा का हृदयस्पर्शी सन्देश और 'अल बलग़' को हार्दिक बधाई पहले दी जा चुकी है। श्री नहसपाशा का यह बेतार के तार का सन्देश इन दोनों से आगे बढ़ गया है।

[३]

नहर में प्रवेश करने के कुछ घंटों बाद जहाज़ अनेक प्रकाश-स्तम्भों के पास से गुज़रता है, जिनसे मालूम होता है कि पुराने ज़माने में इस रास्ते से जहाज़रानी कितनी कठिन रही होगी; क्योंकि नहर का दक्षिणी हिस्सा चट्टानों और टीलों से भरा पड़ा है। आगे बढ़कर आपको सिनाई की पर्वतश्रेणी दिखाई देगी। कुछ मील दूरी से रेगिस्तानी ज़रख़ेज़ सोतों के खजूर के वृक्ष दिखाई देंगे। ये सोते मूसा के कुए कहलाते हैं, जहाँ कि मूसा और इसराइल के अनुयाइयों ने लाल समुद्र पार कर फ़ेराओं की सेना से अपने छुटकारे का उत्सव मनाया था। स्वेज़ नहर के पूर्वीय किनारे का प्रत्येक खण्ड और पहाड़ी में हमारे देश के पवित्र पर्वतों और पहाड़ियों की तरह भूतकालीन कथाओं का ख़ज़ाना छिपा हुआ है। इसके विपरीत लाल सागर के पूर्वीय किनारे की पहाड़ियाँ सर्द और बेडौल हैं और किसी तरह सुविधा-जनक नहीं हैं और इसलिए आश्चर्य होता है कि किस प्रकार इन प्रदेशों से संसार के तीन सुप्रसिद्ध—यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्म पैदा हुए। जब हम इन तीनों धर्मों के एक ही उद्गम-स्थान का ख़याल करते हैं और एक क़दम आगे बढ़कर यह सोचते हैं कि संसार के सब बड़े धर्म एशिया की पवित्र भूमि से पैदा हुए

हैं, तब यह देखकर हम अपनेको लज्जित और अपमानित अनुभव किये बिना नहीं रह सकते कि किस प्रकार इन धर्मों के क्षुद्र अनुयायी, इन धर्मों के महान् उत्पादकों और उन्हें प्रकाश देनेवाले ईश्वर को यहाँतक भुला सकते हैं कि उन्हें इनमें सबको आपस में एक सूत्र में बाँधने की कोई बात दिखाई नहीं देती, हरएक बात में उन्हें एक-दूसरे से, और इस तरह अवश्य ही ईश्वर से भी अलग रहने की सूझती है।

जबतक वास्कोडीगामा ने केप आफ़ गुडहोप का पता लगाकर अधिक सुरक्षित और सस्ता राजमार्ग नहीं खोला, तबतक सारे मध्ययुग में लालसागर ही बड़ा व्यापारिक मार्ग था।

स्वेज़ नहर

किन्तु स्वेज नहर के जारी होने से लालसागर का, संसार के एक सबसे बड़े राजमार्ग होने का पद क़ायम रह गया है। स्वेज नहर फ्रान्स के एक महान् इञ्जिनियर फर्डिनेण्ड डि लेसेप्स की कृति है। भूमध्यसागर के प्रवेशमार्ग के जल-बाँध पर खड़ी हुई समुद्री हरे रंग की भव्य प्रस्तर मूर्ति प्रत्येक यात्री की दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। स्वेज नहर के बनने में दस वर्ष से अधिक लगे और स्वेज नहर कम्पनी को इसके लिए २,९७,२५,००० पौण्ड से अधिक खर्च पड़ा जिसका आधा फ्रांस ने दिया और आधा मिश्र के खदीव ने। किन्तु सन् १८६९ में नहर के जारी होते ही ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की

महत्त्वाकांक्षा की जीभ लपलपाने लगी। भारत के साथ समुद्री सम्बन्ध रखने के लिए इसकी महती आवश्यकता अनुभव हुई। निश्चय ही भारत पर अधिकार जमाये रखने के लिए स्वेज़ पर अंग्रेजी कब्ज़ा रहना लाजमी था; लेकिन यह क़ब्ज़ा किस तरह प्राप्त किया जाय, फ़रासीसी इञ्जीनियर के परिश्रम के फल का ब्रिटेन किस तरह उपयोग करे? खदीव के हिस्से ने रास्ता साफ़ कर दिया। उन दिनों प्रतिद्वन्दी साम्राज्यवादियों ने उत्तरी आफ्रिका में अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए सफलतापूर्वक यह युक्ति चला रक्खी थी कि वहाँ के देशी राजाओं को विदेशियों से खुल कर क़र्ज़ लेने और इस प्रकार अपने आपको भारी कर्ज़-दार बना लेने के लिए वे फुसलाते रहें। फ्रांस ने ट्यूनिस पर इसी तरह क़ब्ज़ा किया। मिश्र के खदीव को भी इसी तरह लगभग १० करोड़ पौण्ड मुख्यतः इङ्गलैण्ड और फ्रांस से क़र्ज़ लेने के लिए फ़ुसलाया गया, और इस कारण उसकी साख इतनी गिर गई कि स्वेज नहर कम्पनी के अपने सब शेयर्स बेचने के सिवा उसके पास कोई चारा न रहा। सन् १८७४ में इंग्लैण्ड में साम्रा-ज्य-विरोधी नीति का अन्त हुआ और देसराइली ने खदीव के सब (१,७६,६०२) शेयर्स ३६,८०,००० पौण्ड में ग्रेटब्रिटेन के लिए खरीद लिये। इस परिवर्त्तन के सम्बन्ध में इतना लिखना काफ़ी है। इस्माइलपाशा पर इस प्रकार जबर्दस्ती लादे गये

दिवालियेपन का कारण क्या था, यह बताने के लिए हमें मिश्र पर क़ब्ज़ा करने के गुप्त इतिहास में जाना पड़ेगा, जिसकी इस समय ज़रूरत नहीं है। यह कहना काफ़ी होगा, कि सन् १९२७ में इन शेयर्स की क़ीमत उनकी असली क़ीमत से नौगुनी थी और इस नहर के रास्ते होनेवाली जहाज़रानी में लगभग ६० प्रतिशत जहाज़ अंग्रेज़ों के चलते हैं।

स्वाधीन मिश्र

पिछले पत्र में मैं श्रीमती ज़गगुलपाशा और वफ्द के अध्यक्ष श्री मुस्तफा नहसपाशा के हार्दिक बधाई के सन्देशों का उल्लेख कर चुका हूँ। जहाज़ पर कई मिश्री अखबारों के प्रतिनिधि गाँधीजी से मिले और स्वेज़ तथा पोर्ट सईद दोनों जगह नहसपाशा के प्रतिनिधि ने उनसे भेंट की। काहिरा के भारतीय प्रतिनिधियों का, जिनमें अधिकांश सिन्धी थे, एक डेपुटेशन स्वेज़ और पोर्ट सईद दोनों जगह गाँधीजी से मिला, उन्हें एक अभिनन्दन-पत्र दिया और वापसी पर काहिरा ठहरने के लिए आग्रह किया। पोर्ट सईद पर मुझे यह बात निश्चित रूप से मालूम हुई कि यद्यपि इस भारतीय डेपुटेशन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया; किन्तु अधिकारी मिश्रवासियों के डेपुटेशन को इजाजत देने के खिलाफ थे, और यह बड़ी मुश्किल से सम्भव हुआ कि नहसपाशा के एकमात्र प्रतिनिधि को गाँधीजी से मिलने की आज्ञा मिल सकी।

इस सम्बन्ध में यहाँ मिश्र की वर्तमान स्थिति पर संक्षेप में कुछ कहना असंगत न होगा। मैं उनकी स्थिति के अध्ययन का दावा नहीं करता; किन्तु अबतक अनेक मिश्रवासियों से बातचीत का मुझे लाभ मिल चुका है, और इससे वे जिस स्थिति में से गुज़र रहे हैं उसका काफ़ी अन्दाज़ लग गया है। निरङ्कुश एवं स्वेच्छा-चारी शासकों के तरीक़े सब जगह एक-से ही होते हैं, यहाँ तक कि यदि आपको कुछ ऊपरी बातें बताई जायँ तो असली हालत का आप आसानी से अन्दाज़ लगा सकते हैं। मेरा ख़याल है, कोई भी इस भ्रम में नहीं है कि मिश्र स्वतन्त्रता का आभास मात्र उपभोग कर रहा है। किन्तु मैं यह सुनने को तैयार न था।

मिश्री राजा और मिश्री प्रधान मन्त्री होने पर भी मिश्र भारत से अधिक स्वतन्त्र नहीं है। ज़गलुलपाशा ने 'वफ्दमिश्री'—मिश्र के प्रतिनिधियों की संस्था—नामक संस्था स्थापित की थी, जिसके अध्यक्ष इस समय नहसपाशा हैं, जो ज़गलुलपाशा के प्राइवेट सेक्रेटरी और कुछ समय के लिए प्रधान मन्त्री थे। किन्तु ब्रिटिश सरकार वफ़्द की महत्वाकांक्षाओं को सहन न कर सकी और उसने शाह फौद और सिद्कीपाशा को तुरन्त अपना हथियार बना लिया। ब्रिटिश-मन्त्री-मण्डल के साथ बातचीत में नहसपाशा असफल हो गये और शाह फौद ने पार्लमेण्ट को स्थगित कर दिया और सिद्कीपाशा को वास्तविक डिक्टेटर

बना दिया । नतीजा यह हुआ कि गत वर्ष के चुनाव का पूर्ण बहिष्कार हुआ और सर्वत्र आम हड़ताल हो गई, जिसे दबाने के लिए ऐसा भयङ्कर दमन हुआ कि मिश्रवाले उसे तीन 'क़त्लेआम' के नाम से पुकारते थे । मैं तत्सम्बन्धी विवरण के सत्यासत्य की जाँच न कर सका; लेकिन मुझे बताया गया कि जब रेल कारखाने के मज़दूरों ने हड़ताल कर वफ्द का जय-घोष किया तो फौज ने उनपर गोलियाँ चलाईं । मैंने पूछा—"क्या मजदूर सर्वथा अहिंसक थे ?" उत्तर मिला—"उनके पास हथियार न थे, किन्तु उन्होंने फ़ौजवालों की तरफ लोहे के टुकड़े फेंके थे । फौजवालों ने ७० मज़दूरों को जान से मार डाला और क़रीब एक हज़ार को घायल कर दिया था । ये घायल जबतक अस्पताल में रहे, इनपर फ़ौज का सख्त पहरा रहा, और वहाँ से छुट्टी मिलते ही इनपर सरकार के विरुद्ध प्रदर्शन करने के अपराध में मुक़दमा चलाया गया । मौजूदा कौन्सिल में सर्वथा सरकारी पिट्टू भरे हुए हैं और शासन सिदकीपाशा के आदमियों के हाथ में है।" मैंने पूछा—"अख़बारों की क्या हालत है ?" और उत्तर में वैसी ही हालत मालूम हुई, बल्कि उससे भी अधिक गिरी हुई, जैसी कि हमारे यहाँ भारत में है । "हमारे प्रेसों पर पुलिस तैनात रहती है, पहली प्रूफ़-कापी उसे बतानी पड़ती है, और यदि वह उसमें कुछ आपत्तिजनक बात समझती है तो उस अङ्क को रोक

देती है !" फिर पूछा—"विद्यार्थियों और साधारण जनता की क्या हालत है ?" जवाब मिला—"विद्यार्थी सब हमारे साथ हैं। श्रीमती जग़लुलपाशा—जो 'मिश्र की माता' कही जाती हैं—के नेतृत्व में स्त्रियाँ भी सजग हैं और माडरेट या लिबरल पार्टी, जो पहले वफ्द का विरोध किया करती थी, अब उसका समर्थन कर रही है। उसके प्रेसीडेएट श्री मुहम्मद महमूद को एक उपद्रव के समय पीटा गया था, तबसे वह वफ्द के कट्टर समर्थक हो गये हैं।" अवश्य ही बधाई के तारों में एक तार उक्त श्री मुहम्मद महमूद और एक स्त्रियों की सन्नाद कमेटी की अध्यक्षा श्रीमती शेरिफ़ा रियाज़ पाशा का भी था। अख़बारों पर कड़ी निगरानी होने पर भी मैं कह सकता हूँ कि कम-से-कम बारह मिश्री अख़बारों ने, जिनमें तीन का तो दैनिक प्रचार लगभग ४० से ५० हज़ार तक है, गाँधीजी के सम्बन्ध में विशेष लेख लिखे, दो ने विशेषाङ्क निकाले और सबने नहसपाशा, श्रीमती ज़गलुलपाशा तथा मुहम्मद महमूदपाशा आदि के सन्देश छापे।

कोई आश्चर्य नहीं, यदि मिश्र हमारी ही तरह अंग्रेज़ी जुए से उकता गया हो और चाहता हो कि गाँधीजी वापसी के समय मिश्र अवश्य आवें। प्रत्येक ने गाँधीजी अथवा भारत से, उसके 'छोटे भाई मिश्र' के लिए सन्देश माँगा, और गाँधीजी ने अपने प्रत्येक संदेश में उस महान् देश के लिए सर्वोत्तम शुभ कामनायें प्रकट

कीं, जिनकी मुख्य बात यह थी कि "यह कितना अच्छा होगा, यदि मिश्र अहिंसा के सन्देश को अपनावे ?" स्वेज़ में एक अंग्रेजी पत्रकार के पूछने पर उन्होंने कहा—"मैं पूर्व और पश्चिम के संघ का हृदय से स्वागत करूँगा, बशर्ते कि उसका आधार पाशविक शक्ति पर न हो ।"

इन दिनों शाम की प्रार्थना के बाद की सब बातचीत अहिंसा के सम्बन्ध में होती थी। स्वेज़ से जहाज़ पर सवार हुए कुछ मिश्र के मित्र भी एक दिन इस बात-चीत में भाग ले सके थे।

प्रेम का क़ानून

एक शाम को गाँधीजी ने कहा—"जान में या अनजान में हम अपने दैनिक जीवन में एक-दूसरे के प्रति अहिंसक रहते हैं। सब सुसंगठित समाजों की रचना अहिंसा के आधार पर हुई है। मैंने देखा है कि जीवन विनाश के बीच रहता है, और इसलिए नाश से बढ़ कर कोई एक नियम होना चाहिए। केवल उसी नियम के अन्तर्गत एक सुव्यवस्थित समाज समझा जा सकता है और उसी में जीवन का आनन्द है। और यदि जीवन का यही नियम है, तो हमें अपने दैनिक जीवन में उसे बरतना चाहिए। जहाँ कहीं विसंगतता हो, जहाँ कहीं आपका विरोधी से मुक़ाबला हो, उसे प्रेम से जीतिए ; इस तरह मैंने अपने जीवन में इसे व्यवहृत किया है। इसका यह अर्थ नहीं कि मेरी सब कठिनाइयाँ हल हो गई ।

मुझे जो कुछ भी मालूम हुआ वह यही है कि इस प्रेम के क़ानून से जितनी सफलता मिली है, विनाश के से उतनी कदापि नहीं मिली। भारत में हम इस नियम के प्रयोग का बड़े-से-बड़े प्रमाण में प्रदर्शन कर चुके हैं। मैं, इसलिए, यह दावा नहीं करता कि अहिंसा तीस करोड़ भारतवासियों के हृदय में अवश्य ही घर कर गई है; किन्तु मैं इतना दावा अवश्य करता हूँ कि अन्य किसी भी सन्देश की अपेक्षा, इतने थोड़े से समय में, यह कहीं अधिक गहराई से प्रवेश कर गई है। हम सब समान रूप से अहिंसक नहीं रहे और अधिकांश के लिए अहिंसा नीति के तौर पर रही है। इतने पर भी मैं चाहता हूँ कि आप देखें कि क्या अहिंसा की संरक्षक शक्ति के अन्तर्गत देश ने असाधारण प्रगति नहीं की है।"

एक दूसरे प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा—"मानसिक अहिंसा की स्थिति तक पहुँचने के लिए काफ़ी कठिन प्रयत्न की आवश्यकता रहती है। एक सिपाही के जीवन की तरह, चाहे हम चाहें या न चाहें, हमारे जीवन में उसका अनुशासन की तरह पालन होना चाहिए। लेकिन मैं यह स्वीकार करता हूँ कि जबतक उसके साथ दिमाग़ या मस्तिष्क का हार्दिक सहयोग न होगा, उसका केवल ऊपरी आवरण ढोंग होगा, और स्वयं उस व्यक्ति और दूसरों के लिए हानिकारक होगा। पूर्णावस्था उसी दशा में प्राप्त होती है, जब कि मस्तिष्क, शरीर और वाणी इन तीनों का

समुचित एवं समान रूप से मेल हो। किन्तु यह एक गहरे मानसिक संघर्ष का विषय है। उदाहरण के लिए यह बात नहीं है कि मुझे क्रोध न आता हो, लेकिन मैं क़रीब-क़रीब सब अवसरों पर अपने भावों को अपने वश में रखने में सफल हो जाता हूँ। नतीजा कुछ भी हो, मेरे हृदय में अहिंसा के नियम का मन से और निरन्तर पालन करने के लिए सदैव सजग संघर्ष होता रहता है। ऐसा संघर्ष मुझे उसके लिए काफी शक्तिशाली बना देता है। अहिंसा शक्तिशाली अथवा ताक़तवर का अस्त्र है। कमज़ोर आदमी के लिए वह आसानी से ढोंग बन जा सकता है। भय और प्रेम परस्परविरोधी बातें हैं। प्रेम इस बात की परवाह नहीं करता कि बदले में उसे क्या मिलता है। प्रेम अपने और संसार के साथ युद्ध करता है और अन्त में अन्य सब भावों पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है। मेरा और मेरे साथियों का यह दैनिक अनुभव है कि यदि हम सत्य और अहिंसा के नियम को अपने जीवन का नियम बनाने का निश्चय करलें तो हमारी प्रत्येक समस्या का हल अपने-आप हो जायगा। मेरे लिए सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के की दो बाजू हैं।

"जिस तरह कि गुरुत्त्वाकर्षण का नियम, हम चाहे मानें या न मानें, अपना काम करता रहेगा, उसी प्रकार प्रेम का क़ानून अपना काम करेगा। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक प्राकृतिक नियमों

के प्रयोग द्वारा आश्चर्यजनक बातें पैदा करता है उसी तरह यदि कोई व्यक्ति प्रेम का वैज्ञानिक यथार्थता के साथ प्रयोग करे, तो वह इससे अधिक आश्चर्यजनक बातें पैदा कर सकेगा। क्योंकि अहिंसा की शक्ति प्राकृतिक शक्तियों—उदाहरणार्थ बिजली आदि से—कहीं अधिक अनन्त, आश्चर्यजनक और सूक्ष्म है। जिस व्यक्ति ने हमारे लिए प्रेम के नियम अथवा क़ानून की खोज की, वह आजकल के किसी भी वैज्ञानिक से कहीं अधिक बड़ा वैज्ञानिक था। केवल हमारी शोध अभीतक चाहिए इतनी नहीं हुई है और इसलिए प्रत्येक के लिए उसके परिणाम देख सकना सम्भव नहीं है। कुछ भी हो, यह उसकी एक विशेषता है, जिसके अन्तर्गत मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। प्रेम के इस क़ानून के लिए मैं जितना अधिक प्रयत्न करता हूँ, उतना ही अधिक मुझे जीवन में आनन्द—इस सृष्टि की योजना में आनन्द अनुभव होता है। इससे मुझे शान्ति मिलती है और प्रकृति के रहस्यों का अर्थ जान पाता हूँ, जिनका वर्णन करने की मुझमें शक्ति नहीं है।"

सईद द्वीप से आगे बढ़ने पर जो प्रथम भूमिखण्ड नज़र आता है वह क्रीट द्वीप का दक्षिणी पहाड़ी किनारा है। यही प्राचीन-काल में मिनोशियन सभ्यता का केन्द्र था। यह द्वीप अत्यन्त उपजाऊ है और यहाँ की आब-हवा बड़ी स्वास्थ्यप्रद है। इटली के किनारे पहुँचने तक समुद्र कुछ

क्रीट का द्वीप

अशान्त सा बना रहा। हरे समुद्र पर से स्वेज़ नगर का दृश्य बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है और नहर के पश्चिमी किनारे फ्रांसीसी अफ़सरों के घरों की क़तार रात में बड़ा ही सुहावनी मालूम पड़ती है; परन्तु मेसीना की खाड़ी की नैसर्गिक सुन्दरता का दृश्य-पटल इससे भी कहीं बढ़कर है। आगे बढ़ने पर समुद्र का रंग गहरा नीला हो जाने के कारण ऐसा मालूम होता था, मानों जहाज़ किसी शीत झील के ऊपर गंभीर वेग से चल रहा हो। हमारे दक्षिण पार्श्व में प्रायः एक कोस के फ़ासले पर इटली की सुन्दर पर्वतमाला दिखलाई पड़ती है, जो अबतक के देखे हुए पहाड़ों की तरह सूखी और ठंडी नहीं है बल्कि साइप्रस और जैतून के वृक्षों से हरी-भरी है, जिनके बीच में थोड़े-थोड़े फासले पर सुन्दर बस्तियाँ बसी हुई हैं। इस सुन्दर दृश्य में यूरोप की जो पहली बस्ती स्पष्टतया नजर आती है वह रेजियो का प्राचीन नगर है। इसके ठीक सामने के किनारे पर मेसीना है, जो कदाचित इससे भी अधिक सुन्दर है। जहाज़ के इस खाड़ी से बाहर निकलने पर यही भावना रहती है कि इन सुन्दर दृश्यों के बीच अधिक ठहरते तो अच्छा होता। अब आगे बढ़ने पर समुद्र और भी अधिक गंभीर और काच के समान साफ़ हो जाता है, यहाँतक कि पूर्णवेग से बढ़ते हुए सामने के जहाज़ की परछांही समुद्र में प्रतिबिम्बित होकर चित्र के समान सुन्दर प्रतीत होती है।

जब गाँधीजी ने यह कहा कि अनन्त प्रलय के मध्य में भी जीवन विद्यमान रहता है, तो, मैं नहीं कह सकता कि उनको यह ज्ञात था कि नहीं कि उनकी इस उक्ति की विपरीत [illegible] एक कहावत भी है कि 'जीवन के मध्य में भी हम मृत्यु के मुख में हैं।' इसी कहावत को चरितार्थ करने के लिए ही मानों हमारे सामने स्ट्रोम्बोली द्वीप समुद्र के बीच में स्थित एक मेस्टोडोन (प्रारम्भिक काल में पृथ्वी पर पाया जानेवाला हस्तीवर्ग का एक भीमकाय जन्तु) के सामन खड़ा था। यह ज्वलन्त ज्वालामुखी है। हमने तो उसे गहरे बादलों की ओट में ढका पाया। परन्तु कहा जाता है कि जब बादलों का आवरण उसपर नहीं होता है तो उसमें से पिघले हुए पत्थर और आग की लपटें निकलती रहती हैं। यह जानते हुए भी कि किसी दिन यह ज्वालामुखी अपना भयानक रूप दिखलाकर उनको लावा से ढक देगा और नष्ट-भ्रष्ट कर देगा, इसकी तराई में अनेक छोटी-छोटी और सुन्दर बस्तियाँ बसी हुई हैं। लावा के योग से उपजाऊ बनी हुई भूमि में यहाँ घनी खेती की जाती है, अतः जहाँ यह नाश का कारण है वहाँ उत्पत्ति में भी सहायक होता है। इसलिए यह बिलकुल ठीक है कि अनन्त प्रलय के मध्य में भी जीवन विद्यमान है।

इसी प्रकार निराशा के आवरण में आशा विद्यमान रहती है और इसी विचार के सहारे हम आशा करते हैं कि कल

मार्सेल्स और परसों लंदन पहुँच जायँगे। आगे बढ़ने पर, आज तीसरे पहर, बोनीफेशियो के मुहाने से निकलते हुए, फिर चित्ता-कर्षक सुन्दर दृश्य दृष्टिगोचर हुआ। यह मुहाना नेपोलियन की जन्मभूमि कोर्सिका को सारडीनिया से विभाजित करता है।

[१]

हमारे जहाज़ के मार्सेल्स पहुँचने पर गाँधीजी का यूरोप की भूमि में सबसे पहले स्वागत करनेवालों में कुमारी मेडलीन रोलाँ का नाम उल्लेखनीय है, जो कि फ्रान्स के उस महापुरुष की बहन हैं, जो अपने सत्य और अहिंसा के प्रेम के कारण स्वेच्छित निर्वासन भोग रहे हैं। श्री रोलाँ ने गाँधीजी के स्वागत के लिए स्वयं आने का जी-तोड़ प्रयत्न किया; किन्तु अपनी अस्वस्थता के कारण वह इसमें सफल न हुए और अपनी बहन के साथ प्रेमपूर्ण स्वागत का हार्दिक संदेश भेज कर ही सन्तोष कर लिया। कुमारी रोलां के साथ श्री प्रिवे और उनकी धर्मपत्नी भी थीं। ये दोनों स्वीज़रलैण्ड-निवासी हैं और श्री रोलां के साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा सत्य और अहिंसा के प्रचार में इन्होंने भी ज़बर्दस्त प्रयत्न किया है। राष्ट्रीय कार्यों में अहिंसा का प्रयोग एक नया आविष्कार है। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक अपने नवीन आविष्कारों के संचालक-नियमों का संसार

मार्सेल्स में

को दिग्दर्शन कराता है, उसी प्रकार श्री प्रिवे ने इस प्रेम के सिद्धान्त के नूतन प्रयोग का दिग्दर्शन कराया है। उन्होंने गाँधीजी को अपनी नवीन पुस्तक Lechoe De Patriotismes (देशभक्ति का संघर्ष) दिखाई। इसमें उन्होंने इस क्षेत्र के अपने अनुभव और कई नये प्रयोग करने वालों का परिचय दिया है। उक्त प्रयोग करनेवालों में एक स्वीज़रलैण्ड के महान् शान्ति के उपासक श्री सियरसोल का नाम उल्लेखनीय है, जो युद्ध और अन्य आपदाओं से ग्रस्त क्षेत्रों में सहायता पहुँचाकर सैनिकवाद का अन्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं और इस समय वेल्स की खानों में काम करनेवाले पीड़ित मज़दूरों के कष्ट-निवारण में लगे हुए हैं। श्री प्रिवे ने मुझसे कहा कि श्री सियरसोल इतने लज्जाशील हैं कि उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह निःसङ्कोच होकर स्वयं गाँधीजी से मिलने आवें, इसलिए आप उन्हें तलाश करके गाँधीजी से अवश्य मिला दीजिए।

यदि मित्रों में सबसे पहले स्वागत करनेवाले श्री कुमारी रोलाँ और श्री प्रिवे थे, तो अपरिचितों में सबसे पहले स्वागत करने

विद्यार्थियों को

वाले विद्यार्थी थे। ये विद्यार्थी मार्सेल्स के वर्तमान और पुराने विद्यार्थियों की प्रधान समिति के सदस्य थे, जिन्होंने "भारतवर्ष के आध्यात्मिक दूत" के सम्मानार्थ धूमधाम से स्वागत का प्रबन्ध किया था। उन्होंने उनका यूरोप के युद्ध-

श्रान्त और लूट में अन्धे हुए राष्ट्रों को शान्ति-सुधारस पान कराने वाले देवदूत की तरह स्वागत किया और गाँधीजी ने उनको मित्र और सहपाठी आदि शब्दों से सम्बोधित कर उचित शब्दों में उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि, "सन् १८९० में जब मैं विद्यार्थी था और फ्रान्स में प्रदर्शिनी देखने आया था, उस समय से आपके और मेरे बीच कुछ घनिष्ठ तथा स्थायी सम्बन्ध स्थापित हो गये हैं। उन सम्बन्धों के स्थापित करने का श्रेय आपके सुप्रसिद्ध देशबन्धु रोम्या रोलां को है, जिन्होंने अपने ऊपर मेरे इस विनम्र सन्देश को समझाने का भार ले लिया है, जो मैं लगभग ३० वर्ष से अपने देशवासियों को समझाने का प्रयत्न कर रहा हूँ। मैंने आपके देश की परम्पराओं और रूसो तथा विक्टर ह्यूगो के उपदेशों का कुछ अध्ययन किया है, और अपने लन्दन के कठिन मिशन पर क़दम रखने से पूर्व आपके इस प्रेम-पूर्ण स्वागत से मुझे बड़ा प्रोत्साहन मिला है।"

उन्होंने उस युद्ध-प्रिय जाति के नवयुवकों के सामने अहिंसा के सन्देश का स्पष्टीकरण किया, और जब उन्हें समझाया कि "अहिंसा निर्बल का नहीं, वरन् अत्यन्त शक्तिशाली का अस्त्र है; शक्ति का अर्थ केवल शारीरिक बल नहीं है; एक अहिंसक में शारीरिक बल का होना आवश्यक नहीं है, परन्तु बलवान हृदय का होना अनिवार्यरूप से आवश्यक है," तो उन्होंने इसपर बड़े

उत्साह से हर्षध्वनि की। गाँधीजी ने उदाहरण देते हुए बतलाया कि किस प्रकार "एक बलिष्ट जुलू एक पिस्तौल लिये हुए अंग्रेज बालक के सामने काँपने लगता है; परन्तु इसके विपरीत भारतवर्ष की ललनाओं ने लाठी-प्रहार और लाठियों की वर्षा को कितनी दृढ़ता के साथ सहा। शत्रु के साथ युद्ध करते हुए मर जाना या मार डालना तो बहादुरी है ही, किन्तु अपने प्रतिद्वन्द्वी के प्रहारों को सहन करना और बदले में अंगुली तक न उठाना उससे कहीं ऊँचे दर्जे की बहादुरी है। यही चीज है, जिसके लिए भारत अपने-आपको तैयार कर रहा है।" अन्त में इसी प्रश्न के एक दूसरे पहलू पर चर्चा करते हुए उन्होंने कहा—"अहिंसा की यह लड़ाई. सरे शब्दों में आत्म-शुद्धि की एक क्रिया कही जा सकती है— जिसका तात्पर्य यह है कि कोई राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता अपनी ही कमजोरी के कारण खोता है, और ज्योंही हम अपनी कमजोरी को दूर फेंक दें, त्योंही अपनी स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त कर लेंगे। पृथ्वी पर कोई जाति स्वयं अपने ऐच्छिक या अनैच्छिक सहयोग के बिना सर्वथा गुलाम नहीं बनाई जा सकती। अनैच्छिक सहयोग वह है, जिसमें आप किसी शारीरिक आघात के भय से किसी अत्याचारी और निरङ्कुश शासक की अधीनता स्वीकार करते हैं। आन्दोलन के आरम्भ में मैं इस अनुभव पर पहुँचा हूँ कि इस प्रकार के आन्दोलन की नींव चरित्रबल है।

हमें यह भी अनुभव हुआ है कि दिमाग़ में बहुत-सी बातें भर लेने या विविध पुस्तकें पढ़कर परीक्षायें पास कर लेने में सच्ची शिक्षा नहीं है प्रत्युत् चरित्र-संगठन सच्ची शिक्षा है। मुझे पता नहीं कि आप लोग—फ्रान्स के विद्यार्थीगण—बौद्धिक अध्ययन की अपेक्षा चरित्र-निर्माण को कितना महत्त्व देते हैं। परन्तु मैं इतना कह सकता हूँ कि यदि आप अहिंसा की सम्भावित शक्तियों की खोज करें तो आपको मालूम होगा कि बिना चरित्र के आपका अध्ययन निरर्थक सिद्ध होगा। मैं आशा करता हूँ कि हमारा यह पारस्परिक परिचय इसी सम्मिलन के साथ समाप्त न हो जायगा, प्रत्युत् मुझे आशा है कि यह परिचय आपके और मेरे देशवासियों के बीच में सजीव सम्बन्ध स्थापित करने का कारण होगा। जैसा आन्दोलन इस समय हम भारतवर्ष में चला रहे हैं, उसकी सफलता के लिए हमें सारे संसार की बौद्धिक सहानुभूति की आवश्यकता है; और यदि इस आन्दोलन और स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए काम में लाये गये हमारे तरीकों का विचार-पूर्वक अध्ययन करने के बाद आप यह अनुभव करें कि हम आपकी इस सहानुभूति और सहायता के पात्र हैं, तो मैं आशा करता हूँ कि आप वह सहानुभूति हमें दिये बिना न रहेंगे।"

बहुत सी बातों में एक विचित्र प्रकार की समता होती है, फिर चाहे वे कहीं भी क्यों न हों। इसका एक उदाहरण है खुफ़िया

पुलिस, दूसरा औद्योगिक नगर, और तीसरा प्रचार-कार्य करने-वाले अख़बारनवीस। मैं यह समझता था कि हिन्दुस्थान से रवाना होते ही उस निकृष्ट प्रचार से हमारा पीछा छूट जायगा, जो स्वभावतः ही अधगोरे अख़बारों में देखा जाता है। परन्तु यह आशङ्का व्यर्थ थी। इंग्लैण्ड के कट्टर अनुदार अख़बार दुनिया के किसी भी अख़बार को इस विषय में मात कर सकते हैं। हमारे देश के अनुदार पत्र तो इस देश के इस कट्टर दल के अधूरे अनुगामी मात्र हैं। और इसका एक जीवित उदाहरण हमें 'डेली मेल' के प्रतिनिधि में मिला, जिसने 'राजपूताना' जहाज़ पर गाँधीजी से मुलाक़ात की। वह विद्यार्थियों के स्वागत के अवसर पर उपस्थित था और उसने अपने अख़बार को ऐसे तार भेजे, जिनमें उसने गाँधीजी की बातों को बड़ी शरारत के साथ तोड़ा-मरोड़ा था, और जो कहीं-कहीं तो सरासर झूठे थे। हमें मार्सेल्स से बोलोन ले जाने-वाली स्पेशल ट्रेन में गाँधीजी ने इस मित्र को खूब आड़े हाथों लिया। बहुत-सी बातों का तो उसके पास कुछ जवाब ही न था। उसकी रिपोर्ट के अनुसार गाँधीजी का स्वागत विद्रोही भारतीय विद्यार्थियों द्वारा हुआ था, जब कि वास्तव में उसका पूरा प्रबन्ध मार्सेल्स के ही विद्यार्थियों ने किया था। गाँधीजी के भाषण में से कोई संगत उद्धरण दिये बिना ही उसने लिखा था कि

अख़बारनवीस

गाँधीजी ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ़ घृणा का प्रचार किया। उससे कहा गया कि वह अपने कथन की पुष्टि में कोई एक भी फ़िकरा या वाक्य बतलावे। अपने बचाव में वह बराबर यही लचर दलील देता रहा, "मुझे इस बात का आश्चर्य हुआ कि आप अपने भाषण में राजनीति ले आये।" गाँधीजी ने उससे कहा, "तुमको यह समझ रखना चाहिए कि मैं अपने जीवन की गहनतम बातों से राजनीति को केवल इस कारण पृथक् नहीं कर सकता कि मेरी राजनीति गन्दी नहीं है, वह अहिंसा और सत्य के साथ अविच्छिन्न-रूप से बँधी हुई है। जैसा कि मैंने कई बार कहा है, मैं इस बात को पसन्द करूँगा कि भारतवर्ष नष्ट हो जाय, बजाय इसके कि वह सत्य का त्याग करके स्वतन्त्रता प्राप्त करे।" और भी बहुत-से भद्दे आक्षेप उसने किये थे, जिनका वह कोई प्रमाण न दे सका। बेचारे को यह नहीं मालूम था कि उससे इस प्रकार जवाब तलब किया जायगा। गाँधीजी ने चुटकी लेते हुए कहा,—"मिस्टर..., आप सत्य के दायरे के बाहर-ही-बाहर चक्कर लगा रहे हैं।" गाँधीजी जब सभा-स्थल पर जा रहे थे, तब हमें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ था कि मार्सेल्स की गलियों तक में दोनों ओर भीड़ लगी हुई थी, परन्तु 'डेलीमेल' वाले हमारे मित्र ने लिखा था, "ऐसा हलका स्वागत देखकर गाँधीजी को बड़ी निराशा हुई।" गाँधीजी ने उससे पूछा—"तुम्हें कैसे

मालूम हुआ कि मैं निराश हुआ, और एक अंग्रेज़ कर्नल ने जो मुझे एक स्त्री की जाकट दी उससे मैं चिढ़ा, जब कि मैंने कहा था कि इससे मेरा मनोरंजन हुआ ?" इसका वह कोई उत्तर न दे सका, और कहने लगा कि मैंने तो आपके उस मनोरंजन का अर्थ चिढ़ना ही लगाया ! इसपर गाँधीजी ने कहा—"अच्छा, अब मैं तुम्हें बतलाये देता हूँ कि मुझमें भी परिहास की प्रवृत्ति है, जो मुझे ऐसी बातों से चिढ़ने से बचाती है। यदि मुझमें इसका अभाव होता, तो मैं अबतक कभी का पागल हो गया होता। उदाहरण के लिए तुम्हारा यह लेख ही मुझे पागल बना देने के लिए काफ़ी होता। मैं यह कह देना उचित समझता हूँ कि तुमने इस लेख में ऐसी बातों की भरमार की है, जो सत्य से बहुत दूर हैं और जिनके कारण मुझे तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। परन्तु मैं ऐसा नहीं करता, और जितनी बार तुम चाहोगे मैं तुम्हें मुलाक़ात देता रहूँगा।" इस फटकार से वह दबा जा रहा था। लेकिन उसमें पश्चात्ताप का कोई भाव नहीं था !

परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि पत्रकार-जगत् में सत्य की प्रतिष्ठा नहीं है और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पत्रकार तोड़-मरोड़ की इच्छा न रखते हुए भी सत्य को 'बेलबूटे' अथवा नामक-मिर्च लगाकर सजाना पसन्द करते हैं। उदाहरण के लिए अमेरिकन एसोशियेटेड प्रेस के संवाददाता श्री मिल्स, जो बहुत दिनों से हमारे साथ

हैं और गाँधीजी की प्रवृत्तियों से परिचित हैं, गाँधीजी के जहाज़ी जीवन की घटनाओं पर नमक-मिर्च लगाये बिना न रह सके। उन्होंने प्रार्थना के दृश्य, चर्खे के आकर्षण तथा और भी बातों का वर्णन किया, किन्तु उन्हें यह जान पड़ा कि गाँधीजी के साथ प्रति दिन दूध पीने वाली एक बिल्ली का ज़िक्र किये बिना सब वर्णन फीका रह जायगा! इसी प्रकार श्री स्लोकोम्ब ने भी, जिन्होंने गाँधीजी से अपनी यरवदा-जेल की मुलाक़ात का रोमाञ्चकारी वर्णन प्रकाशित कर नाम पैदा कर लिया था, 'ईवनिंग स्टेण्डर्ड' में गाँधीजी की उदारता की प्रशंसा करते हुए यह अनुभव किया कि बिना किसी स्पष्ट उदाहरण के विवरण अधूरा रहेगा। और इसलिए उन्होंने अपनी कल्पना दौड़ाई और प्रिंस आफ़ वेल्स (युवराज) के भारतागमन के समय गाँधीजी को उनके चरणों में लौटते हुए बता ही तो दिया! गाँधीजी ने उनसे कहा—"भाई स्लोकोम्ब, मैं तो यह आशा करता था कि आप तो सही बातें अच्छी तरह जानते होंगे। किन्तु जो विवरण लिखा वह तो आपकी कल्पनाशक्ति पर भी लांछन लगाता है। मैं भारतवर्ष के ग़रीब-से-ग़रीब भंगी और अछूत के सामने न केवल घुटने टेकना ही पसन्द करूँगा, वरन् उसकी चरण-रज भी ले लूँगा, क्योंकि उन्हें सदियों से पददलित करने में मेरा भी भाग रहा है। परन्तु मैं प्रिन्स आफ़ वेल्स तो दूर रहा, बादशाह तक के

चरणों में न गिरूँगा—सिर्फ इसीलिए कि वह एक महान् उद्दण्ड सत्ता का प्रतिनिधि है। एक हाथी भले ही मुझे कुचल दे, परन्तु उसके सामने सिर न झुकाऊँगा; किन्तु मैं अजान में चींटी पर पैर रख देने के कारण उसको प्रणाम कर लूँगा।" डी वेलेरा के अभी हाल ही में जारी किये हुए अखबार 'आयरिश प्रेस' को धन्य है कि उसने अपना 'मोटो' 'समाचारों में सचाई' रक्खा है और अपने पहले ही अङ्क में इस बात की घोषणा कर दी है कि "हम कभी जानबूझ कर इस पत्र को अपने मित्रों को पथभ्रष्ट करने और अपने विरोधियों के विरुद्ध ग़लतफ़हमी फैलाने के काम में नहीं लावेंगे।" इस मोटो पर आचरण करनेवाले समाचार-पत्र वास्तव में बहुत कम हैं।

परन्तु किसी देश के मनुष्यों को वहाँ के अखबारों से ही जाँचना ठीक न होगा, यद्यपि जिस देश में अखबारों का प्रचार लाखों की संख्या में है वहाँ यह सहज ही विचार किया जा सकता है कि वे कितनी अपार हानि कर सकते हैं।

लन्दन में

'फ्रेण्ड्स हाउस' का सार्वजनिक स्वागत बड़े सुचारु रूप से संगठित किया गया था। उस सम्मेलन में, श्री लारेन्स हाउसमैन—जिनसे अच्छा सभापति मिलना कठिन था—के शब्दों में, "राष्ट्र के महान् अतिथि" के स्वागत के लिए सार्वजनिक जीवन की प्रत्येक शाखा के प्रतिनिधि मौजूद थे। श्री हाउसमैन ने तुरन्त ही 'कृतज्ञतापूर्ण

स्वागत' से बहुत गहरी जानेवाली चीज़ का आश्वासन दिलाया—अर्थात् भारतवर्ष के प्रति बढ़ता हुआ सद्भाव, ऐसा सद्भाव कि जिसपर परिषद् के नतीजे का कुछ प्रभाव नहीं पड़ सकता, तथा जो सदा अपरिवर्तनशील तथा कभी कम न होने वाला है। जब उन्होंने गाँधीजी को ऐसी बात का ज़रिया बतलाया जो साधारणतया समझी नहीं जाती है—अर्थात् राजनीति और धर्म का एकीकरण, तो उन्होंने बिलकुल ठीक बात कह दी। श्री हाउसमैन ने कहा, "गिरजों में हम सब पापी हैं, परन्तु राजनीति में दूसरे सब पापी हैं। हमारे दैनिक जीवन का सच्चा वर्णन यही है, तथा गाँधीजी हमारे यहाँ हम लोगों से यह अनुरोध करने आये हैं कि हम अपने हृदयों को टटोलें और इसकी घोषणा कर दें कि हमारा धर्म क्या है।"

परन्तु खानगी स्वागतों में शायद और भी अधिक हार्दिकता थी। उदाहरणार्थ, हमारी मेजबान मिस म्यूरियल लेस्टर के 'बो' के

किंग्सली हाल

किंग्सली हाल में अपने साथ गाँधीजी को ठहरने पर ज़ोर देने से अधिक प्रेमपूर्ण बात और क्या हो सकती है। किंग्सली हाल का इतिहास प्रत्येक को जानना चाहिए ? किस प्रकार एक आहत-हृदय के प्रश्नों के उत्तर में मिस लेस्टर ने बो स्ट्रीट में—कोलाहलपूर्ण शराबख़ानों तथा कब्रगाहों, कंगाली और पाप के आगार—गन्दे और हीन निवास गृहों के

बीच में रहने का निश्चय किया, किस प्रकार उन्होंने भारत की यात्रा का प्रबन्ध किया और कवि रवीन्द्र तथा गाँधीजी की महमानी स्वीकार की, किस प्रकार किंग्सली हाल खोला गया और किस प्रकार उन्होंने अपने कुछ सहयोगियों के साथ उन भागों में आराम और खुशी लाने के लिए वहाँ रहने की ठान ली, जहाँ "परिवार की सारी सम्पत्ति का नाश, नौकरी के लिए असफल प्रयत्न, आत्महत्याओं की चेष्टा, और इनके परिणामस्वरूप अपमान तथा निराशा" के नाटक प्रतिदिन होते रहते हैं? यह एक अत्यन्त रोमाञ्चकारी कथा है, जो मिस लेस्टर की 'My host the Hindu' (मेरे हिन्दू अतिथि) नामक पुस्तक में वर्णित है। यह उचित ही था कि भारतवर्ष की पीड़ित जनता के प्रतिनिधि गाँधीजी वहाँ आमन्त्रित किये जाते तथा वह उसको अपने हृदय के ठीक अनुकूल स्वर्ग के समान समझते। इस उपनिवेश के सदस्य सफ़ाई, भोजन बनाना, धुलाई इत्यादि सब काम अपने हाथ से करते हैं और जो कोई उनकी महमानी स्वीकार करे, उससे भी दैनिक भोजन-कार्य में सहायता देने की आशा की जाती है। मुझे जेन एडम्स से मिलने अथवा 'हाल हाउस' के देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है, परन्तु इन दोनों के सम्बन्ध में मैंने काफ़ी पढ़ा है और शायद मिस लेस्टर का भी यही प्रयत्न है कि लन्दन में भी 'हाल हाउस' से कुछ कम न रहे। उनकी आकांक्षा है कि किंग्सली

हाल "परमात्मा की उस भावना से ओतप्रोत तथा व्याप्त रहे, जो मनुष्यों को सेवा, आत्मानुशासन तथा त्याग की ओर प्रवृत्त करती है।" यह सम्भव है कि जिस कार्य के लिए गाँधीजी यहाँ आये हैं उसकी आवश्यकताओं से बाधित होकर उनको अपने मित्रों की सहूलियत के लिए अधिक सुविधाजनक स्थान पर हटना पड़े; परन्तु यह कल्पना करना कठिन नहीं होगा कि यह उनपर कितनी जबर्दस्ती होगी। मुहल्ले के रहने वाले सैकड़ों स्त्री-पुरुष और बालक गाँधीजी के दर्शन और सम्मान-प्रदर्शन के लिए उस स्थान को घेर लेते हैं। जब हम बाहर जाते हैं तो बालकगण प्रसन्नता-पूर्वक हमारे पीछे हो लेते हैं—इसलिए नहीं कि हमको तंग करें; बल्कि मित्रता करने के लिए। देवीदास से बहुधा यह प्रश्न पूछा जाता है—"भला तुम्हारे पिता इंग्लैण्ड के बादशाह से कब मिलेंगे?" दूसरा सवाल यह होता है, "क्या तुम्हारे देश के बच्चे बिलकुल हमारी तरह के हैं?" एक लड़की अपने पड़ोसी से कहती है, "ये लोग अपने कपड़ों में बड़े अजीब मालूम होते हैं।" पड़ोसी बड़ी चालाकी से उत्तर देता है, "हाँ, जिस प्रकार हम उनको अजीब मालूम होते हैं।" एक छोकरे का भोला-भाला सवाल होता है—"तुम्हारे पिताजी मोटर में जाते हैं, क्या वह तुम्हें मोटर नहीं देते?" दूसरा शरारती दूर से ही चिल्लाता है—"बतलाइए तो, आपकी पतलून कहाँ है?"

परन्तु इन सबकी सद्भावना में कोई सन्देह नहीं है। विरोधी अखबारों ने भी, अपनी इच्छा के विरुद्ध, महमानी की बहुत-सी तसवीरें छाप-छाप कर उनका गूढ़ विज्ञापन कर दिया है, जिसके कारण गलियों का मोटर-ड्राइवर, सड़क पर का मज़दूर, फुटपाथ पर बैठा हुआ फूल बेचनेवाला तथा दूकान में गोश्त बेचनेवाला लन्दन में अपार भीड़ के कारण गाँधीजी की मोटर के रुकते ही उनको फौरन पहचान लेता है और नज़दीक आकर या तो सम्मानपूर्वक टोप हिलाने लगता है या प्रेमपूर्वक मुस्कराने लगता है।

सद्भावना

इंग्लैण्ड और यूरोप के भिन्न-भिन्न स्थानों से बीसों पत्र रोज़ गाँधीजी के पास आते हैं, जिनमें वे उनका हार्दिक स्वागत करते हैं और उनके कार्य से सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं। उनके विद्यार्थी-अवस्था के पुराने मित्र प्रायः सब उनसे मिलने आ रहे हैं, और अन्य अंग्रेज़ मित्र और राज्याधिकारीगण जो उनको जानते हैं, सब मिल कर परिचय बढ़ा रहे हैं। अभी उस दिन सर जार्ज बार्नेस उनसे मिलने आये और कहा कि मैं गाँधीजी का बड़ा आभारी हूँ। उस दिन गाँधीजी का मौन दिवस था, अतः केवल हाथ मिलाकर ही उनको वापस लौटना पड़ा। जगह-जगह से आमन्त्रण-पत्र आ रहे हैं कि आप सप्ताह के अन्त का अवकाश इधर बितावें और विश्राम करें। सहानुभूति के कुछ भावों ने तो

भौतिक रूप भी ग्रहण कर लिया है। एक सज्जन ने ५० पौंड का चेक भेजते हुए लिखा है, "आज सुबह 'टाइम्स' अखबार में आपके यूस्टनरोड के मित्र-भवन में स्वागत के उत्तर में दिये हुए भाषण और किंग्सली हाल में अमेरिका के निवासियों के लिए हुए बेतार के भाषण को पढ़कर मुझे बड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ। इन दोनों भाषणों में कथित उपदेश इतने महत्वपूर्ण और विशाल हैं कि मुझे विश्वास है कि संसार भर के जो मनुष्य उसे सुनेंगे और पढ़ेंगे अवश्य समझेंगे और उससे सहानुभूति प्रकट करेंगे। मेरा भारत से पुराना प्रेम है, गत महायुद्ध में कई सैनिकों और डाक्टरों की, जो यहाँ के अस्पताल में थे, सेवा करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो चुका है। आपके उपदेशों के प्रति जो मेरी सहानुभूति है उसका सूचक यह साथ में भेजा हुआ चेक स्वीकार करेंगे तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। आप इसे जिस कार्य में उचित समझें व्यय करदें। मुझे पूर्ण आशा है कि आपकी उपस्थिति में परिषद् का कार्य सुविधापूर्ण होगा और आपको इस देश की कड़ी ठंड से किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा।" लंकाशायर से सैकड़ों पत्र आये हैं, उनमें से एक पत्र में लिखा है, "लंकाशायर के एक मज़दूर की हैसियत से क्या मैं यह प्रकट करदूँ कि हालाँ कि भारतीय महासभा के नेताओं के कार्य से हमको धक्का पहुँचा है, परन्तु मेरी गाँधीजी के प्रति बड़ी श्रद्धा है

ओर मेरे साथी मज़दूरों में से बहुसंख्यक इसी प्रकार गाँधीजी के प्रति श्रद्धा रखते हैं।" एक दूसरे मज़दूर का लम्बा पत्र आया है, जिससे सिद्ध होता है कि सत्य और अहिंसा पर अवलम्बित गाँधी-जी का कार्यक्रम किस प्रकार लंकाशायर तक के मज़दूरों की समझ में आ गया है। पत्र में लिखा है, "ईश्वर ने आपको अपना दूत बनाया है, आप हमारे शराब के व्यापार के शिकार अभागे ग़रीब भारतीयों के ही नेता नहीं हैं, परन्तु आप हमारे भी सबसे बड़े नेता और ईसा के सबसे बड़े अनुगामी हैं, क्योंकि हमारे अन्य नेता तो सब मद्यरूपी राक्षस के अधीन हैं। मैं कट्टर मद्य-विरोधी हूँ और यदि आप कभी रोकडेल की तरफ आवेंगे तो आपको ज्ञात होगा कि मैं प्रत्येक सभा में कुछ मिनट यही उपदेश करने में बिताता हूँ कि मद्य-निषेध ही हमारे सब कष्टों का इलाज है और गाँधीजी ही ऐसे पुरुष हैं जो इस सिद्धान्त पर दृढ़ हैं और सदा इसका प्रचार करते हैं। अब तो जब मैं किसी सभा में जाता हूँ तो लोग चिल्ला पड़ते हैं कि यह गाँधी का मित्र आ गया। परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं तो आपके जूता खोलने वाले की बराबरी भी नहीं कर सकता हूँ। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपके द्वारा हमारे मद्यपी राष्ट्र का ध्यान इस ओर खींचे कि मज़दूर अपनी सब तनख्वाह इन शराबखानों में दे देते हैं और फिर हमारे देशवासी अपना स्वार्थ-साधन करने

के लिए चाहते हैं कि हमारे भारतवासी भाई हमारा बनाया माल खरीदें और हमको उसके द्वारा लाभ हो। अन्त में मेरी प्रार्थना है कि ईश्वर आपका, आपके पुत्र और साथियों का सहायक हो और आप इस देश को मद्य-निषेध का पाठ पढ़ावें और फिर आपका देश आनन्द में रहे और हम और आप सब मिल कर उस ईश्वर का धन्यवाद गावें कि जो सबका भला करता है।"

अनेक मित्रों ने अपनी पुस्तकें और स्वागत-पत्र भेजे हैं, परन्तु उनमें से दो उदाहरण ही पाठकों के सामने रक्खूँगा। श्री ब्रेल्सफर्ड. ने, जिन्हें प्रायः सभी अंग्रेजी जानने वाले भारतवासी जानते हैं, अपनी पुस्तक The. Rebel Inbia (बाग़ी भारत) गाँधीजी के लिए भेजी है और जिस प्रकार मैंने उनको कुछ भारतीय ग्रामों में भ्रमण कराया था, मुझे इंग्लैण्ड के ग्रामों में भ्रमण कराने की इच्छा प्रकट की है। यह पुस्तक अन्य पत्र-कारों की पुस्तकों के समान नहीं है, बल्कि बड़ी ज़िम्मेवरी और मर्मपूर्ण विषयों और निर्भीक विचारों से भरी पड़ी है, जिसकी प्रत्येक बात को साबित करने के लिए वह तैयार हैं। पुस्तक ऐसे उपयुक्त समय पर प्रकाशित हुई है कि इससे बाग़ी भारत को गुलामी का जूड़ा हटाने में कुछ-न-कुछ सहायता अवश्य मिलेगी। ब्रिगेडियर जनरल क्रोज़ियर द्वारा मिस लेस्टर के पास भेजी हुई 'गाँधी को एक शब्द' नामक पुस्तक से तो बड़ा ही आनन्द-दायक आश्चर्य

हुआ। श्री कोज़ियर मिस लेस्टर को अपने पत्र में लिखते हैं, "श्री गाँधी को आश्चर्य होगा कि फ़ौजी अफ़सरों में भी उनका एक प्रशंसक है।" पुस्तक में ऐसी रोमाञ्चकारी बातों का वर्णन है, जिसे पढ़कर खून उबलने लगता है, और लेखक ने उन सबका ज़िम्मेदार ब्रिटिश सरकार को ठहराया है। पाठकों को ज्ञात होगा कि श्री कोज़ियर को आयर्लैण्ड में अपने पद से त्याग-पत्र देना पड़ा था, क्योंकि वह अबला और निःशस्त्र देश-भक्त स्त्रियों पर अत्याचार करनेवालों को क्षमा करने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर सिद्धान्तों से विमुख होने का दोष लगाया है। वह गम्भीर होकर पूछते हैं, "इस छोटे-से सीधे-सादे हिन्दू को अख़बार क्यों कोसते हैं? क्यों उसे अधनंगा फ़कीर और यह कहकर संबोधित करते हैं कि यह ईसाई पादरियों को भारत से निकालना चाहता है? इसी बात पर इन अख़बारों ने सन् १९२०—२१ में आयर्लैण्ड के निवासियों के प्रति विष उगला था और उनपर अपने स्वार्थ के लिए परस्पर हत्यायें करने का आरोप लगाया था। यह सब धूर्त्तता है। अख़बार 'स्वामि-भक्ति', 'देश-भक्ति' आदि चिल्लाते हैं। स्वामि-भक्ति किसके प्रति? क्या अख़बारों के प्रति? 'देश-भक्ति', परमात्मा जाने किसके लिए! क्या लार्ड रादरमियर इस बात को जानते हैं? भारतवर्ष स्वतंत्र हो सकता है; इंग्लैण्ड, फ्रान्स और जर्मनी भी स्वतन्त्र हो सकते

है। सब ऐसे स्वतंत्र हो सकते हैं, जैसा कि उनको होना चाहिए, न कि जैसा वे होना चाहते हों—बशर्ते कि 'देश-भक्ति' कहलाने-वाला संसार-प्रसिद्ध धर्म नष्ट कर दिया जाय और उसके स्थान पर मानव-धर्म की 'भक्ति' स्थापित की जाय।" यह एक ऐसा आरोप है, जिसका उत्तर नहीं हो सकता और जो आज तक नहीं लिखा गया।

ऐसा ही एक दूसरा आरोप लगाने के लिए गाँधीजी इंग्लैण्ड पहुँचे हैं और उन्होंने अपना कार्य आरम्भ भी कर दिया है।

ध्येय

संभवतः उनका पेश करने का ढंग उनके अभियोग को दृढ़तम बना देगा। जो शब्द उनके मुँह से निकलता है वह उनके सत्य और अहिंसा की अटल छाप पड़े हुए हृदयरूपी टकसाल से ढलकर आता है। यही कारण है कि उनका गोलमेज़-परिषद् में दिया हुआ प्रथम भाषण पूर्ण स्वतंत्रता की माँग के रूप में होता हुआ भी निर्दोष समझा गया। यही कारण है कि जब उन्होंने पार्लमेंट के मेम्बरों के सामने हाउस आफ़ कामन्स में लंकाशायर को अपने किये हुए पापों के लिए बाग़ी भारत के प्रति पश्चात्ताप करने को कहा, तो एक भी मेम्बर ने उसमें बुरा नहीं माना। यही कारण है कि जब उन्होंने संघ-शासन-योजना-समिति के कार्य की अनिश्चितता और गोलमेज़-सभा में ब्रिटिश भारत के निराशापूर्ण और निःसार प्रतिनिधित्व के विरुद्ध

घोर असन्तोष प्रकट किया, तो किसीको शिकायत का मौक़ा नहीं मिला। "प्रेम की डोरी से बँधे हुए भारत और इंगलैएड," "राज़ी-खुशी का साझा जो इच्छानुसार तोड़ा जा सके, न कि ऐसा जो एक राष्ट्र के द्वारा दूसरे राष्ट्र पर थोपा जाय," "भारतवर्ष अब ग़ुलाम राष्ट्र होकर न रह सकता है, न रहेगा" इत्यादि ऐसे वाक्य हैं, जो हमारे इङ्गलैएड छोड़ने के बहुत पहले ही यहाँ काफ़ी प्रच-लित हो जायँगे।

सरकार की इस टरकाऊ नीति ने गाँधीजी को ज़रूर हताश कर दिया है और अब वह जल्दी क़दम बढ़वाने की भरसक चेष्टा कर रहे हैं। जब कि व्यापारिक लेन-देन में अभूतपूर्व उथल-पुथल हो रही है, जब बेकारों की संख्या ३०,००,००० तक पहुँच जाने का भय है, जब सोने के ढेर-के-ढेर हवाई जहाज़ों के द्वारा फ्रान्स को उड़े जा रहे हैं, जब कोषाध्यक्ष बजट की घटी पूरी करने के लिए उग्र तरीक़े काम में ला रहे हैं, और जब नौकरी पेशे के लोग विद्रोह करने पर उतारू हो रहे हैं—ऐसी स्थिति में सम्भव है कि वे भारत की ओर अधिक ध्यान देने का समय न निकाल सकें। वे शायद गाँधीजी के इस प्रस्ताव पर विचार करने की इच्छा न रखते हों कि बराबरी का साझीदार बनाया जाने पर भारतवर्ष इङ्गलैएड के बजट को एकबार ही नहीं वरन् हमेशा के लिए पूरा करने में बहुमूल्य सहायता दे सकता है। कदाचित्

वे वास्तविक पश्चात्ताप की भाषा में लिवरपुल में उच्चारण किये हुए श्री चैम्बरलैन के निम्नलिखित महत्वपूर्ण शब्दों को याद करके लाभ उठा सकते हैं—"कभी-कभी ऐसा अवसर आता है, जब साहस बुद्धिमानी से अधिक रक्षा करता है, जब मनुष्यों के हृदयों को स्पर्श करनेवाला तथा उनके भावों को आलोकित करनेवाला कोई महान् श्रद्धापूर्ण कार्य ऐसे आश्चर्य को उत्पन्न करता है, जिसको नीतिकुशलता की कोई चाल प्राप्त नहीं कर सकती।"

[२]

वही रफ्तार

पाठकों को याद होगा कि गाँधीजी ने गत १७ सितम्बर को संघ-शासन-योजना-समिति में 'सम्राट् के सलाहकारों के खिलाफ़ एक नम्र और विनीत शिकायत' की थी। उन्होंने लार्ड सैंकी द्वारा प्रार्थना की थी कि सम्राट् के सलाहकार अपने मन की बात भारत के प्रतिनिधियों के सामने रक्खें; तफ़सील की बातों पर खतम न होने वाली चर्चा न करें, उनका निर्णय तो भारतवासी पीछे कर लेंगे, अभी तो वे अपनी सारी बाज़ी सामने रक्खें और साफ़-साफ़ तजवीज़ें बता दें। किन्तु अभी तक वही उकता देने वाला ढंग जारी है। ये लोग खूँटे के चारों ओर दूर-दूर चक्कर लगाते रहते हैं और मुख्य विषय पर आते ही नहीं। गाँधीजी ने तो इस समिति के समक्ष महासभा की स्थिति

रख दी है और महासभा के आदेश को अच्छी तरह स्पष्ट करके बता दिया है।

किन्तु अंग्रेज जनता घरेलू समस्याओं में ही [illegible] होकर एक-के-बाद-एक नयी-नयी उपशामक योजना करती जाती है, जब कि भारत में सरकारी अधिकारी—गाँधीजी के शब्दों में—'सरकार का अडग और अ-नमनीय रुख' प्रकट करते जा रहे हैं। ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था और ब्रिटिश मुद्रा के प्रति फिर विश्वास पैदा करने के लिए विलायत की राष्ट्रीय सरकार के प्रयत्न की ओर भारत-सचिव ध्यान दिलाते हैं; किन्तु स्वयं ब्रिटिश सरकार में पुनः विश्वास पैदा कराने के लिए न तो यहाँ और न भारत में ही कुछ प्रयत्न किया जाता है।

भारतीय मामलों में अनावश्यक हस्तक्षेप के आरोप की आशङ्का से लार्ड इर्विन इन बातों से जानबूझ कर अलग रह रहे हैं। इस बीच गाँधीजी अपने प्रत्येक क्षण का उपयोग ब्रिटिश जनता के सामने भारत का दावा पेश करने में कर रहे हैं। उन्होंने

भारत क्या चाहता है ?

'डेलीमेल' में एक लेख लिखकर अपने 'मुखिया' अर्थात् भारतीय राष्ट्रीय महासभा(कॉंग्रेस) का परिचय कराते हुए संक्षेप में भारतीय माँग समझाई है। सुशिक्षित अंग्रेजों तक को भारत के संबंध में व्यवस्थित रूप से झूठा इतिहास बता कर, उनके मन में जो पूर्वगृहीत कुधा-

दरिद्रता के प्रश्न पर खिंचा, उतना उसपर नहीं खिंचा। मज़दूर-दल के सदस्य तो शुरू से आखिर तक अपने बेकारों का ही ख़याल करते रहे और उनके प्रश्नों का मुख्य विषय था लङ्काशायर के कपड़े। गाँधीजी ने उनसे करुण स्वर में पूछा, "मुझे बताइए, जब कि भारत स्वयं अपना कपड़ा तैयार कर लेने में समर्थ हो, तब भी क्या वह लङ्काशायर का कपड़ा खरीदने के लिए नीतिबद्ध है? हिन्द को पामाल एवं बरबाद करके स्वयं समृद्ध बनने के कारण, क्या लङ्काशायर को उसके प्रति कुछ प्रायश्चित्त नहीं करना चाहिए?" इन लोगों के पास इसका कुछ उत्तर न था। किन्तु एक सदस्य ने अपने स्वाभाविक अंग्रेज़ी उद्धतपने से कहा—"यदि तुम हमारा कपड़ा नहीं ख़रीदोगे तो हम तुम्हारी चाय और सन नहीं ख़रीदेंगे।" गाँधीजीने कहा—"नहीं, हर्गिज़ मत ख़रीदिए। यह तो राज़ी-ख़ुशी की बात है। हम अपनी चाय या सन ज़बर्दस्ती आपपर नहीं लादना चाहते।"

तीनों दलों—मज़दूर, उदार और अनुदार—के सदस्यों के साथ की मुलाक़ात तो और भी अधिक सजीव थी। क्योंकि उसमें गाँधीजी ने अपील अथवा प्रार्थना करने के बजाय, भारत के स्वातन्त्र्य की दलीलें ज़ोर से पेश कीं तथा 'संरक्षणों' और 'विशेष अधिकारों' की विस्तार से चर्चा की। "सेना और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर अधिकार के बिना मिली हुई स्वतन्त्रता स्वतं-

ग्रता नहीं कही जा सकती; इतना ही नहीं, वह तो हलके रूप का स्वायत्त शासन भी न होगा। वह तो निरा भूसा होगा, जिसे छूना तक उचित नहीं।" सीमाप्रान्त के हव्वे का भण्डाफोड़ करते हुए उन्होंने कहा कि पिछले जमाने में अनेक हमलों और आक्रमणों के होते हुए भी हम उनका मुक़ाबला करके टिके रहे, उसी तरह भविष्य में भी हम उनसे अपनी रक्षा कर सकेंगे। अंग्रेज़ी शासन की शान्ति और व्यवस्था अधिकांश में काल्पनिक है, और ब्रिटिश भारत की अपेक्षा देशी रियासतों में भारतीय अधिक शान्ति से रहते हैं। "इसलिए यह ख़याल न कीजिए कि आपके बिना हमें आत्महत्या करनी पड़ेगी अथवा हम एक-दूसरे का गला काटने लगेंगे। इसका यह अर्थ नहीं कि हम हरेक अंग्रेज़ सोल्जर या सिपाही अथवा अफ़सर को निकाल बाहर करेंगे। हमें ज़रूरत होगी और यदि वे हमारी शर्तों पर रहना स्वीकार करेंगे तो हम उन्हें रक्खेंगे। लेकिन मुझसे कहा गया है कि एक भी अंग्रेज़ सिपाही या सिविलियन हमारी मातहती में नौकरी न करेगा। मैं स्पष्ट ही कह देना चाहता हूँ कि इस जातिगत अभिमान का मतलब मैं नहीं समझ सकता। हम—अकेली महासभा नहीं बल्कि सभी पक्ष—इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि अंग्रेज़ी शासन अत्यधिक ख़र्चीला है; और फ़ौजी ख़र्च राष्ट्र को कुचल कर मरणासन्न कर रहा है। हलके-से-हलके दर्जे की स्वतन्त्रता मिलने को

एक कसौटी इस फ़ौज पर हमारा अधिकार होना है। संरक्षणों के प्रश्न में सिविल सर्विस को मौजूदा आधार पर बनाये रखने की बात आती है। सच बात यह है कि ये सिविलियन कितने ही योग्य, उद्योगी और कितने ही कार्यकुशल हों, तो भी यदि वे अत्यधिक खर्चीले हों, तो वे हमारे लिए किसी काम क नहीं। भारत में जिस प्रकार करोड़ों मनुष्य बिना डाक्टर एवं चिकित्सक की सहायता के अपना जीवन बिता लेते हैं, उसी प्रकार हम आपके विशेषज्ञों की सहायता बिना अपना काम चला लेंगे। यह कहा जाता है कि उनका भारी वेतन उन्हें रिश्वत आदि लालचों से बचाये रखने की गारण्टी है। लेकिन यह बहुत बड़ी क़ीमत है और हिन्दुस्थानी नौकर जो रिश्वत लें, उसकी अपेक्षा मुट्ठी भर सिविलियनों का भारी वेतन और अन्य खर्च कहीं अधिक हो जाता है।

"वर्तमान संरक्षणों के अनुसार ८० फ़ीसदी आमदनी तो विदेशियों के हाथों सौंप दी जायगी और बाक़ी २० फ़ी सदी से हमें

आर्थिक संरक्षण

शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा आदि विभाग चलाने होंगे। इस स्वतन्त्रता को मैं हाथ से छूना तक पसन्द न करूँगा। जिस सरकार का पाँच-दस वर्ष में दिवाला निकलना निश्चित हो, मैं उसका चार्ज लेने की अपेक्षा बाध्य होकर परतन्त्र रहना और अपने आपको बाग़ी घोषित करना अधिक पसन्द

करूँगा। और, मैं यह साहसपूर्वक कह सकता हूँ कि, कोई भी आत्म-गौरववाला भारतीय इस स्थिति को पसन्द न करेगा। मैं सविनय-भंग द्वारा अपना खून बहा कर भी लडूँगा; और मैं कहना चाहता हूँ कि मैं आपके साथ एक गुलाम की तरह सहयोग करने की अपेक्षा यह अच्छा समझूँगा कि आप मुझे अपनी जेल में ठूँस दें और मुझपर लाठी-प्रहार करें। मेरी नम्र सम्मति के अनुसार इन दोनों संरक्षणों का अर्थ यह गुलामी ही है।"

इसके बाद गाँधीजी ने अल्पसंख्यक जातियों के संरक्षण का प्रश्न हाथ में लिया और उसके आर्थिक संरक्षणों की चर्चा की;

यूरोपियन

क्योंकि इनकी माँग अंग्रेजों के हित के लिए, जो भारत में अल्पसंख्यक जातियों में है, की जाती है। यह माँग सर्वथा असंगत है; इसमें न तो अंग्रेजों की ही शोभा है, न हिन्दुस्थानियों की। मुट्ठी भर अंग्रेज ३० करोड़ 'गुलामों' के पास से संरक्षण माँगें, यह विचार गाँधीजी से सहा नहीं जा सकता था। शत्रु से रक्षा की गारण्टी माँगी जा सकती है, मित्र से हर्गिज नहीं। भारतवासी उनसे जो सेवा लें, उससे जितना संरक्षण मिले, उसीमें उन्हें सन्तोष मान लेना चाहिए। गाँधीजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा—"यदि अंग्रेजों का व्यापार भारतीयों के लिए हितकारक हो तो उसके लिए किसी संरक्षण की आवश्यकता नहीं। किन्तु इसके विपरीत यदि वह भारत-हित-विरोधी हो,

तो चाहे कितने ही संरक्षण क्यों न हों, उनसे कुछ लाभ न होगा। विश्वास रखिए कि तीस करोड़ हिस्सेदारों के कन्धों पर से जुआ उतर जाने पर वे समृद्ध भागीदार होंगे और इंग्लैण्ड को, किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र को लूटने में नहीं प्रत्युत् सब राष्ट्रों के कल्याण के लिए, साझेदारी से सहायता पहुँचाने के लिए तत्पर रहेंगे।"

मिलें

बम्बई के मिल-मालिकों से समझौता या उनके शब्दों में "सौदा" करके गाँधीजी ने ज़बर्दस्त भूल की। ऐसा वहाँ के मेम्बरों का ख़याल था। पर गाँधीजी ने तो इससे भी आगे बढ़कर कहा कि, केवल बम्बई ही नहीं, अहमदाबाद के मिल-मालिकों से भी समझौता या "सौदा" किया गया है, किन्तु इस 'सौदे' की शर्तों से खादी बनाने वालों के सामने से मिलों की प्रतियोगिता दूर हो जाती है। यह ठीक है कि इनमें से कई मिलों के मज़दूरों को बुरी तरह पिसना पड़ता है; फिर भी मिल-मालिक नम्र दबाव और समझौते से झुकते जाते हैं और, स्वयं श्री टॉम शा के कथनानुसार, अहमदाबाद का मज़दूर-संघ संसारभर में आदर्श है।

संघ-शासन-योजना-समिति के गाँधीजी के दूसरे भाषण से हिन्दुस्थान में कुछ मित्र तथा यहाँ के कुछ मित्र चौंक उठे हैं। संघ-शासन में सम्मिलित होनेवाले प्रत्येक नरेश से वह कम-से-कम

कितने की अपेक्षा करते हैं, यह गाँधीजी ने छिपा नहीं रक्खा है;

स्पष्टी करण

और देशी राज्यों के मित्रों को उन्होंने वचन दे दिया है कि इससे ज़रा भी कम वे हर्गिज़ न लेंगे। भाषण में तो नरेशों को अपना भाग देने और समिति के सामने योजना रखने की प्रार्थना थी। इसमें गाँधीजी ने समर्पण कहाँ किया है? समर्पण का प्रश्न तो तभी आसकता है, जब उनकी योजना समिति के सामने आवे।

भाषण के जिस अंश से यहाँ के मित्रों को आश्चर्य हुआ है, वह वह है कि जिसमें गाँधीजी ने अप्रत्यक्ष (Indirect) चुनाव का तत्त्व स्वीकार किया है। पर वे भूल जाते हैं कि एक ही व्यवस्थापिका सभा और बालिग़ (केवल 'चरित्र की मर्यादा' वाला) मताधिकार उनकी योजना के अनिवार्य अंग हैं, और उनसे हम "अकेले मुसलमानों को ही नहीं बल्कि अछूत, ईसाई, मज़दूर और अन्य सब वर्गों की उचित आकांक्षाओं का समाधान कर सकते हैं।"

किन्तु ये बातें बड़े लोगों के लिए छोड़ कर मुझे अब किंग्सली हॉल के अपने घर की ओर आना चाहिए। मित्र इस बात की

उनका घर

शिकायत कर रहे हैं कि गांधीजी महल और होटल छोड़ कर इतनी दूर रह रहे हैं। अंग्रेज़ मित्र सेण्ट जेम्स के महल के निकट के अपने घर देने के लिए तत्परता दिखा

रहे हैं, किन्तु गाँधीजी ने निश्चय किया है कि यह ग़रीबों का घर अपना घर बन गया है उसे न छोड़ा जाय। मित्रों से मिलने के लिए एक दफ्तर रक्खा जा सकता है—इसके लिए कई भारतीय मित्रों ने अपने घर देने की इच्छा प्रकट भी की है; किन्तु ईस्ट एण्ड में घूमने जाते समय जो मित्र उनसे मिलते हैं, और जो बालक उन्हें घेर कर उनसे किसी समय बातें कर लेते हैं, उन्हें वे छोड़ नहीं सकते। वस्तुतः इन बालकों के साथ की एक ख़ास मुलाक़ात से गाँधीजीको बड़ा आनन्द हुआ। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, मानों वह स्वयं आश्रम में हों,बालकों के सादे किन्तु गहरे और चकित करनेवाले प्रश्नों का उत्तर देते हों और उनके द्वारा सत्य और प्रेम का सन्देश फैलाते हों। वे पूछते हैं—'मिस्टर गाँधी, आपकी भाषा क्या है ?' और गाँधीजी उन्हें अंग्रेज़ी और हिन्दी भाषाओं के समान शब्दों की व्युत्पत्ति बताते हैं और समझाते हैं कि आख़िर तो हम सब एक ही पिता के पुत्र हैं। उनसे वह अपने बचपन की बातें करते हैं, और यह समझाते हैं कि घूँसे का जवाब घूँसे से देने की अपेक्षा घूँसे से न देना कितना अच्छा है। स्वयं कच्छ क्यों धारण करते हैं, और स्वयं उनके बीच यहाँ क्यों रहते हैं, यह भी उन्हें बताते हैं। एक दिन उन्होंने कहा—"मेरे लिए तो सच्ची गोलमेज़-परिषद् यह है। मैं जानता हूँ कि ऐसे मित्र हैं, जो मुझे घर दे सकते हैं और मेरे लिए उदारता से पैसे ख़र्च कर

सकते हैं; किन्तु मैं मिस लेस्टर के घर में सुखी हूँ, क्योंकि जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करने का मेरा ध्येय है उसका स्वाद मुझे यहाँ मिलता है। मिस लेस्टर ने मेरे लिए कोई नया खर्च नहीं किया; किन्तु उन्होंने और उनके साथियों ने मेरे लिए अनेक असुविधायें उठाई हैं और अपने सिर पर बहुत परिश्रम लेलिया है। मैंने जो कोठड़ियाँ रोकी हैं, उन्हें खाली कर वे स्वयं बरामदों में सो रहते हैं। वे अपना काम स्वयं कर लेते हैं। मैंने और मेरे साथियों ने उनका काम बढ़ा दिया है और इसे वे प्रसन्नतापूर्वक कर लेते हैं। ऐसी दशा में मुझसे यह स्थान किस तरह छोड़ा जा सकता है?" उनकी यह दलील अकाट्य है; उसके सामने श्री एण्डरूज तक के प्रयत्न सफल नहीं हो सकते। जिस दिन स्थान बदलने का प्रश्न उठा, उसी दिन एक वृद्ध, पतली और ठिंगनी महिला आई। उनकी आँखें तेज से लाल हो रही थीं। वह गाँधीजी से केवल हाथ मिलाने आई थीं। वापस जाते समय उन्होंने मुझसे कहा—"इस स्थान को छोड़ने का विचार न कीजिए। यह म्यूरियल का घर नहीं है। यह यहाँ के रहने वालों अथवा हमारे लिए भी नहीं बनाया गया है। यह तो गाँधीजी जिस आदर्श की मूर्ति हैं, उस आदर्श के लिए जीनेवाले उसके (मिस लेस्टर के) भाई का स्मारक है। गाँधीजी के योग्य ही यह स्थान है।" लगभग ८० वर्ष अवस्था की यह महिला,

'टाम ब्राउन्स स्कूल डेज़' के लेखक की पुत्री मिस ह्यूज हैं। यहाँ जितने ग़रीब और मामूली आदमी गाँधीजी से परिचय पाने और मिलने की सुविधा पा जाते हैं, उनकी संख्या से यह अनुमान किया जा सकता है कि यह स्थान कितने महत्व का है। इस प्रकार के मिलन एवं सम्बन्ध ही जीवन को समृद्ध और जीने योग्य बनाते हैं। जिन स्त्री-पुरुषों के लिए जीवन एक शतरञ्ज का चित्रपट (बोर्ड) है और साथी खिलाड़ी को मात देना सर्वाधिक चतुराई है, उनसे मिलने में कुछ सार नहीं। ऊपर कहे एक-दो सम्मिलनों की यहाँ चर्चा करना चाहता हूँ। एक दिन तो ऐसा मालूम होता था, मानों वह केवल हस्ताक्षर—दस्तख़त—करने का ही दिन हो। गाँधीजी के हस्ताक्षर कराने में सफलता प्राप्त करने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीवन-कथा सुना जाता।

उनके मित्र

बेन प्लेटन नामक एक भाई मिस लेस्टर के साथी हैं। हमारे लिए सुबह से शाम तक निरन्तर काम करते रहते हैं; किन्तु गाँधीजी की नज़र में चढ़ने का कभी प्रयत्न नहीं करते। एक दिन वह एक किताब लाये और उसमें गाँधीजी के हस्ताक्षर करवाने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा, "गाँधीजी, मैंने यह पुस्तक एक शिलिंग में ख़रीदी है। उस समय मैं 'डेली हेरल्ड' में काम करता था। वहाँ यह पुस्तक समालोचना

सदुपयोग

के लिए आई, किन्तु तुच्छ मानी जाकर समालोचना के अयोग्य समझी गई और इसलिए बेच डालने के लिए रद्दी में डाल दी गई। इससे मुझे यह एक शिलिंग में मिल गई। मैं इसे घर ले गया और शुरू से अखीर तक पढ़ कर उसका तत्काल उपयोग किया। किंग्सली हाल में एकत्र लोगों को मैंने आपका परिचय कराया, और आपके सम्बन्ध में कई व्याख्यान दिये। उस दिन से मेरा आपके साथ परिचय आरम्भ हुआ है।"

गाँधीजी इससे आश्चर्यचकित हो प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—"अच्छा, म्यूरियल से मेरा परिचय कराने वाले तुम थे?"

बेन ने कहा—"मैं यह कहने की धृष्ठता तो नहीं कर सकता। कदाचित वह पहले से ही आपको जानती हों। किन्तु दूसरे मित्र तो, मैंने इस पुस्तक में से जो कुछ कहा, उसीसे आपको अच्छी तरह जान सके। इस पुस्तक में बहुत सी बातें ऐसी थीं, जो स्वयं मेरे विचार में थीं; किन्तु मैंने कभी उन्हें शब्दों में प्रकट नहीं किया था।"

गाँधीजी ने हँसते हुए कहा—"तब मैंने सब विचार तुमसे उधार लिये या तुमने मुझसे लिये। कुछ भी हो, एक शिलिंग खर्च करना अच्छा ही हुआ। क्या ऐसा नहीं है?"

उन्होंने कहा—"इससे अच्छा उपयोग उसका हो नहीं सकता था। और आप इस बात से तो सहमत होंगे ही कि मैंने जो

कुछ किया, उससे मैं आपके हस्ताक्षर पाने का अधिकारी हूँ ?"

यह एक शिलिंग की पुस्तक कौनसी होगी, क्या पाठक इसका अनुमान लगा सकेंगे ?

शुभ कामना

एक व्यक्ति आया; वह नौका-सैन्य में था और मीरां बहन के पिता को जानता था। मीरां बहन अपने भूतपूर्व एडमिरल की पुत्री हैं, इस ख़याल से उनपर वह अपना विशेष अधिकार समझता था। एक दिन वह घूमकर वापस लौट रही थीं कि वह आया और गाँधीजी के हस्ताक्षर पाने का अपना अधिकार बताते हुए कहने लगा—"मैं २१ वर्ष तक नौका-सैन्य अर्थात् जल-सेना में था। मैंने तुम्हारे पिता की मातहती में नौकरी की है। और मेरा जँवाई गाँधीजी के लिए बकरी का दूध भेजता है। क्या वह मुझे अपने हस्ताक्षर देने की कृपा न करेंगे ?" उसकी यह प्रार्थना व्यर्थ न गई। गाँधीजी ने उसे अन्दर बुलाया। पास पहुँच कर उसने आत्म-कथा सुनाई, और साथ में कहा—

"साहब, मैं आपके और आपके उद्देश्य के लिए सचमुच शुभ कामना करता हूँ। मैंने दुनिया खूब देखी है। महायुद्ध में मैंने नौकरी की; जगह-जगह फैंका गया; ठिठुरते पैरों गेली-पोली से सालेनियां के लिए कूच का हुक्म हुआ, और अकथनीय कष्टों का सामना करना पड़ा। आगामी युद्ध में नौकरी

करने की अपेक्षा तो मैं शीघ्रही जेल चला जाना पसन्द करूँगा। साहब, वस्तुतः यह एक अत्यन्त भयङ्कर कार्य है। मैं तो आपके लिए लड़ना अधिक पसन्द करता हूँ। आपके उद्देश्य में सफलता मिले, यही मैं चाहता हूँ।" वह अपने साथ अपनी लड़की और दूध पहुँचानेवाले दामाद के फोटो लाया था।

वह जाने की तैयारी में था कि गाँधीजी ने उससे पूछा—"तुम्हारे कितनी सन्तान है ?"

उसने कहा—"साहब, आठ; चार लड़के और चार लड़की।"

गाँधीजी ने कहा—"मेरे चार लड़के हैं, इसलिए मैं तुम्हारे साथ आधे रास्ते तक तो दौड़ सकता हूँ!"

यह सुन कर सारा घर हँसी से गूँज उठा।

चार्ली चेपलिन

कदाचित् थोड़े ही लोग इस बात पर विश्वास करेंगे कि जब गाँधीजी से यह कहा गया कि चार्ली चेपलिन उनसे मिलना चाहते हैं, तो उन्होंने निर्दोष भाव से पूछा कि यह महापुरुष कौन हैं? अनेक वर्षों से गाँधीजी का जीवन कुछ ऐसा हो गया है कि उन्होंने अपने लिए जो काम निश्चित कर रक्खा है, उसे करते-करते सामने आ जाने वाले काम के सिवा दूसरा कुछ देखने या सुनने का उन्हें अवसर नहीं मिलता। किन्तु जब उन्हें मालूम हुआ कि श्री चार्ली चेपलिन सर्वसाधारण जनता में के ही एक व्यक्ति हैं, सर्वसाधारण

जनता के लिए ही जीते हैं और उन्होंने लाखों आदमियों को हँसाया है, तब उन्होंने उनसे डा० कतियाल के घर पर, जिन्होंने गाँधीजी जबतक लन्दन में रहें तबतक उनके उपयोग के लिए अपनी मोटर उनके सुपुर्द कर दी है, श्री चेपलिन से मिलना स्वीकार किया। मुझे श्री चेपलिन सिनेमा के चित्रपटों में जैसे दिखाई देते हैं, उसके विपरीत बड़े खुशमिजाज और निरभिमान सज्जन प्रतीत हुए; किन्तु कदाचित् अपना स्वरूप छिपाने में ही उनकी कला है। गाँधीजी ने उनके विषय में कुछ न सुना था, किन्तु ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने गाँधीजी के चर्खे के बारे में सुन रक्खा था। उन्होंने पहला ही प्रश्न यह किया कि गाँधीजी मशीनों का विरोध क्यों करते हैं? गाँधीजी इस प्रश्न से प्रसन्न हुए और उन्होंने तफ़सील के साथ बतलाया कि भारत के सब किसानों की छः महीने की बेकारी में उनके पुराने घरेलू एवं सहायक धन्धे को पुनरुज्जीवित किये बिना काम नहीं चल सकता। "तब केवल कपड़े के विषय में ही यह बात है?" गाँधीजी ने कहा—"निस्सन्देह। प्रत्येक राष्ट्र को अन्न-वस्त्र तो स्वयं ही पैदा करना चाहिए। पहले हम यह सब कर लेते थे, और इसलिए आगे भी वैसा ही करना चाहते हैं। इंग्लैण्ड बहुत अधिक प्रमाण में माल तैयार करता है और इसलिए उसे खपाने के लिए उसे बाहर के बाज़ार ढूँढने पड़ते हैं। हम इसे लूट कहते हैं। और लुटेरा इंग्लैण्ड

संसार के लिए खतरा है। इसलिए यदि अब भारत मशीनों का उपयोग स्वीकर करले और अपनी आवश्यकता से अधिक कपड़ा तैयार करे, तो ऐसा लुटेरा भारत संसार के लिए कितना बड़ा खतरा साबित होगा ?"

श्री चेपलिन ने प्रश्न को तुरन्त ही पकड़ते हुए पूछा—"इस-लिए यह प्रश्न केवल भारत तक ही सीमित है ? किन्तु मान लीजिए कि आपके भारत में रूस की सी स्वतन्तत्रा हो और आप अपने बेकारों को दूसरा काम दे सकते हों तथा सम्पत्ति का बरा-बर बँटवारा कर सकते हों, तब तो आप मशीनों का तिरस्कार न करेंगे ? क्या आप स्वीकर न करेंगे कि मजदूरों के काम के घण्टे कम हों, और उन्हें विश्राम के लिए अधिक फुरसत मिलनी चाहिए ?"

गाँधीजी ने कहा—"अवश्य।"

इस प्रश्न पर गाँधीजी के सामने सैकड़ों बार चर्चा हो चुकी है, किन्तु एक अजनबी विदेशी को इतनी तेज़ी से स्थिति को समझ लेते मैंने नहीं देखा। इसका कारण कदाचित् उनके मन में किसी प्रतिकूल भाव एवं पक्षपात का न होना और उनकी निश्चित सहानुभूति हो।

यह सहानुभूति उस समय प्रत्यक्ष दिखाई दी, जब श्रीमती सरोजिनीदेवी ने उन्हें विलायत की एक जेल की मुलाक़ात की

याद दिलाई। उन्होंने कहा—"मैं धनवानों के गिरोह का सामना कर सकता हूँ, किन्तु इन क़ैदियों के सामने खड़ा नहीं रहा जाता। मैं मन में कहता हूँ, 'ईश्वर की कृपा न होती, तो तू भी इनके ही साथ होता।' वहाँ कुछ भी नहीं किया जा सकता, इससे मन में बड़ी तुच्छता प्रतीत होती है। अपने और उनके बीच में लोहे की सलाख़ के सिवा क्या फ़र्क़ है? मैं तो जेलों को जड़मूल से सुधारने के पक्ष में हूँ। अन्य रोगों की तरह अपराध करना भी एक रोग है और इसका इलाज जेलों में नहीं वरन् शिक्षणगृहों में होना चाहिए।"

[३]

साम्राज्य नहीं साझेदारी

एक विद्यार्थी के प्रश्न के उत्तर में गाँधीजी ने कहा—"लाहौर और करांची के प्रस्ताव एक ही हैं। करांची का प्रस्ताव लाहौर के प्रस्ताव का उल्लेख कर उसे पुनः स्वीकृत करता है; किन्तु यह बात स्पष्ट कर देता है कि पूर्ण स्वतन्त्रता सम्भवतः ग्रेट ब्रिटेन के साथ की सम्मानयुक्त साझेदारी को अलग नहीं करती। जिस प्रकार अमेरिका और इंग्लैण्ड के बीच साझेदारी हो सकती है, उसी तरह हम इंग्लैण्ड और भारत के बीच साझेदारी स्थापित कर सकते हैं। करांची के प्रस्ताव में जो सम्बन्ध-विच्छेद का उल्लेख है, उसका

अर्थ यह है कि हम साम्राज्य के होकर नहीं रहना चाहते। किन्तु भारत को ग्रेट ब्रिटेन का साझेदार आसानी से बनाया जा सकता है।

"एक समय था, जब मैं औपनिवेशिक पद पर मोहित था; किन्तु बाद में मैंने देखा कि औपनिवेशिक पद ऐसा पद है, जो एक ही कुटुम्ब के सदस्यों—आस्ट्रेलिया, कनाड़ा, दक्षिण अफ्रिका और न्यूज़ीलेण्ड आदि—को समान करनेवाला है। ये एक ही स्रोत से निकली हुई रियासतें हैं, जिस अर्थ में कि भारत नहीं हो सकता। इन देशों की अधिकांश जनता अंग्रेज़ी भाषा-भाषी है और उनके पद में एक प्रकार का ब्रिटिश-सम्बन्ध सन्निहित है। लाहौर महासभा ने भारतीयों के दिमाग़ में से साम्राज्य का ख़याल धो डाला है और स्वतन्त्रता को उनके सामने रक्खा है। करांची के प्रस्ताव ने इसका यह सन्निहित अर्थ किया कि एक स्वतन्त्र राष्ट्र की हैसियत से भी हम ग्रेटब्रिटेन के साथ, अवश्य ही यदि वह चाहे तो, साझेदारी क़ायम कर सकते हैं। जबतक साम्राज्य का ख़याल बना रहेगा, तबतक डोर इङ्गलैण्ड की पार्लमेण्ट के हाथ में रहेगी; किन्तु जब भारत ग्रेटब्रिटेन का एक स्वतंत्र साझेदार होगा, तब सूत्र-संचालन लन्दन के बजाय दिल्ली से होगा। एक स्वतंत्र साझेदार की हैसियत से भारत, युद्ध और रक्तपात से थकित संसार के लिए, एक विशेष सहायक होगा। युद्ध के फूट निक-

लने पर उसे रोकने के लिए भारत और ग्रेटब्रिटेन का समान प्रयत्न होगा—अवश्य ही हथियारों के बल से नहीं, वरन् उदाहरण के दुर्दमनीय बल से। आपको यह व्यर्थ का अथवा बहुत बड़ा दावा प्रतीत होगा और आप इसपर हँसेंगे। किन्तु आपके सामने बोलने वाला उस राष्ट्र का एक प्रतिनिधि है, जो उसके दावे को पेश करने के लिए ही आया है, और जो इससे किसी क़दर कम पर रज़ामन्द होने के लिए तैयार नहीं है; और आप देखेंगे कि यदि यह प्राप्त न हुआ तो मैं पराजित होकर चला जाऊँगा, किन्तु अपमानित होकर नहीं। मैं ज़रा भी कम न लूँगा; और यदि माँग पूरी नहीं की गई, तो मैं देश को और भी अधिक विस्तृत और भयंकर परीक्षणों में उतरने के लिए आह्वान करूँगा, और आपको भी हार्दिक सहयोग के लिए लिखूँगा।"

एक दूसरी सभा में उन्होंने कहा—"हमारे अहिंसात्मक आन्दोलन का उद्देश्य, बिना मन में कुछ पाप रक्खे, भारत के लिए किसी गुप्त अर्थ में नहीं वरन् उसके वास्तविक अर्थ में पूर्ण स्वराज्य है। मैं मानता हूँ कि प्रत्येक देश, बिना किसी योग्यता के अथवा दूसरे प्रश्न के, इसका अधिकारी है। जिस प्रकार प्रत्येक देश खाने, पीने और श्वास लेने के योग्य है, इसी प्रकार प्रत्येक देश अपनी व्यवस्था करने के योग्य है—इसकी परवा नहीं कि वह कितनी ही बुरी तरह क्यों न हो। जिस प्रकार ख़राब फेफड़े वाला

व्यक्ति कठिनाई से साँस ले सकेगा, उसी प्रकार भारत भी अपने रोगों के कारण हजार गलतियाँ कर सकता है। शासन की योग्यता का सिद्धान्त केवल आँसू पोंछने के समान है। स्वतंत्रता का अर्थ विदेशी अङ्कुश से मुक्त होने के सिवा और कुछ नहीं है।"

भारतीय व्यापारियों की सभा में भाषण देते हुए उन्होंने यह स्पष्ट शब्दों में समझाया कि "विदेशी अङ्कुश से मुक्त होने का क्या अर्थ है।" उन्होंने कहा—"महासभा इस निश्चित निर्णय पर पहुँची है कि अपनी अर्थ-व्यवस्था पर हमारा पूर्ण अधिकार होना चाहिए। अर्थ-व्यवस्था के इस पूर्णाधिकार बिना स्वराज्य-विधान नामधारी कोई भी विधान देश की माँग की पूर्ति न कर सकेगा। आप जानते हैं कि महासभा ने मुझे जो आदेश दिया है, उसका यह एक भाग है कि पूर्ण स्वराज्य का कोई अर्थ न होगा, यदि उसके साथ राजस्व, सेना और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर पूर्णाधिकार न हो। कम-से-कम मैं तो केवल पूर्ण स्वतंत्रता के सिवा किसी प्रकार के शासन को उत्तरदायी शासन अथवा स्व-शासन नहीं कह सकता, यदि सेना और राजस्व पर हमारा पूर्ण अधिकार अथवा पूरा क़ब्ज़ा न हो।"

यह बात कि वह पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते हैं, और उससे ज़रा भी कम न लेंगे, गाँधीजी को इस कार्य की कठिनाइयों के प्रति विशेष सजग बना देती है। क्योंकि परिषद् प्रति दिन बहुत मन्द गति

से रेंगती हुई चलती है, उन्हें अब यह स्पष्ट हो गया है कि कार्य अत्यन्त दुःसाध्य है। सर अलीइमाम के शब्दों में परिषद् राष्ट्र के चुने हुए प्रतिनिधियों की नहीं प्रत्युत पार्लमेण्ट के प्रधानमन्त्री की पसन्द के प्रतिनिधियों की बनी हुई है। प्रधानमन्त्री ने कहा—"मैं अपने आपको बलिदान का बकरा न बनाऊँगा; किन्तु मैं चाहता हूँ कि आप सब अपने बलिदान के बकरे बनें।" प्रधानमन्त्री के इन शब्दों में उनके योग्य अनजान मज़ाक था, जिसे यहाँ के विनोदी पत्रों ने एक कल्पित राक्षस के रूप में कार्टून (व्यंगचित्र) बना कर अमर कर दिया। परिषद् के मुस्लिम मित्रों के सामने 'राष्ट्रीय मुसलमानों' का नाम तक लेना एक प्रकार का शाप है, और दस वर्ष पहले जिस व्यक्ति को स्वयं उन्होंने गाँधीजी से परिचित कराते हुए सम्माननीय और बेशक़ीमत बतलाया था, और जो हमारे सब कठिन समयों में राष्ट्र के साथ खड़ा रहा है, आज मुसलमानों के एक प्रभावशाली दल के विचार प्रकट करने के लिए आवश्यक नहीं समझा जाता। गाँधीजी की पूर्ण समर्पण की बात से हिन्दू मित्र भयभीत हैं, और छोटे अल्पसंख्यक वर्गों के नामधारी प्रतिनिधियों को इस समर्पण में अपने हितों के स्वाहा हो जाने का भय है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि गाँधीजी का यह वक्तव्य अरण्य-रोदन सिद्ध हो कि जो लोग राष्ट्र-हित साधन करना चाहते हों वे कोई अधिकार न माँगें,

कठिनाइयाँ

और जो अधिकार चाहते हैं उनके लिए सुविधा कर दें। उन्होंने ज़ोर से कहा—"क्या आप समझते हैं कि यदि मैं इसे हल कर सका तो मैं इस अभागे प्रश्न को झूलता हुआ छोड़ दूँगा और इस प्रकार अपनेको संसार के सामने हास्यास्पद बनाऊँगा ?"

दूसरी ओर, सरकार की ओर से कोई निर्णायक प्रेरणा नहीं हुई। कदाचित् वह तमाशा देखती रहना पसन्द करती है। जैसा कि उन्होंने कल रात को लन्दन निवासी भारतीयों के स्वागत के उत्तर में कहा था, गाँधीजी ने यह बात सरकार के सामने स्पष्ट कर दी है। उन्होंने कहा था—"सरकार ने अपने मन की बात—अपनी योजना—हमारे सामने नहीं रक्खी है; किन्तु वह समय तेज़ी से आ रहा है, जब कि उसे किसी न किसी तरह अपनी नीति की घोषणा करनी होगी। क्योंकि जो सदस्य छः हज़ार मील दूर अपना घर छोड़ कर यहाँ आये हैं, वे यहाँ इस प्रकार अपना समय गँवाना बर्दाश्त नहीं कर सकते। जिन ब्रिटिश मन्त्रियों और ब्रिटिश जनता के विचार सुधारने का निरन्तर प्रयत्न कर रहा हूँ, मैं जिस क्षण देखूँगा कि उनके साथ अब किसी हद तक समाधान नहीं हो सकता, उसी समय आप मेरी पीठ इंग्लैण्ड के किनारे से मुड़ती देखेंगे।"

इस सम्बन्ध में मैं गाँधीजी के उस पुरज़ोर भाषण की ओर संकेत करूँगा, जो उन्होंने अपनी वर्षगाँठ के अवसर पर उनका

सम्मान करने के लिए एकत्र चार-पाँच सौ मित्रों की उपस्थिति में दिया था, और जिसमें इन मित्रों की ओर से श्री फेनर ब्राकवे ने गांधीजी को विश्वास दिलाया था कि यदि निकट-भविष्य में भारत को कोई आन्दोलन करना पड़े तो उसमें वे हार्दिक सहायता देंगे। कदाचित् श्री ब्राकवे जानते थे कि हवा का रुख किधर है; और यह उनके भाषण की पारदृश्य एवं मार्मिक शुद्ध अंतःकरणता का ही कारण था कि गाँधीजी को अपने मस्तिष्क के सर्वोच्च विचारों का नहीं प्रत्युत उनके अन्तरतम में गहराई से बैठे हुए भावों का प्रवाह बहाने के लिए तत्पर होना पड़ा।

किन्तु यदि श्री फ़ेनर ब्राकवे और उनके दल ने अपने आपको वास्तविक मित्र सिद्ध कर दिया है, तो गाँधीजी बड़ी तेजी से नये मित्र बना रहे हैं, जो आवश्यकता के समय मित्र साबित होंगे और श्री ब्राकवे के बहादुर दल की शक्ति बढ़ावेंगे। यद्यपि झूठे इतिहास की शिक्षा और अखबारों के अत्यन्त हानिकर प्रचार के कारण बहुत अज्ञान फैला हुआ है; फिर भी भारत के सम्बन्ध में सच्ची जानकारी प्राप्त करने के लिए चारों ओर लोग व्यापक इच्छा प्रदर्शित कर रहे हैं और नवयुवकों के अनेक दल गाँधीजी से मिल कर कान्फरेन्स या सभा और बातचीत करने की प्रार्थना कर चुके हैं। इनमें आक्सफोर्ड हाउस के सदस्य—आक्सफोर्ड वालों का एक दल उल्लेखनीय है, जो या तो

भावी मित्र

ईस्ट एण्ड (ग़रीबों का निवास-स्थान) में बस गये हैं, या अपने समय का सर्वोच्च भाग ईस्टएण्ड-निवासियों की सेवा में लगाते हैं। गाँधीजी के संक्षेप में भारत की माँग पेश करने के बाद, शुद्ध भाव से जानकारी क लिए, उनसे कुछ प्रश्न पूछे गये । उनमें के कुछ उत्तर सहित नीचे देता हूँ—

प्र०—क्या आप ब्रिटिश अङ्कुश को एकदम हटा देना चाहते हैं ?

उ०—अवश्य । मैंने धीरे-धीरे हटाये जाने की कभी कल्पना नहीं की । किन्तु इसका अर्थ ग्रेट ब्रिटेन से सर्वथा पृथक्करण नहीं है । यदि ग्रेट ब्रिटेन पूरी साझेदारी करेगा, तो मैं उसे संग्रह कर रक्खूँगा; किन्तु वह वास्तविक साझेदारी होनी चाहिए, शासन अथवा संरक्षकता के बुर्के की जरूरत नहीं । मैं जानता हूँ कि आपमें से कुछ ईमानदारी के साथ यह मानते हैं कि अंग्रेज़ यदि भारत स हट जायँ तो वहाँ तुरन्त ही अराजकता और खून ख़राबी मच जायगी । अच्छा, यदि अंग्रेज़ ऐसा करें तो जिस गड़बड़ एवं अव्यवस्था के पैदा करने में उन्होंने सहायता दी है, उसके दूर करने में भी वे हमारे सहायक हो सकते हैं । जुदी-जुदी जातियों की अधिकांश फूट के लिए वे ज़िम्मेदार हैं, और समस्त जाति एवं राष्ट्र को नपुंसक बना देने की ज़िम्मेवरी उन्हींपर

संक्रमण काल

है। और, मैं स्वीकार कर सकता हूँ कि, यदि आप एकदम चले जायँ तो सम्भव है हमें कुछ अस्थायी कठिनाइयों का अनुभव हो। किन्तु आपके लिए हमारी सहायता करने का मार्ग खुला हुआ है, बशर्ते कि आप हमारे अधिकार में रहना स्वीकार करें। किन्तु आपके अदम्य जातीय अभिमान को कौन जीत सकता है? मैं अपनी राष्ट्रीय सरकार में ब्रिटिश सोल्जर—सिपाही—और अफ़सर खुशी से रख लूँगा, हम उनकी सलाह के अनुसार चलना भी पसन्द कर लेंगे; किन्तु अन्तिम नीति-संचालन का अधिकार हमारा होना चाहिए। यदि आप भारत से अलग हो जायँ, और हमें किसी प्रकार की व्यवस्थित सहायता अथवा अनुशासित सेना न भी मिले, तो अपनी अहिंसा में हमारा काफ़ी विश्वास है। मैं नहीं समझता कि जो ब्रिटिश शक्ति और ब्रिटिश सहायता हमपर जबर्दस्ती लाद रक्खी गई है, उसके हट जाने से हम ज़िन्दा न रह सकेंगे। इस जबर्दस्ती लादी हुई शक्ति और सहायता के रहते मैं स्वतन्त्रता का प्रकाश नहीं देख सकता। और यदि आपकी आँखें खोलने के लिए आवश्यक हो, तो मैं चाहता हूँ कि स्वतन्त्रता पर मर मिटने के लिए हमें लड़ाई का अवसर मिले। इसका क्या कारण है कि आप अफ़ग़ानों की योग्यता के सम्बन्ध में प्रश्न नहीं करते? हमारी संस्कृति उनसे हीन नहीं है। अथवा क्या आप यह खयाल करते हैं कि किसी

के स्वभाव में खूँख्वारी हुए बिना स्वतन्त्रता प्राप्त करना और उसका उपयोग करना कठिन है ? अच्छा, यदि हम कायर जाति हैं, तो आप हमें हमारे भाग्य पर जितनी जल्दी छोड़ दें उतना ही अच्छा है। यह अच्छा है कि इस पृथ्वी से कायरों का बोझा हट जाय। किन्तु कायर सदैव के लिए नहीं रह सकते। आप नहीं जानते की युवावस्था में मैं कितना कायर था, पर आप स्वीकार करेंगे कि आज मैं ज़रा भी कायर नहीं हूँ। मेरे उदाहरण का गुणा कीजिए और आप सारे राष्ट्र की कायरता दूर हुई देखेंगे।

प्र०—क्या भारत को ईसाइयों से कुछ लाभ पहुँचा है ?

उ०—अप्रत्यक्ष रूप में। मैं इस सम्बन्ध में एक से अधिक बार बोल चुका हूँ। कुछ सज्जन ईसाइयों के संसर्ग से हमें अवश्य लाभ पहुँचा है। हमने उनके जीवन का अध्ययन किया, हम उनके संसर्ग में आये और उन्होंने स्वभावतः ही हमें ऊँचा उठाया। किन्तु पादरियों के प्रचार-कार्य के सम्बन्ध में मुझे सावधानी से बोलना होगा। कम-से-कम मैं जो कह सकता हूँ वह यह कि मुझे सन्देह है कि उन्होंने हमें किसी तरह लाभ पहुँचाया हो। अधिक-से-अधिक मैं यह कहूँगा कि उन्होंने भारत को ईसाइयत से पीछे हटाया है और ईसाई-जीवन तथा हिन्दू अथवा मुस्लिम-जीवन के बीच दीवार खड़ी कर दी है। जब मैं आपकी धर्म-पुस्तकें

ईसाइयों का प्रभाव

पढ़ता हूँ, तो मुझे ऐसी कोई दीवार खड़ी नहीं दिखाई देती; किन्तु जब मैं एक प्रचारक पादरी को देखता हूँ, तो मेरी आँखों के सामने दीवार उठी हुई दिखाई देती है । क्योंकि मैं एक अर्से तक इनके प्रभाव में आकर्षित रहा हूँ, इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप मेरे इस प्रमाण को स्वीकार कर लें । कालेज और अस्पतालों में काम करनेवाले पादरियों ने मन में यह पाप रख कर हमारी सेवा की है कि इन कालेज और अस्पतालों के द्वारा वे लोगों को ईसाई बनाना चाहते थे । मेरी यह निश्चित धारणा है कि यदि आप चाहते हैं कि हम ईसाइयत की महक को अनुभव करें तो आपको गुलाब की नक़ल करना चाहिए । गुलाब लोगों को इस प्रकार अपनी ओर खींचता है कि उस ओर गये बिना रुक नहीं सकने, और वह अपनी सुगन्धि उन्हें देता है । ईसाइयत की महक गुलाब से भी तीव्र है और इसलिए वह और भी अधिक शान्त और यदि सम्भव हो तो अधिक अदृश्य रूप से फैलाई जानी चाहिए ।

“ चचा गाँधी ”

शराब तैयार करने के स्थानों की जाँच के लिए नियुक्त महत्वपूर्ण शाही कमीशन के सदस्य और मद्य-निषेध के प्रबल प्रचारक श्री कार्टर आज प्रातःकाल घूमने के समय गाँधीजी के साथ थे । वह भारत में शराब के व्यवसाय के प्रश्न को समझने और

इस उद्देश्य से की जानेवाली सभा के लिए तफ़सील की बातें निश्चित करने आये थे। जिस क्षण उन्होंने उक्त लोगों को गाँधीजी को प्रणाम करने के लिए तेज़ी से आते देखा, उन्होंने कहा—"आप उनके सच्चे प्रतिनिधि हैं और वे यह चाहेंगे कि आप यहीं रह जायँ।" मिस लेस्टर ने कहा—"वे आपके निर्वाचकमण्डल हैं।" गाँधीजी की जन्मगाँठ पर मिली हुई बधाइयों में अनेक इन नये मित्रों की भेजी हुई हैं, जिनमें बहुतसे बालक हैं, जिन्होंने साथ में फूल—"अपने साथी"—भेजे हैं और "चचा गाँधी" को इस अवसर की मुबारिकबादियाँ दी हैं।

भारतीय विद्यार्थियों की सभा में, जहाँ गाँधीजी बड़ी रात तक मजाक और सभ्य व्यंगों से उन्हें खुश करते रहे, विद्यार्थियों ने कई बड़े दिलचस्प सवाल किये। मैं सब तो दे नहीं सकता, किन्तु कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण यहाँ देता हूँ। कुछ उत्तर पहले दिये जा चुके हैं।

संगीन बनाम प्रेम

प्र०—क्या मुसलमानों से एकता की आपकी माँग वैसी ही बेहूदा नहीं है, जैसी कि एकता की माँग सरकार हमसे करती है? ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न का हल रोकने के बजाय आप अन्य सब बातों को क्यों नहीं छोड़ देते?

उ०—आप दुहेरी भूल करते हैं। मैंने जो मुसलमानों से कहा है, उसके साथ सरकार जो हमसे कहती है, उसका

मुक़ाबला करने में आपने भूल की है । ऊपर से देखने में कोई यह ख़याल कर सकता है कि वस्तुतः यह एक ही सी मिसाल है, किन्तु यदि आप गहराई से विचार करेंगे तो आपको मालूम होगा कि इनमें ज़रा भी समानता नहीं है । ब्रिटिश व्यवहार या माँग को संगीन के बल का सहारा है, जब कि मैं जो कुछ कहता हूँ वह हृदय से निकला होता है और प्रेम के बल के सिवा उसका और कोई सहारा नहीं है । एक डाक्टर और एक हत्याकारी दोनों एक ही शस्त्र का उपयोग करते हैं, किन्तु परिणाम दोनों के भिन्न होते हैं । मैंने जो कुछ कहा है, वह यही है कि मैं कोई ऐसी माँग पूरी नहीं कर सकता, जिसका सब मुस्लिम दल समर्थन न करते हों । मैं केवल बहुसंख्यक वर्ग से ही किस प्रकार संचालित हो सकता हूँ ? गहरा सवाल तो यह है कि जब एक-दल के मित्र एक चीज़ माँग रहे हैं, मेरे साथ एक दूसरे दल के साथी हैं, जिनके साथ मैंने इसी चीज़ के लिए काम किया है और जिनका कुछ अर्से पहले इसी पहिले दल के मित्रों ने मुझे अत्यन्त प्रतिष्ठित साथी कार्यकर्त्ता कह कर परिचय कराया था, क्या मैं उनके साथ ग़ैरवफ़ादारी करने का अपराधी बनूँ ?

और आपको यह समझ रखना चाहिए कि मेरे पास कोई शक्ति नहीं है, जो कुछ दे सके । मैंने उनसे सिर्फ यही कहा है कि यदि आप कोई सर्व-सम्मत माँग पेश करेंगे तो मैं उसके लिए

प्रयत्न करूँगा। रहा जो लोग अधिकार माँगते हैं उन्हें समर्पण कर देने का प्रश्न, सो यह मेरा जीवन भर का विश्वास है। यदि मैं हिन्दुओं को अपनी नीति गृहण करने के लिए रजामन्द कर सकूँ, तो प्रश्न तुरन्त हल हो सकता है; किन्तु इसके लिए मार्ग में हिमालय पहाड़ खड़ा है। इसलिए मैंने जो कुछ कहा है, वह वैसा मूर्खतापूर्ण नहीं है, जैसी कि आप कल्पना करते हैं। यदि केवल मेरे हाथ में कुछ शक्ति होती तो, मैं इस प्रश्न को कदापि इस प्रकार निराधार छोड़कर अपने आपको संसार के सामने अपमानित होने का पात्र न बनाता।

अन्त में, मैं कहूँ जहाँ तक इस प्रश्न का सम्बन्ध है, मेरा कोई धर्म नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं हिन्दू नहीं हूँ; किन्तु मेरे प्रस्तावित समर्पण से मेरे हिन्दूपन पर किसी प्रकार का धक्का या चोट नहीं पहुँचती। जब मैंने अकेले ने काँग्रेस का प्रतिनिधि होना स्वीकार किया, मैंने अपने आपसे कहा कि मैं इस प्रश्न का विचार हिन्दूपन की दृष्टि से नहीं कर सकता, प्रत्युत् राष्ट्रीयता की दृष्टि से, सब भारतीयों के अधिकार और हित की दृष्टि से ही इसपर विचार किया जा सकता है। इसलिए मुझे यह कहने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं है, कि काँग्रेस सब हितों की रक्षक होने का दावा करती है—अंग्रेजों तक के हितों की वह रक्षा करेगी, जबतक कि वे भारत को अपना घर समझेंगे और लाखों मूक

लोगों के हितों के विरोधी किसी हित का दावा न करेंगे ।

प्र०—आपने गोलमेज़-परिषद् में देशी राज्यों की प्रजा के संबंध में कुछ क्यों नहीं कहा ? मुझे भय है कि आपने उनके हितों का बलिदान कर दिया ।

उ०—वे लोग मुझसे गोलमेज़-परिषद् के सामने किसी शाब्दिक घोषणा की आशा नहीं करते थे; प्रत्युत् नरेशों के सामने कुछ बातें रखने की आशा अवश्य रखते थे, जो कि मैं रख चुका हूँ । असफल होने पर ही मेरे कार्य की आलोचना करने का समय आवेगा । अपने ढंग से काम करने की इजाज़त तो मुझे होनी ही चाहिए । और मैं देशी राज्यों की प्रजा के लिए जो कुछ चाहता हूँ, गोलमेज़-परिषद् वह मुझे दे नहीं सकती । वह मुझे देशी नरेशों से लेना होगा । इसी तरह का प्रश्न हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का है । मैं जो कुछ चाहता हूँ, उसके लिए मैं मुसलमानों के सामने घुटने टेक दूँगा, किन्तु वह मैं गोलमेज़-परिषद् के पास नहीं कर सकता । आपको जानना चाहिए कि मैं कुशल एडवोकेट या वकील हूँ और कुछ भी हो, यदि मैं असफल हुआ तो आप मुझसे महताना वापस ले सकते हैं ।

प्र०—आपने चुनाव के अप्रत्यक्ष तरीक़े पर अपनी सहमति क्यों प्रकट कर दी ? क्या आप नहीं जानते कि नेहरू-रिपोर्ट ने इसे अस्वीकार कर दिया है ?

उ०—आपका प्रश्न अच्छा है; किन्तु यह तर्क की भाषा में आपके अव्यक्त मध्य को प्रकट करता है। अप्रत्यक्ष चुनाव को नेहरू-रिपोर्ट में अकेला छोड़ दीजिए। वह एक सर्वथा जुदी वस्तु है। मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि मैंने जिस तरीक़े का प्रतिपादन किया है, उसकी नित्य प्रति मुझमें वृद्धि हो रही है। आपको जो कुछ भी समझना चाहिए वह यह है कि यह सर्वथा बालिग़ मताधिकार से बँधा हुआ है, जिसका इसके बिना असरकारक उपयोग नहीं हो सकता। कुछ भी हो, आपके पास भारत की सब बालिग़ जनता में से स्वयं-निर्वाचित ७,००,००० निर्वाचक होंगे। बिना मेरे तरीक़े के यह एक दुःसाध्य और अत्यन्त ख़र्चीला निर्वाचक-मण्डल होगा। मेन के शब्दों में प्रत्येक ग्राम्य-प्रजातन्त्र अपना मुख्तियार पसन्द करेगा और उसे देश की सर्व-प्रधान व्यवस्थापिका सभा के लिए प्रतिनिधि चुनने की हिदायत करेगा।

कुछ भी हो, यह आवश्यक नहीं है कि जो कुछ इंग्लैण्ड अथवा पाश्चात्य जगत के लिए उपयुक्त हो, वही भारत के लिए भी उपयुक्त हो। हम पश्चिमी सभ्यता के नक्काल क्यों बनें ? हमारे देश की स्थिति सर्वथा भिन्न है। तब, हमारे चुनाव का हमारा अपना विशेष तरीक़ा क्यों न हो ?

[४]

भारत के मित्रों की एक ख़ास सभा में, जहाँ पहली बार ही सब श्रोताजन ज़मीन पर बैठे थे, पलथी मार कर हमने प्रार्थना की।

काले बादल

गाँधीजी ने सबसे भारत के लिए और उसके ध्येय की सफलता के लिए प्रार्थना करने को कहा। "जहाँ तक मनुष्य का प्रयत्न चल सकता है, वहाँ तक तो मैं अभी असफल होता हुआ ही दिखाई देता हूँ। मेरे ऊपर वह बोझ डाला जा रहा है, जिसे उठाने में मैं असमर्थ हूँ। जिसके करने के बाद कुछ भी करने को न रहे और प्रयत्न करने पर भी जिसका कुछ परिणाम न हो, ऐसा यह काम है। परन्तु इसकी कोई पर्वा नहीं। कोई भी प्रामाणिक और सच्चा प्रयत्न कभी असफल नहीं होता।" अल्पसंख्यक समिति में किये गये इक़रार में भी यही बातें राजनैतिक भाषा में कही गई थीं। ज़हर का प्याला क़रीब-क़रीब पूरा भर गया था। उसे पूरा करने के लिए प्रतिनिधियों में से कुछ लोगों के भाषण और उनका समर्थन करता हुआ प्रधान मन्त्री का भाषण हुआ। सरकार के नामज़द प्रतिनिधि कितना ही विरोध क्यों न करें, जिनके कि प्रतिनिधि होने का वे दावा करते हैं वे भी गाँधीजी के इस विश्लेषण के सच होने के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक शंका नहीं कर सकते हैं,—"भारतीय प्रतिनिधियों के चुनाव

में ही असफलता का कारण छिपा हुआ है। हम अपनेको जिनके प्रतिनिधि मान बैठे हैं, उन दलों के या पक्षों के चुने हुए प्रतिनिधि हम सब नहीं हैं। हम सरकार की पसन्दगी से यहाँ आये हैं। सब पक्षों को मंजूर हो, ऐसा समझौता करने के लिए जिनकी हाजिरी यहाँ होनी चाहिए वे भी यहाँ नहीं दिखाई देते हैं। और आप मुझे यह कहने की इजाजत दें कि अल्पसंख्यक समिति बुलाने का यह समय नहीं था। हमको क्या मिलेगा, यह हम नहीं जानते; और इतने अंश में इसमें सचाई का अनुभव नहीं होता है। यदि हम यह निश्चय रूप से जानते होते कि हमें जो चाहिए वह मिलेगा, तो इस पापी झगड़े में उसे फेंक देने के पहले हम पचास बार विचार करते।"

और इन शब्दों का विरोध करने के लिए प्रतिनिधियों ने जो कहा उसीसे इनकी सचाई साबित हुई। सर मुहम्मद शफ़ी और

शून्य आत्मा

डा० अम्बेडकर ने जो कहा वह सरकार के पसन्द किये हुए प्रतिनिधियों के सिवा और कोई नहीं कह सकता था। सर मुहम्मद ने कहा—"हम लोग जिनका कि यह विश्वास हो चुका है कि ब्रिटिश कामनवेल्थ से ही भारत का भविष्य बँधा हुआ है, बाहर के न्याय करनेवालों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। उस कामनवेल्थ की प्रधान शाही सरकार ही न्याय करनेवाली हो सकती है, जो इस प्रश्न

का अच्छा निर्णय कर सकती है; और वह इस प्रश्न में न्याय करने वाली बने, इसमें हम पूर्णतया राजी हैं।" डा० अम्बेडकर ने कहा—"शासन के तमाम अधिकार अंग्रेजों से लेकर भारतीयों को दिये जायँ, इसका दावा करने का दलित वर्गों (अछूतों) ने कोई आन्दोलन नहीं किया, न कोई पुकार मचाई, और न वे उसके लिए आतुर ही हैं।" वह स्पष्टतः यह मानते हैं कि उनकी जाति का हित स्वराजप्राप्त और स्वतन्त्र भारत के बनिस्बत ब्रिटिश सरकार के हाथों में ही अधिक सुरक्षित रहेगा।

अपने सामने इन मित्रों के ऐसे वक्तव्य होने पर प्रधानमन्त्री का काम तो बड़ा आसान हो गया। प्रधानमन्त्री का भाषण, जिसमें सत्य का अभाव था, सुन कर तो बन्दर और दो बिल्लियों की कहानी का एकदम स्मरण होता है। उस व्याख्यान का स्वर, उसके शब्दों का वजन, 'प्रामाणिकता से' और 'मुझमें विश्वास रखिए' के बराबर प्रयोग ने उनकी बाजी खुली कर दी। "लेकिन मान लो कि मैं सरकार की तरफ़ से आपसे कहूँ और पार्लमेण्ट ने भी उसको स्वीकार कर लिया कि काम का भार आप ही उठा लें, तो आप यह अच्छी तरह जानते हैं कि आप छः इंच भी न जा सकेंगे कि अटक जायँगे।" क्या कभी सच्चे दिल

बिल्ली और बन्दर वाली मसल

से यह प्रस्ताव रक्खा गया था ? इसी भाषण में वह अभिमान-पूर्वक कहते हैं, "यह सरकार अपने प्रस्ताव पेश करेगी तो वह आख़िरी शब्द होगा, उसी अंश में कि जिस अंश में सृष्टि की परिस्थिति किसीको किसी विषय पर आख़िरी शब्द कहने देती है।' ! ! !

जब हम बुरे-से-बुरे परिणाम के लिए तैयार हैं, तो, कुछ भी हो, उसमें हमारी कोई हानि नहीं। इसीलिए जब गाँधीजी के पास कुछ क्रोध में भरे हुए और कुछ दुःख अनुभव करते हुए मित्र आये, तो उन्होंने उनसे कहा—"यह सब भले के लिए है। हम उस सीमा के निकट आ रहे हैं, जहाँ से हमारा रास्ता अलग हो जायगा, और पद-पद पर मामला अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है। डा० अम्बेडकर जो कुछ भी कहें, उससे दुःख अनुभव करना या उनपर क्रोध करना तो असम्भव है। क्या आप यह नहीं देखते कि आज सुबह उन्होंने जो कहा उसमें हमारे पाप (अर्थात् हिन्दू-समाज के पाप) मूर्त्त हो दिखाई देते हैं ?" जब तमाम विवादों का अन्त हो जायगा, और आगे लोग जब बिना किसी जोश-ख़रोश के भूतकाल की आलोचना कर सकेंगे, तब कदाचित् यह निर्णय स्पष्ट होगा कि गाँधीजी से बढ़कर अंत्यजों का और कोई प्रतिनिधि नहीं हो सकता, जिन्होंने कि इन शब्दों में घोषणा करते हुए अपना व्याख्यान समाप्त किया था —"व्य-

व्यवस्थापिका सभा में निर्वाचन के अधिकार के बनिस्बत इन लोगों को सामाजिक और धार्मिक संरक्षण की ही अधिक आवश्यकता है। उसने इनका जो अध:पात किया है उसके लिए हरएक विचारशील हिन्दू को शर्म आनी चाहिए और उसे उसका प्रायःश्चित्त करना चाहिए। इसलिए ऊँचे वर्ग के कहे जानेवाले लोगों की तरफ़ से मेरे इन देशवासी भाइयों पर जो सामाजिक अत्याचार होता है, उसे जुर्म क़रार देने के लिए सख़्त क़ानून बनाये जाना मैं पसन्द करूँगा। ईश्वर की यह कृपा है कि हिन्दुओं का अन्तरात्मा हिल उठा है और अब अस्पृश्यता हमारे पापी भूतकाल का स्मरण मात्र रह जायगी।"

भारत के मित्रोंवाली सभा में गाँधीजी ने कहा—"परन्तु यदि मैं ये ठिठुरा देनेवाली कठिनाइयाँ अनुभव कर रहा हूँ, तो भी, जहाँ तक मेरे काम से सम्बन्ध है, इन परिषद् और समितियों के बाहर मैं अखण्ड आनन्द का ही अनुभव करता हूँ। लोग स्वयं-स्फूर्ति से ही वस्तु को समझ लेते हैं। यद्यपि मैं बिलकुल विदेशी हूँ, तो भी मेरा और मेरे काम का वे भला चाहते हैं। वे जानते हैं कि मैं और मेरा काम एक ही है और इसलिए वे, छोटे से लेकर बड़े दर्जे के, सब मुस्कराते हुए मेरा स्वागत करते हैं और मुझे आशीर्वाद देते हैं। और इसलिए मुझे यह आश्वासन मिलता है कि मेरा

प्रकाश की एक किरण

ध्येय सच्चा है और उसके साधन स्वच्छ और अहिंसक हैं, तब-तक सब भला ही होगा।"

विद्वान तथा बुद्धिमानों में से भी अच्छे-अच्छे लोग गाँधीजी से सम्बन्ध जोड़ना चाहते हैं। श्री ब्रेलसफोर्ड और श्री लास्की ने गाँधीजी के साथ बड़ी देर तक बातचीत की। श्री शॉ डेसमॉण्ड भी उनसे मिले। बातचीत में राजनीति में से, जिसे वह कहते थे कि वह धिक्कारते हैं, वह साफ़ निकल गये और उन्होंने इसी विषय पर बातचीत की कि पश्चिम जिस गहरे दलदल में फँसा हुआ है और जिसमें वह अधिकाधिक डूबता जाता है, उसमें से उसे कैसे निकालें। उन्होंने बच्चों की पढ़ाई के सम्बन्ध में चर्चा की और जब गाँधीजी ने उनसे संयम के मूल्य के विषय में अपने जीवन के अनुभव कहे, और यह कहा कि बच्चों के या बड़ों के जीवन में वह कितना बड़ा काम करता है, तो वह बड़े ध्यान से सुनते रहे। उन्होंने पूछा—'वर्तमान अन्धाधुन्धी का कारण क्या है?' गाँधी-जीने कहा—"एक का दूसरे को चूसना। कमज़ोर राष्ट्रों का शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा चूसा जाना मैं न कहूँगा, परन्तु एक राष्ट्र का अपने भाई दूसरे राष्ट्र को चूसना। और मशीन का मेरा मूल विरोध इसी बात पर आधार रखता है कि उसीके कारण एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को चूस सकता है। अपनेतई तो वह निर्जीव वस्तु है और उसका अच्छा और बुरा दोनों उपयोग हो

सकते हैं। लेकिन, जैसा कि हम जानते हैं, उसका बुरा उपयोग आसानी से होता है।" श्री डेस्मॉण्ड ने कहा—"क्या आप यह खयाल नहीं करते कि यहाँ के लोग ज़रूरत से ज्यादा भोजन पाते हैं। उन्हें कम खाना कैसे खिलाया जाय?" गाँधीजी ने हँसते हुए कहा—"परिस्थिति उन्हें यह सिखायेगी; इन दिनों उन्हें यह अवश्य मालूम हो जायगा कि इंग्लैण्ड अपनी पुरानी समृद्धि पर फिर नहीं लौट सकेगा। उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि आज बहुत से राष्ट्र लूट में उनका हाथ बँटाने के लिए आगे आये हैं। और जब उन्हें यह मालूम हो जायगा तो पहले वे अपनी चादर को देखकर ही फिर अपने पाँव पसारेंगे।" श्री डेस्मॉण्ड ने बड़ा ज़ोर देकर कहा कि "यह संकट बहुत बड़ी बात है, इसमें मुझे कोई संशय नहीं है।"

उस दिन लन्दन-विश्वविद्यालय के संस्कृत के अध्यापक चुपचाप आये, गाँधीजी के प्रति आपना आदर प्रकट करने के लिए वह आतुर थे। उन्होंने कहा—"मैं भारत से प्रेम करता हूँ और आपका बड़ा आदर करता हूँ और मेरी सब शुभेच्छायें आपके साथ हैं।" गाँधीजी ने उनसे पूछा—"आप बड़े विद्वान हैं?" वह मुस्कराये। गाँधीजी ने उनका संकोच छुड़ाते हुए कहा—"बिना किसी संकोच के आप कहिए, क्या आप मैक्समूलर के समान बड़े विद्वान हैं?" उन्होंने कहा, "हाँ, मुझे अपनी शक्ति में

विश्वास है; और यदि मुझे यह विश्वास न होता, तो मैं संस्कृत का अध्यापक बनने की हिम्मत न करता। सारी गीता मेरे कण्ठस्थ है और उपनिषदों का काफ़ी गहरा अभ्यास मैंने किया है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्॥
नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात्।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम॥

यह मेरा मन्त्र है।"

गाँधीजी ने हँसते हुए कहा—"अच्छा, पर उच्चारण में हम आपको बहुत-कुछ सिखा सकते हैं।"

बात यह है। इस मुलाक़ात में ऐसे अनेक सम्बन्ध जुट रहे हैं। कल एक मित्र कहते थे कि उन्होंने गाँधीजी के लेखों को पढ़ा था, परन्तु गाँधीजी सचमुच कैसे होंगे, इसका उन्हें ज़रा भी ख़याल न था। उन्होंने कहा—"इंग्लैण्ड की मुलाक़ात के परिणाम, गोल-मेज़-परिषद् को छोड़ दें तो भी, कल्पनातीत होंगे।"

बेशक, विदेशों के मुलाक़ातियों में सबसे अधिक अमेरिकन ही हैं, और जबसे गाँधीजी ने अमेरिका को रेडियो द्वारा सन्देश

अमेरिका से—

दिया है तबसे प्रति सप्ताह अमेरिका से सैकड़ों पत्र आ रहे हैं। गाँधीजी के मुख से ही अहिंसा के सन्देश को सुनकर वे आनन्दित हुए हैं और एक भी

पत्र ऐसा नहीं होता, जिसमें उसका उल्लेख न किया गया हो। एक पत्र-लेखक लिखते हैं:—"आपका रेडियो-सन्देश महासागर के उस पार से जैसे घन्टी बजती हो ऐसा स्पष्ट सुनाई दिया। मैंने उसे आसानी से सुना। आपकी बातों की आध्यात्मिकता और उत्तमता के लिए मैं आपको मुबारिकबादी देता हूँ। हमें तो उसकी अत्यन्त ही आवश्यकता है, क्योंकि हम शान्ति के गीत गाते हैं। आपसे एक प्रार्थना करता हूँ। क्या आप मुझे यह वाक्य लिख भेजेंगे कि 'खून बहाने से संसार मौत से भी ज्यादा ऊब गया है।' और उसपर अपने नाम के दस्तख़त करेंगे ? मैं उसे आपके ही दस्तख़तों में अपने ८ नवम्बर के केलेण्डर में निकालना चाहता हूँ। यह दिन युद्धविराम-दिन के पहले का रविवार है।"

आयर्लैण्ड से—

एक आयरिश मित्र ने कहा:—"हम आप ही के जैसे हैं। हमें भय है कि अभी आप चौखट के पास ही हैं और अभी आपको बहुत कुछ कष्टों में से गुजरना होगा। इसलिए आप ज़रूर आवें और जो राष्ट्र भारत जैसी ही स्थिति में है और जिसे उसके जितना ही चूसा और विनष्ट किया गया है उससे भेंट करें। डबलिन की ग़रीबी के उदाहरण से मैं आपको आयर्लैण्ड की ग़रीबी का ख़याल कराऊँगा। उस छोटे शहर में ही कम-से-कम २८,००० ऐसे घर हैं, जो मनुष्यों के

रहने लायक़ नहीं हैं। पैदावार बहुत होने पर भी हमारे किसान बहुत ग़रीब हैं। आप ज़रूर आइए और हमारी स्थिति का अध्ययन कीजिए।"

बर्नर ज़िमरमैन एक स्विस हैं, तो भी वह 'ताऊ' नामक एक जरमन मासिक पत्र के सम्पादक हैं। उसमें वह अहिंसा के तत्त्वज्ञान और राजनीति की व्याख्या और चर्चा करते हैं।

जर्मनी से—

उन्होंने कहा—"फ्रेंकफर्ट के पास पॉल और एडिथ गेहीब का एक स्कूल है, जिसमें कई जुदी-जुदी जगह और जाति के २०० बच्चे हैं। वे प्रतिसप्ताह 'यंग इण्डिया' पढ़ते हैं और आपके तमाम जीवन के कार्यों में आपसे सहमत हैं। हम अपने ही जीवन के उदाहरण से उन्हें अहिंसा का तत्त्व सिखाने का प्रयत्न करते हैं। जिस कार्य के लिए आप ईश्वर के हाथ में सबसे बड़े हथियार हैं उस कार्य में लगे हुए कई कार्यकर्ता आपको वहाँ मिलेंगे। वहाँ आप जबतक रहें तबतक के लिए हम यह स्कूल आपके सुपुर्द कर देंगे। और अपने साथ आप अपने भारतीय कार्यकर्ताओं को भी लावेंगे तो हमें बड़ा आनन्द होगा। रोम्यां रोलां और दूसरे मित्र जो यूरोप में और ख़ास कर जर्मनी में आपके आदर्शों का प्रचार करते हैं; उन्हें आने के लिए और आपसे मुलाक़ात करने के लिए हम कहेंगे।"

हेमबर्ग से कुछ मित्र तार द्वारा कहते हैं:—"मिशनरी की

हैसियत से हमने भारत की आत्मा को समझने का प्रयत्न किया है। आपके (गाँधीजी के) बारे में जो कुछ भी मिला वह सब पढ़ चुकने के बाद, ईसाई होने के कारण, हम आपसे सम्बन्ध जोड़ना चाहते हैं । हमारे जीवन में यह बड़े महत्त्व की बात होगी। क्या आपकी पुस्तकें पढ़ने के बनिस्बत अधिक निकट का सम्बन्ध जोड़ना सम्भव हो सकेगा ? क्या हम आपसे कभी किसी जगह मिल सकते हैं ?"

और मेडम मॉण्टिसोरी की गाँधीजी से जो मुलाक़ात हुई उसे मैं कैसे भुला सकता हूँ ? गाँधीजी ने उनका स्वागत करते हुए कहा, 'हम एक ही कुटुम्ब के हैं।' मेडम मॉण्टिसोरी ने कहा, 'मैं आपका बच्चों की तरफ़ से स्वागत करती हूँ ।' गाँधीजी ने कहा, "आपके बच्चे तो मेरे भी बच्चे हैं। हिन्दुस्थान में मित्र लोग मुझे आपका अनुकरण करने को कहते हैं। मैं उनसे कहता हूँ, 'नहीं'। मुझे आपका अनुकरण नहीं करना चाहिए, परन्तु आपको और आपके तरीक़े के अन्तर्गत सत्य को पचा जाना चाहिए।" मेडम मॉण्टिसोरी ने मीठी इटालियन भाषा में, जिसका अर्थ दुभाषिये ने गाँधीजी को समझाया, कहा—"जैसा कि मैं गाँधीजी के हृदय को पचा जाने के लिए अपने बच्चों को कहती हूँ।" कृतज्ञतापूर्वक उन्होंने कहा—"मैं जानती हूँ कि यहाँ की बनिस्बत आपकी तरफ़ की दुनिया में मेरे प्रति अधिक भाव है।"

गाँधीजी ने कहा—'हाँ, यूरोप के बाहर भारत में सबसे अधिक लोग आपके पक्ष में हैं।" एकाएक मेडम मॉण्टिसोरी को जमुदानी का स्मरण हो आया, और उन्होंने कहा कि मैं उन्हें अपना भारतीय पुत्र कहना पसन्द करती हूँ। अस्तु, उन्होंने एक दिन अपने अंग्रेज बच्चों को लेकर फिर आने का वादा किया है।

[५]

साम्प्रदायिक प्रश्न

यह स्मरण होगा कि गाँधीजी ने अल्पसंख्यक समिति में समझौते की निष्फलतता के सम्बन्ध में जो व्याख्यान दिया वह चर्चा में दूसरी महत्व की बात थी। संघशासन-समिति का उनका व्याख्यान पहली बात थी। इस व्याख्यान ने कुछ बड़े-बड़े लोगों को सचेत कर दिया है, परन्तु इससे उन्हें यह विश्वास भी हो गया है कि गाँधीजी किसी भी कारण से बात पर परदा नहीं डालेंगे। 'मैंचेस्टर गार्जियन' जैसे पत्र भी यह मानने के लिए तैयार नहीं थे कि अल्पसंख्यक समिति संघशासन-समिति के विचार-कार्य के बीच में बिना किसी आवश्यकता के ही घुसा दी गई थी, और क़ौमी अर्थात् साम्प्रदायिक प्रश्न को अत्यधिक महत्व दिया गया था। जिनका इससे सम्बन्ध था उन्हें यह समझाने में कि गाँधीजी ने सच्चे दिल से यह कहा था कि

सरकार को अपनी बाज़ी खोल देनी चाहिए, यह उसका फर्ज है, उनका एक सप्ताह चला गया।

यहाँ कुछ सवाल-जवाब दिये जाते हैं।

प्र०—यदि सब बातों से क़ौमी प्रश्न का अधिक महत्त्व नहीं है,तो आपने ही एक समय यह क्यों कहा था कि जबतक यह प्रश्न हल न हो जायगा,आप गोलमेज-परिषद् में जाने का विचार भी न करेंगे?

उत्तर—"आप ठीक कहते हैं। परन्तु आप यह भूल जाते हैं कि भारत में मेरे अंग्रेज़ मित्र और दूसरे मित्रों ने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया कि मुझे जाना ही चाहिए और मैं दब गया। मुझे यह भी समझाया गया कि लार्ड इरविन को दिये गये वचन की रक्षा करने के लिए भी मुझे जाना चाहिए। अब यहाँ मैं अपनेको उन लोगों के सामने पाता हूँ, जो राष्ट्रवादी नहीं है और केवल साम्प्रदायिक होने के कारण ही चुने गये हैं। इसलिए मैंने कहा कि निर्णय न कर सकना यद्यपि हमारे लिए शरम की बात है, फिर भी इसका कारण तो इस समिति के सदस्य जिस तरह चुने गये हैं उसीमें है। स्थिति ऐसी अस्वाभाविक है कि शब्दों में उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। उसमें ऐसे लोग हैं, जो किसी क़ौम के प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं परन्तु यदि वे भारत में होते और उस क़ौम का मत लिया जाता तो वह उन्हें अस्वीकृत कर देती।"

प्र०—अस्पृश्यों के विषय में क्या बात है ? डा० अम्बेडकर आपपर बहुत बिगड़े थे और कहा था कि महासभा को अस्पृश्यों के प्रतिनिधि होने का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है ?

उ०—आपके इस प्रश्न से मुझे बड़ी खुशी हुई। डा० अम्बेडकर के बोलने का मैं कुछ ख़याल नहीं करता। डा० अम्बेडकर को, जैसे हरएक अस्पृश्य को भी, मुझपर थूकने तक का अधिकार है। और वह मुझपर थूकें तो भी मैं हँसता ही रहूँगा। परन्तु मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि डा० अम्बेडकर देश के उसी एक भाग की तरफ़ से बोलते हैं जिसमें कि वे रहते हैं। हिन्दुस्थान के दूसरे भागों की तरफ़ से वे नहीं बोल सकते। मुझे देश के कई भागों से अस्पृश्यों की तरफ़ से असंख्य तार मिले हैं, जिनमें उन्होंने डा० अम्बेडकर को अपना प्रतिनिधि मानने से इन्कार किया है और महासभा में अपना पूरा विश्वास प्रकट किया है। इस विश्वास का कारण है। महासभा उनके लिए जो काम करती है उसे वे जानते हैं, और वह यह भी जानते हैं कि उनकी आवाज़ सुनाने में वे सफल न होंगे तो उनकी तरफ़ से मैं उनके सत्याग्रह-युद्ध का अगुआ बनूँगा और हिन्दुओं के विरोध को, यदि ऐसा कोई विरोध हुआ तो, ठण्डा कर दूँगा। दूसरी तरफ़, जैसा कि डा० अम्बेडकर माँग रहे हैं, उन्हें ख़ास चुनाव का हक़ दिया जाय तो उससे उस क़ौम को ही बड़ी

हानि पहुँचेगी। इससे हिन्दू जाति दो सशस्त्र छावनियों में बंट जायगी और उससे अनावश्यक विरोध ही बढ़ेगा।

प्र०—मैं आपकी बात को समझता हूँ। और इसमें भी मुझे कोई सन्देह नहीं कि आप न्यायतः अस्पृश्यों की तरफ़ से बोल सकते हैं। परन्तु, मालूम होता है, आप इस बात पर ध्यान नहीं देते कि दुनिया में सब जगह सब क़ौमें अपने लोगों को ही अपना प्रतिनिधि बनाने का आग्रह रखती हैं। उत्तर के एकनिष्ठ उदार मतवाले मज़दूरों के सच्चे प्रतिनिधि बन सकते हैं, परन्तु वे अपने लोगों में से ही अपने प्रतिनिधि भेजना पसन्द करते हैं। और आपके विरुद्ध जो सबसे बड़ी बात है वह यह है कि आप अस्पृश्य नहीं हैं।

उ०—मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ। परन्तु मैं उनका प्रतिनिधि होने का दावा करता हूँ। इसके यह मानी नहीं हैं कि मैं व्यवस्थापिका सभाओं में भी उनका प्रतिनिधि बन कर जाऊँगा। किसी तरह नहीं। व्यवस्थापिका सभा में तो मैं यही चाहूँगा कि उन्हींमें से कोई उनका प्रतिनिधि बन कर आवे; और यदि वे रह जायँगे, तो मैं उनके लिए ऐसा क़ानून चाहूँगा कि चुने गये सदस्य ऐसे प्रतिनिधियों का क़ानूनन सहयोग प्राप्त करें। जब मैं उनका प्रतिनिधि होने की बात कहता हूँ तब मैं गोलमेज-परिषद् के प्रतिनिधि की बात कहता हूँ। और मैं आपको विश्वास दिलाता

हूँ कि यदि किसीको हमारे इस दावे से इन्कार हो तो मैं खुशी से मत-गणना का सामना करूँगा और उसमें सफल होऊँगा।

प्र०—मुसलमानों के बारे में भी आप जो कुछ कहेंगे, उपर्युक्त दृष्टि से, वह सुनने में भी आनन्द आवेगा। आप यह तो नहीं कहते कि जो मुसलमान यहाँ हैं वे अपनी कौम के प्रतिनिधि नहीं हैं ?

उ०—वे चुने नहीं गये हैं, और मैं आपसे यह कहता हूँ कि मैंने सच्चे राष्ट्रवादी मुसलमानों को दूर रहने को कहा है। मैं दो का ही नाम लेता हूँ, एक श्री ख्वाजा, दूसरे श्री शेरवानी। इन जैसे युवक नेताओं की एक बहुत बड़ी संख्या है। मेरा इनसे परिचय उन्हीं लोगों के जरिये हुआ था जो आज महासभा के विरोध में पड़े हुए हैं। ये तरुण नेता कौमी हल के खिलाफ हैं। मैं खुद तो मुसलमानों को जो कुछ भी वे माँगते हैं देने को तैयार हूँ और हिन्दुओं को और सिखों को मेरे साथ सहमत होने के लिए समझाने को मैं आधी रात तक जागा हूँ, किन्तु मैं असफल हुआ। यदि सिख सिखों के द्वारा चुने गये होते और सरकार के पसन्द किये हुए न होते, तो क्या आप ख़याल करते हैं कि मैं असफल हुआ होता ? मास्टर तारासिंह यहाँ होते। मैं उनके विचारों को जानता हूँ; श्री जिन्ना की १४ माँगों के सामने उनकी १७ माँगें हैं। परन्तु मुझे विश्वास है कि मैं उन्हें समझा लेता, क्योंकि

आखिर को वे हाथ में हाथ मिला कर काम करने वाले साथी ही तो हैं। वर्तमान परिस्थिति में समझौता करने में यदि हम असफल हुए तो क्या यह कोई आश्चर्य की बात है ? इसीलिए तो मैंने यह कहा कि पहले ही हमारे मार्ग में प्रतिबन्ध डाले गये हैं और अब यह कह कर कि शासन-विधान की रचना के प्रश्न का निर्णय होने के पहले क़ौमी प्रश्न का निर्णय होना चाहिए, हमारे मार्ग में और अधिक प्रतिबन्ध मत डालिए। मैं उनसे यह कहता हूँ कि हमें यह जान लेने दो कि मिलेगा क्या, ताकि उसीके आधार पर मैं इस बेमेल चुने हुए मंडल में एकता लाने का प्रयत्न करूँ। ईश्वर के लिए हमारे पास कोई ठोस बात होने दो। हमारे धनुष की यह दूसरी डोरी होगी और वह मामले को हल करने में मदद करेगी, क्योंकि फिर मैं उनसे यह कह सकूँगा कि वे एक बड़ी क़ीमती चीज़ का नाश कर रहे हैं। परन्तु आज मैं उनके सामने कुछ भी नहीं रख सकता हूँ। मसला हल न भी हो तो मैंने खानगी पञ्च, न्यायमण्डल आदि कई मार्ग सूचित किये हैं। हाल यह है।

प्र०—तो इससे क्या मैं यह समझ लूँ कि आप क़ौमी प्रश्न को अधिक महत्व नहीं देते हैं।

उ०—मैंने यह कभी नहीं कहा। मैं यह कहता हूँ कि मुख्य बात जिसपर खास जोर देना चाहिए था, उसे इस प्रश्न के द्वारा दब जाने दिया गया है।

सेवॉय होटल में अमेरिका के पत्रकारों की तरफ़ से गाँधीजी को बातचीत करने के लिए आमंत्रण दिया गया था और उसके उपलक्ष्य में एक निरामिष भोज का आयोजन किया गया था। वहाँ गाँधीजी से सबसे अधिक सीधे प्रश्न पूछे गये। भोज सर्वथा निरामिष था (उसमें माँस, मच्छी, अण्डे कुछ नहीं थे)। यह इस अवसर के योग्य बात थी; और गाँधीजी ने इसे सूक्ष्म विवेक का नाम दिया। पत्रकारों ने उनके व्याख्यानों की कितनी ग़लत रिपोर्टें भेजी और एक बार तो उनकी ऐसी ग़लती के कारण कैसे उनकी जान पर आ पड़ी थी, यह कह कर उन्होंने कुछ मिनटों तक उन्हें आनन्दित किया। उन्होंने उनसे सत्य, सम्पूर्ण सत्य और केवल सत्य को ही कहने की सिफ़ारिश की और उनके प्रश्नों के जवाब दिये। वे शायद साधारण और सर्व-जनसाधारण के हित के प्रश्न ही पूछेंगे, ऐसा खयाल होता था; परन्तु वे जिस परिस्थिति में थे, उसका उनपर इतना गहरा असर था कि वे इससे बाहर निकल नहीं सकते थे।

प्र०—आप परिणाम में सफलता की आशा रखते हैं ?

उ०—मैं आशावादी हूँ, इसलिए कभी आशा नहीं छोड़ता। परन्तु मुझे यह कहना चाहिए कि मसले को हल करने के बारे में बम्बई में जो बात थी, उससे मैं कुछ भी आगे नहीं बढ़ सका हूँ। उसमें बड़ी कठिनाइयाँ है। जो वातावरण आज यहाँ पाया जाता

है, उसमें महासभा की माँगें बहुत बढ़ी हुई गिनी जा सकती हैं, यद्यपि मैं ऐसा ख़याल नहीं करता।

प्र०—इस कठिनाई में से निकलने का कोई उपाय नहीं है?

उ०—कई उपाय हैं। परन्तु जिन लोगों का इससे संबंध है वे उन्हें ग्रहण करेंगे या नहीं मैं यह नहीं जानता। हम लोगों से यह कहा गया है कि शासन-विधान का प्रश्न क़ौमी प्रश्न के हल होने पर आधार रखता है। यह सच नहीं है; और मेरा ख़याल है कि इस तरह बात को उलटी करके कहने से ही प्रश्न को अधिक कठिन बना दिया गया है और उसे सर्वथा कृत्रिम महत्व दिया गया है। और क्योंकि इसीको मूलाधार बनाया गया है, इसके साथ संबंध रखनेवाले पक्षों का ख़याल है कि उन्हें अपनी माँगें जितनी वे बढ़ा सकें उतनी बढ़ा कर रखनी चाहिएँ। और इस तरह हम बुरी तरह गोल-गोल फिर रहे हैं और सुलह का काम अधिकाधिक मुश्किल होता जाता है। मैं इन दोनों प्रश्नों में कोई संबंध नहीं देखता हूँ। क़ौमी प्रश्न हल हो या न हो, भारत स्वतंत्र होगा ही। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद बेशक हमारे लिए बड़ा कठिन समय आवेगा। परन्तु इस प्रश्न के लिए स्वतन्त्रता रोकी नहीं जा सकती। क्योंकि जैसे ही हम उसके लायक होंगे स्वतन्त्रता हमें मिल जायगी और उसके लायक़ होने के मानी हैं उसके लिए काफ़ी कष्ट उठाना, स्वतंत्रता के क़ीमती इनाम के लिए उसकी बड़ी क़ीमत

देना। परन्तु यदि हमने उसके लिए कष्ट नहीं उठाया है, उसकी क़ीमत नहीं चुकाई है, तो यह प्रश्न हल होगा तो भी इससे हमें मदद न मिलेगी। यदि हमने काफ़ी कष्ट उठाया है, काफ़ी बलिदान किया है, तो कोई दलील या समझौते की आवश्यता न होगी। हमने काफ़ी कष्ट उठाया है, इसका निर्णय करनेवाला मैं कौन हूँ? यह समझ कर कि हमने काफी कष्ट उठाया है, मैं यहाँ आया और यहाँ आने के लिए मुझे ज़रा भी दुःख नहीं है, क्योंकि मैं देखता हूँ कि मेरा काम तो परिषद् के बाहर है। और इसीलिए मैं अपना समय भरा हुआ होने पर भी यहाँ आने को राज़ी हुआ, क्योंकि इसे भी मैं अपने काम का ही एक अङ्ग मानता हूँ।

प्र०—इंग्लैण्ड के चुनाव के कारण आपका कार्य मुश्किल नहीं होगा?

ब्रिटेन के हित में

उ०—नहीं होना चाहिए। यदि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ यह समझ जायँ कि हिन्दुस्थान और इंग्लैण्ड में, अहिंसात्मक ही क्यों न हो, लड़ाई होने पर आर्थिक स्थिति अधिक कठिन हो जायगी, तो वे उनके चुनाव को हमारे प्रश्न को हल करने में बाधा-रूप न होने देंगे। उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि यदि हिन्दुस्थान की माँग पूरी नहीं की गई तो उनके माल का भयङ्कर बहिष्कार होगा और भारत में उसके शीघ्र नाश होनेवाले व्यापारी हित पर ही ग्रेटब्रिटेन को

अपना तमाम ध्यान लगाना होगा । इसके बदले यदि दोनों में सम्मानपूर्ण साझेदारी हुई तो अपने मामलों को सुधारने का उसे अधिक समय मिलेगा। परन्तु हमारे मार्ग में एक और बड़ी कठिनाई है । जबतक बन्दूक से हिन्दुस्थान को कब्जे में रक्खा जायगा, तबतक ब्रिटिश-सचिव भारत के भूखों मरनेवाले लोगों के प्रति अपनी भूखी नजर डालेंगे ही, और भारत में एक तोला भी सोना-चाँदी रहने तक उसे वहाँ से खींच लाने के लिए नये-नये साधन तैयार करेंगे—दुष्ट बुद्धि से नहीं, परन्तु आवश्यकता से मजबूर होकर। क्योंकि जब देश में बेकारी और अन्नादि का अभाव हो, और जब किसी जगह से मदद मिल सकती हो, तो, चाहे वह दूसरे देश को चूस कर ही क्यों न हो, ऐसे समय में आप राजनीतिज्ञों से न्याय की तराजू में हरेक बात को तोलने की और शुद्ध नीति के अनुसार व्यवहार करने की आशा नहीं रख सकते। उससे वे भारत की मुद्रा को घटाने-बढ़ाने जैसे अनेक साधनों का उपयोग करने पर मजबूर होंगे । इससे कुछ समय के लिए उनका दुःख दूर होगा, परन्तु अन्तिम विनाश के आने में अधिक देर न लगेगी ।

गावर स्ट्रीट में हुई भारतीय विद्यार्थियों की सभा में भारतीय वातावरण था । भारत के राष्ट्रीय गीत और वन्देमातरम् हमने यहाँ पहली बार ही सुने । वातावरण अनुकूल था, इससे

हमने सभा में ही प्रार्थना की। सभा में पूर्ण गौरव और शोभा थी। दूसरी सभा में गोल्ड कोस्ट के एक हबशी विद्यार्थी ने, एक रूस के विद्यार्थी ने, एक कोरिया के विद्यार्थी ने और एक अंग्रेज विद्यार्थी ने प्रश्न पूछे थे। और यदि समय होता तो और विद्यार्थी भी पूछते। विद्यार्थियों में सत्य की शोध का भाव था, यह इस सभा की विशेषता थी। इसका गाँधीजी पर बड़ा असर पड़ा। और उन्होंने अपना हृदय खोल दिया और वर्तमान उद्योगप्रधान युग में आत्मा को हिला देनेवाले प्रेम और सत्य के रहस्य के संदेश दिये। इन दोनों सभाओं में उनको ऐसा प्रतीत होता था, मानों वह अपने प्रिय पुत्रों के बीच हों। वहाँ उन्होंने यह महसूस किया कि उनको कोई ऐसा संदेश देना चाहिए, जिसे वह अपने हृदय में रक्खे रहें और उसको अपने जीवन के व्यवहार में लावें। इस प्रवचन की प्रस्तावना के रूप में उन्होंने सत्याग्रह-युद्ध की विशेषतायें बताते हुए बतलाया कि किस प्रकार महासभा ने दूसरों पर प्रहार करके चोट पहुँचाने का सदियों पुराना तरीक़ा छोड़ कर स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए स्वयं अपने पर प्रहार सह लेने का रास्ता इख्तियार किया है, और कष्ट-सहन की एक मंज़िल तै कर लेने के बाद देश ने उन्हें इस आशा से अपना एकमात्र प्रतिनिधि बना कर भेजा है कि "भारत ने जो कष्ट-सहन किया है, उसका

विद्यार्थियों के साथ

ब्रिटिश मन्त्रियों पर और आम तौर पर ब्रिटिश जनता के मन पर काफ़ी असर हुआ है, और इसलिए अब दलील, तर्क, वाद-विवाद और समझौते के लिए कुछ जगह रही होगी," और इसलिए किस प्रकार वह भारत में भयंकर परिणाम वाले उत्पात को रोकने के लिए अपनी शक्तिभर सब उपायों का अवलम्बन कर रहे हैं। इस सबके बाद जो वाक्य उनके मुँह से निकले, उससे अधिक हृदयभेदक दूसरी बात क्या हो सकती है?

एक आशा

गोलमेज़-परिषद् के बाहर वे जो काम कर रहे हैं, उसके संबंध में बोलते हुए उन्होंने कहा—"यह हो सकता है कि इस समय जो बीज बोये जा रहे हैं, उनके फलस्वरूप अंग्रेजों के दिल नरम हों और मनुष्यों का पशु बनना रुक जाय। पंजाब में अंग्रेज़ों के विकराल स्वभाव का मुझे अनुभव हो चुका है। इसके सिवा पन्द्रह वर्ष के अनुभव और इतिहास द्वारा अन्यत्र भी ऐसी ही बातों के होते रहने का परिचय मुझे मिल चुका है। मेरा यह संकल्प है कि मैं अपनी शक्तिभर सब प्रकार के उपायों से इस प्रकार की आपदाओं की पुनरावृत्ति को रोकूँ। मेरे अपने देशबन्धुओं को कष्टों से बचाने की अपेक्षा मानव-स्वभाव को पशु-स्वभाव बनने से रोकने की मुझे अधिक चिन्ता है। अपने देशबन्धुओं के कष्टों को देख कर तो मैं कई बार हर्षोन्मत्त हो गया हूँ। मैं जानता हूँ कि जो लोग स्वेच्छा से

कष्ट-सहन करते हैं, वे अपनेको और समस्त मानव-जाति को ऊँचा उठाते हैं, किन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि जो लोग अपने विरोधी पर विजय प्राप्त करने अथवा दुर्बल राष्ट्रों अथवा निर्बल मनुष्यों को लूटने के हताश-जन्य प्रयत्न में पशु समान बन जाते हैं, वे न केवल स्वयं ही गिरते हैं, प्रत्युत मानव-समाज को भी गिराते हैं। और मनुष्य-स्वभाव को पतित हुआ देखने में मुझे अथवा अन्य किसी को आनन्द हो नहीं सकता। यदि हम सब एक ही प्रभु के पुत्र हैं, और यदि हम सबमें एक ही ईश्वर का अंश है, तो हमें प्रत्येक मनुष्य के—फिर वह हमारा सजातीय हो अथवा विजातीय—पाप का भागीदर होना ही चाहिए। आप समझ सकते हैं कि किसी मनुष्य के हृदय में पाशविक वृत्ति को जगा देना कितना अप्रिय एवं दुःखद कार्य है, तब फिर अंग्रेजों में, जिनमें कि मेरे अनेक मित्र हैं, इस वृत्ति को जगाना तो और भी कितना अधिक दुःखद होगा? इसलिए मैं जो प्रयत्न कर रहा हूँ, उसमें आपसे हो सके उतनी सहायता करने की मैं आपसे याचना करता हूँ।

विद्यार्थियों के लिए काम

"भारतीय विद्यार्थियों से मेरी प्रार्थना है कि वे इस प्रश्न का पूरी तरह से अध्ययन करें। यदि सत्य और अहिंसा की शक्ति पर आपका सचमुच विश्वास हो। तो ईश्वर के नाम पर इन दोनों को—केवल राज

नैतिक क्षेत्र में ही नहीं—अपने दैनिक जीवन में प्रकट करें, और आप देखेंगे कि इस दिशा में आप जो कुछ भी करेंगे, उससे मुझे आन्दोलन में मदद मिलेगी। यह सम्भव है कि आपके निकट सम्पर्क में आनेवाले अंग्रेज़ स्त्री-पुरुष संसार को यह विश्वास दिलावें कि भारतीय विद्यार्थी जैसे भले और सत्यनिष्ठ विद्यार्थी उन्होंने कभी नहीं देखे। क्या आप नहीं समझते कि इससे हमारे देश की प्रतिष्ठा बहुत अधिक बढ़ जायगी? सन् १९२० की महासभा के एक प्रस्ताव में 'आत्म-शुद्धि' शब्द आये थे। उसी क्षण से महासभा को यह अनुभव हुआ कि हमें अपने आपको शुद्ध करना है। हमें आत्म-बलिदान के द्वारा शुद्ध बनना है, जिससे कि हम स्वतन्त्रता के अधिकारी बन सकें और ईश्वर हमारे साथ रहे। यदि ऐसा हो तो प्रत्येक भारतीय, जिसके जीवन से आत्म-बलिदान की शिक्षा मिलती हो, बिना कुछ अन्य कार्य किये स्वदेश की सेवा करता है। यह मेरे मत से महसभा के स्वीकृत साधन की शक्ति है। इसलिए स्वतंत्रता के युद्ध में यहाँ के प्रत्येक विद्यार्थी को इसके सिवा और कुछ अधिक करने की आवश्यकता नहीं कि वह स्वयं शुद्ध हो और अपने चरित्र को आक्षेप अथवा सन्देह से ऊँचा उठावे।"

पाठक देखेंगे कि गाँधीजी को हमारे आत्म-बलिदान रूपी बहती गंगा की झाँकी अधिकाधिक होती जाती है, और कोई

सभा ऐसी नहीं होती कि जिसमें वे अपने हृदय के गम्भीर गह्वर में सुनाई देनेवाली भावी तूफ़ान की गर्जना श्रोताओं को न सुनाते हों।

(नेशनल लेबर क्लब की ओर से की गई स्वागत-सभा में गाँधीजी से पूछा गया)—क्या आप लड़ाकू राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति प्रकट नहीं करते ? और क्या आप नहीं समझते कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए दस लाख प्राणों का बलिदान कर देना ख़तरनाक आदर्श होगा ?

उ०—मैं नहीं समझता कि अपने निज के जीवन का बलिदान करना कोई ख़तरनाक आदर्श है, और इन बहुमूल्य प्राणों का बलिदान तो वह देश करेगा, जिसे ज़बरदस्ती अनिवार्य रूप से शस्त्रत्याग करना पड़ा है।

आज़ादी का मूल्य

आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि भारत अहिंसा के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है और इसलिए किसी दूसरे के प्राण लेने का वहाँ कोई प्रश्न ही नहीं है। हम अपने प्राणों को इतना सस्ता या फालतू नहीं समझते कि हर किसी न-कुछ चीज़ के लिए उन्हें गँवा बैठें; किन्तु साथ ही हम अपने प्राणों को स्वयं स्वतन्त्रता से महँगा नहीं समझते, इसलिए यदि हमें दस लाख प्राणों का भी बलिदान करना पड़े तो हम कल ही करने को तैयार होंगे और इसपर आकाश में से ईश्वर यही कहेगा—'शाबास, मेरे पुत्रो, शाबास !' हम अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इससे

विपरीत आप साम्राज्यवादी प्रकृति के लोग हैं। आपको दूसरों को भयभीत करने की आदत पड़ी हुई है। भूतपूर्व जनरल डायर से जब हण्टर-कमीशन ने पूछा, तो जवाब में उसने कहा था—"हाँ, मैंने यह भयभीतपन—आतङ्क—जान-बूझकर पैदा किया था।" मैं यहाँ यह कहना चाहता हूँ कि यह आतङ्क दिखाने की शक्ति अकेले डायर में न थी। हम इस क्रिया को उलट कर स्वतन्त्रता-प्राप्ति के प्रयत्न में अपने-आपको बलिदान कर सकते हैं। यदि ब्रिटिश राष्ट्र की इज्ज़त के रक्षक आप लोग इस अनर्थ से उसे बचा सकें तो इसे बचाना आपका धर्म है।

प्र०—क्या आपको स्वतन्त्रता देना हमारी भूल न होगी?

उ०—मेरा ख़याल है कि यदि आप किसीको स्वतन्त्रता दें तो आपकी भूल होगी और इसलिए कृपा कर यह स्मरण रखिए कि मैं स्वतन्त्रता की भिक्षा माँगने नहीं आया हूँ, प्रत्युत पिछले वर्ष के कष्ट-सहन के परिणाम-स्वरूप आया हूँ। और इस कष्ट-सहन के अन्त में ऐसा अवसर आया, जिससे हम भारत छोड़ कर यहाँ यह देखने के लिए आये हैं कि हमने अपने कष्ट-सहन द्वारा अंग्रेज़ों के मन पर काफ़ी असर डाला है या नहीं, जिससे कि मैं सम्मानपूर्ण समझौते के साथ जा सकूँ। किन्तु यदि मैं किसी सम्मानपूर्ण समझौते के साथ जाऊँ, तो मैं इस विश्वास के साथ नहीं जाऊँगा कि मुझे इस राष्ट्र से कोई दान

मिला है। कोई भी राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को स्वतन्त्रता का दान नहीं दे सकता। वह तो अपना खून दे कर ही प्राप्त करनी अथवा खरीदनी पड़ती है, और मैं समझता हूँ कि जो क्रिया सन् १९१९ से अपनेआप कर चल रही है उसमें हम अपना खून काफ़ी दे चुके हैं। किन्तु यह हो सकता है कि ईश्वर की कृपालु दृष्टि में अभी ऐसा प्रतीत होता हो कि आत्मशुद्धि की क्रिया में हम अभी पूरे नहीं उतरे। अतः मैं यहाँ इस बात की साक्षी देता हूँ कि जब-तक कोई भी अंग्रेज़ भारत में शासक की तरह रहना अस्वीकार न करेगा, हम आत्म-बलिदान की इस क्रिया को बराबर जारी रक्खेंगे।

प्र०—कहा जाता है कि लार्ड इर्विन ने सेन्ट्रल हाल में भाषण देते हुए कहा था कि वह जानते थे कि आप पूर्ण स्वराज्य का आग्रह न करेंगे। क्या यह बात ठीक है ?

उ०—पहली बात तो यह है कि मैं नहीं जानता कि लार्ड इर्विन के जिस भाषण की बात कही जाती है, वह उन्होंने दिया भी या नहीं। दूसरे, मुझे लार्ड इर्विन की ओर से बोलने की कुछ आवश्यकता नहीं है। यह प्रश्न तो उन्हींसे पूछा जाय तो अच्छा हो। किन्तु मैंने लार्ड इर्विन से यह कभी नहीं कहा कि मैं पूर्ण स्वतन्त्रता का आग्रह नहीं करूँगा। इसके विपरीत, यदि मेरी स्मरणशक्ति मेरा अच्छी तरह साथ देती हो, तो, मैंने उनसे कहा

था कि मैं पूर्ण स्वतन्त्रता का आग्रह करूँगा, और मेरे लिए इसका यह अर्थ नहीं कि अंग्रेज नौकरों की जगह भारतीय नौकरों द्वारा शासनकार्य चलाया जाय। मेरे मत से पूर्ण स्वतन्त्रता का अर्थ है राष्ट्रीय सरकार।

प्र०—अंग्रेजी फ़ौज रखने के साथ आप पूर्ण स्वतन्त्रता का मेल किस तरह मिलाते हैं ?

उ०—अंग्रेज सेना भारत में रह सकती है और यह निर्भर है दोनों साझेदारों की परस्पर की योजना पर। इससे एक मर्यादित समय तक भारत का हित होगा, क्योंकि भारत को नपुंसक बना दिया गया है, और अंग्रेज सेना अथवा अधिकारियों का एक अंश राष्ट्रीय सरकार की नौकरी में रक्खा जाना जरूरी है। मैं साझेदारी की हिमायत करूँगा, और फिर भी इस सेना के रक्खे जाने की भी हिमायत करूँगा।

प्र०—स्वतन्त्र भारत की बात करते हुए आप वाइसराय की कल्पना करते हैं या नहीं ?

उ०—वाइसराय रहेगा या नहीं, यह प्रश्न दोनों दलों को मिलकर तय करने का है। अपनी ओर से तो मैं वाइसराय के रक्खे जाने की कल्पना नहीं करता। किन्तु भारत में एक ब्रिटिश एजेन्ट के रक्खे जाने की कल्पना मैं कर सकता हूँ, क्योंकि वहाँ अंग्रेजों ने कई हित-सम्बन्ध स्थापित किये हैं, जिन्हें मैं कष्ट नहीं

करना चाहता, इसलिए इन हित सम्बन्धों की हिमायत करने के लिए ब्रिटिश एजेन्ट की आवश्यकता होगी, और जब कि वहाँ अंग्रेज़-सैनिकों और अफ़सरों की सेना होगी, तब मैं यह नहीं कह सकता कि नहीं, यहाँ ब्रिटिश एजेएट नहीं रह सकता। और नरेशों का भी प्रश्न है; मैं इसका निश्चय नहीं कर सकता कि ये राजालोग क्या करेंगे, और इसलिए मैं नहीं कह सकता कि मेरी कल्पना की योजना में ब्रिटिश एजेएट—फिर उसे वाइसराय कहा जाय या गवर्नर जनरल, होगा ही नहीं। किन्तु मैं उसकी हिमायत इस तरह करूँगा, कि इस साझेदारी की यह शर्त है कि सम्पूर्ण समानता के सिद्धान्त पर दोनों में से जो चाहे कोई भो पक्ष उससे अलग अथवा मुक्त हो सकता है। मैं ऐसी स्लेट पर लिख रहा हूँ, जिसपर से मुझे बहुत सी बातें मिटा देनी हैं।

प्र०—ऐसी साझेदारी से कौनसे समान हित साधे जा सकते हैं?

उ०—इस साझेदारी से जो समान-हित साधा जानेवाला है। वह है पृथ्वी पर की जातियों की लूट को रोकना। यदि भारत इस लूट के अभिशाप से मुक्त हो सके, जिसके नीचे कि वह वर्षों से कुचला जा रहा है, तो उसका यह धर्म हो जायगा कि वह इस लूट को सदैव के लिए बन्द करवा दे। सच्ची साझेदारी से दोनों को लाभ होगा। यह साझेदारी ऐसी दो जातियों

में होगी, जिनमें एक अपनी मर्दानगी, बहादुरी, साहस और अनुपम संगठन शक्ति के लिए प्रसिद्ध है और दूसरी एक ऐसी प्राचीन जाति है, जिसकी संस्कृति का कोई मुक़ाबला नहीं कर सकता और जो स्वयं ही एक महाद्वीप है। इन दो राष्ट्रों की साझेदारी के परिणाम में दोनों का हित और मानव-जाति की भलाई हुए बिना रह नहीं सकती।

× × ×

गाँधीजी का परिषद् के बाहर का कार्यक्रम मैं ज़रा विस्तार के साथ यहाँ देता हूँ, क्योंकि उनका और उसी तरह मेरा भी विश्वास है कि उनका सबसे महत्त्व का काम इन परिचयों और खानगी बातचीतों तथा सब वर्ग और श्रेणी के लोगों के साथ के विशुद्ध सम्भाषणों द्वारा हो रहा है। भारत की तरह यहाँ भी गाँधीजी का एक-एक क्षण देश के लिए अर्पित है। और इनके जितना परिश्रम कदाचित कोई भी नहीं करता। उनके चौबीसों घण्टे का विवरण इस प्रकार है:

रात के १ बजे	किंग्सली हॉल पहुँचना
,, १-४५	यज्ञार्थ १६० तार सूत कातना
,, १-५०	डायरी लिखना
,, २ से ३-४५	सोना
,, ३-४५ से ५	उठ कर प्रार्थना करना

सुबह	५ से ६	सोना
,,	६ से ७	घूमना और घूमते हुए बातचीत
,,	७ से ८	प्रातःकर्म और स्नान
,,	८ से ८-३०	पहला खाना
,,	८-३० से ९-१५	किंग्स्लो हॉल से नाइट्सब्रिज
,,	९-१५ से १०-४५	एक पत्रकार, एक कलाकार, एक सिख प्रतिनिधि और एक व्यापारी के साथ बातचीत
,,	१०-४५ से ११	सेण्ट जेम्स को जाने में
,,	११से १	सेण्ट जेम्स में
,,	१ से २-४५	अमेरिकनों के भोज में
,,	३ से ५-३०	मुसलमानों के साथ
,,	५-३० से ७	भारत मंत्री के साथ
,,	७ से ७-३०	प्रार्थना और संध्या के खाने के लिए घर जाना
,,	८ से ९-१०	मद्यनिषेध के कार्यकर्त्ता की परिषद् में भारत के मद्यनिषेध के प्रश्न के बारे में बातचीत
,,	९-१०	नवाब साहब भोपाल का मिलने के लिए सिडकप को जाना

किंग्सली हॉल वे कब पहुँचेंगे कोई नहीं जानता है। परन्तु १ बजे के पहले कभी नहीं पहुँचते। यह भी मुझे कहना चाहिए कि यह एक साधारण दिन है। यह उग्र तपस्या है। शरीर यह कबतक सहन कर सकेगा।

[६]

'चर्च हाउस' में योर्क के आर्कबिशप की अध्यक्षता में हुई सभा में, जिसमें इंग्लैण्ड के मुख्य पादरी और दूसरे चर्च के अधिकारी भी थे, गाँधीजी ने कहा—"मैं तमाम अंग्रेज़ों से भारत के मामले का अध्ययन करने को कहता हूँ और यदि उनको यह मालूम हो कि मेरी स्थिति वाजिब है तो उन्हें गोलमेज परिषद् को सफल परिणामी बनाने में जितनी भी वे कर सकें मदद करनी चाहिए। लेकिन मुझे कोई आशा नहीं दिखाई देती। लार्ड सेंकी समय बिता रहे हैं और आज न हम सफलता के निकट पहुँचे हैं और न इस बड़े मुद्दे के नज़दीक ही पहुँचे हैं कि 'भारत सम्पूर्ण स्वतन्त्रता पानेवाला है या नहीं। वह सेना, राजस्व और वैदेशिक नीति पर अपना अधिकार पायेगा या नहीं?' हम लोगों ने इन बातों का विचार तक नहीं किया है। हम लोग महत्त्व में दूसरे दर्जे की और तीसरे दर्जे की बातों पर चर्चा करने में ही समय खर्च कर रहे

वस्तु स्थिति

हैं। क़ौमी सवाल का, जो यह कहा जाता है कि प्रगति का रास्ता रोके हुए है, इस तरह उपयोग नहीं होना चाहिए था।"

एक मित्र से उन्होंने कहा, "मैं ऐसी दीवाल से सर टकरा रहा हूँ, जहाँ कोई रास्ता नहीं है।"

प्र०—"क्या यह दुर्भाग्य की बात नहीं है कि आज आप एक विचार की एक बड़ी मज़बूत संस्था के प्रतिनिधि हैं, फ़िर भी आप संयुक्त भारत के नेता नहीं हैं?"

उ०—"मैं नहीं हूँ। परन्तु इसका कारण यह है कि यहाँ ऐक्य होना असम्भव है। क्या आप यह नहीं देखते कि यह परिषद् सरकार के चुने हुए लोगों से भरी हुई है? यदि हमें हमारे प्रतिनिधि चुनने को कहा गया होता तो मैं सबका प्रतिनिधि बनता और सबकी तरफ से बोल सकता था। बेशक राजाओंकी तरफ से नहीं। राजालोग सरकार की कृपा से जीते हैं इसलिए वे सरकार के आश्रितों की हैसियत से ही बोल सकते हैं। और आज मुसलमान भी, जो कुछ दिन पहले किसी भी शर्त पर ब्रिटिश सम्बन्ध को स्वीकार करने के लिए तैयार न थे; राज्य-भक्तों से भी बढ़कर बातें कर रहे हैं।"

प्र०—"तो, क्या 'डेली हेरल्ड' ने जो कहा वह सही है?"

उ०—"नहीं, मेरे ख़याल में प्रधान मन्त्री यह ठीक कहते हैं कि सरकार विचारपूर्वक परिषद् को तोड़ डालने का प्रयत्न नहीं

करती है। परन्तु सम्भव है उन्हें उसे जल्दी पूरा करना पड़े, क्योंकि सभ्यता के लिए भी वे इस पीड़ा को अधिक दिनों तक यों ही नहीं चलने दे सकते हैं। यह पीड़ा से कुछ कम नहीं है। हम ऐसे मुद्दों पर बातें-ही-बातें कर रहे हैं, जो मुख्य विषय का स्पर्श भी नहीं करते। जब कि हम यही नहीं जानते हैं कि हमारे पास क्या धन होगा, हमारा अधिकार क्या होगा और कितनी सेना का खर्च हमें देना होगा, तब संघ-शासनतन्त्र और प्रान्तीक सरकारों में अर्थविभाग करने का क्या उपयोग हो सकता है?"

मेरे खयाल में वस्तुस्थिति का यही ठीक वर्णन है। गोलमेज़ परिषद् में उन्होंने यह बात अच्छी तरह स्पष्ट की थी। संघ-विधायक समिति में बड़ी अदालत की चर्चा में उन्होंने इस प्रश्न को पूरा-पूरा स्पष्ट कर दिया। उन्होंने चेतावनी दी कि अब उस पुराने रास्ते को छोड़ दीजिए—हमेशा राष्ट्र की भाषा और जैसा कि आज हो रहा है भारत बड़ी-बड़ी तनख्वाहें दे और उसके ग़रीब लोग भूखों मरें—इस प्रकार के विचार छोड़ दीजिए। नाम कैसा भी अच्छा क्यों न हो, महासभा ऐसी किसी व्यवस्था से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं रख सकती, जिसमें किसी भी रूप में और किसी भी प्रकार से ब्रिटिश कब्जा और ब्रिटिश आधिपत्य को मान लिया गया हो। यदि आप सचमुच ही कुछ करना चाहते हैं तो आपको स्वतन्त्र भारत की परिभाषा में विचार

करना चाहिए। भारत में अपनी स्वतन्त्र अदालत हो, उसमें जो न्यायाधीश हों उन्हें वह अपनी शक्ति के अनुसार तनख्वाह दे सकें और उसके लोगों की स्वतन्त्रता की रक्षा के सच्चे साधन हों। यह, जैसा कि लार्ड सेंकी ने कहा, 'महत्व का और निर्भीक' भाषण था। इससे वायुमण्डल स्वच्छ होना ही चाहिए। उससे लोग विचार करने लगेंगे; कम-से-कम वे लोग जो लार्ड सेंकी की तरह ऐसे शख्स से, जो 'उसे क्या चाहिए जानता है,' खरी बात सुनना पसन्द करते हैं। इस बीच महासभा और उसके प्रतिनिधि को बदनाम करने के लिए अधम प्रचार कार्य किया जा रहा है। पंडित जवाहरलालजी ने युक्तप्रान्त की स्थिति के वर्णन का एक लम्बा तार भेजा है। जवाब में गाँधीजी ने ठीक ही कहा है कि पंडितजी बिना किसी हिचकिचाहट के परिस्थिति के उपयुक्त जो-कुछ आवश्यक हो कार्य कर सकते हैं; क्योंकि यहाँ कोई आशा नहीं है। स्वार्थ-साधु पत्र भले-बुरे किसी भी ज़रिये से ऐसे समाचार जान लेते हैं और फिर उसको भयंकर रूप से विकृत करके छापते हैं; जैसे कि 'मि० गाँधी जवाहरलाल को सविनय-भंग का युद्ध शुरू करने को लिखते हैं।' इसी तरह पायोनियर ने यह बे-पर की उड़ाई थी कि 'गाँधीजी मुसलमानों को रुपया देकर असहयोग के आन्दोलन में साथ देने को ललचा रहे हैं।'

लार्ड रोचेस्टर की अध्यक्षता में मद्यनिषेध के कार्यकर्त्ताओं की जो सभा हुई वह भी बड़ी महत्त्व की थी। ऐसा मालूम होता था

मद्यनिषेध

कि तीन चार सौ मित्रों में से प्रत्येक मित्र ने भारत के अनिच्छुक लोगों को मद्यपी कर देने में इँग्लैण्ड का कितना बड़ा अपराध था, यह बात समझ ली थी। गाँधीजी ने कहा—"संसार में ऐसा कोई देश नहीं है, जो सरकार के ख़िलाफ़ होने पर भी मद्यनिषेध का प्रयत्न कर रहा हो, जहाँ आम लोगों का बड़ा हिस्सा मद्यनिषेध के लिए पुकार उठाता हो और सरकार उसका इन्कार करे, और जहाँ सब प्रकार के गुप्त उपायों से मद्यपान को प्रोत्साहन दिया जाता हो।" और भाषण के अन्त में गाँधीजी की जो प्रशंसा की गई उसपर से अगर मैं कुछ अन्दाज़ लगा सकूँ तो, मैं कह सकता हूँ कि वे बात को फ़ौरन ही समझ गये थे, ऐसा मालूम होता था। गाँधीजी ने कहा—"महसूल का सवाल न हो तो मद्यनिषेध का प्रश्न हमारे लिए अत्यन्त सरल है" और उन्होंने समझ लिया कि भारत के लिए उसके अर्थ पर उसका कब्ज़ा होना कितना आवश्यक है, जिससे कि वह अपने बजट के दोनों पहलू बराबर कर सके और मद्य-निषेध भी कर सके।

[७]

जहाँ तक हमारे देश का प्रश्न है, सरकार में परवर्तन हो जाने से, हमारे लाभ-हानि में कोई अन्तर नहीं पड़ता। हमें यह न भूल जाना चाहिए कि भारत के इतिहास में कभी न सुने गये घृणित-से-घृणित अत्याचार—स्त्रियों पर लाठियों के प्रहार तक—मज़दूर सरकार के शासन में ही हो चुके हैं। अनुदार दल के शासन में इससे बदतर और क्या हो सकता है? क्या गोली-बारूद का खुलकर प्रयोग होगा? लाठियों के कायर-प्रहार से तो यह कहीं अधिक स्वच्छ और सीधा मार्ग होगा।

चुनाव का असर

पार्लमेंट के इस भयभीतपने के चुनाव अथवा एक महिला के शब्दों में, 'सबसे पहिले हिफाज़त' (Safty First) के चुनाव और इंग्लैंड तथा यूरोप के आर्थिक संकट का कुछ विशेष अर्थ है, जिसे सर विलियम लेटन ने सुन्दर शब्दों में इस प्रकार रक्खा है—"किसी भी देनदार या ऋणी राष्ट्र के लिए अब यह सम्भव नहीं रह गया है कि वह अपने ही प्रयत्न से क़र्ज़ की अदायगी कर सके। लेनदार देशों को यह निश्चय करना चाहिए कि वे अपना लेना माल के रूप में लेने के लिए तैयार हैं, अथवा क़र्ज़ की रकम घटाना अधिक पसन्द करते हैं। यदि प्रत्येक राष्ट्र केवल आयात

को रोकने के लिए ही अपने-अपने प्रतिबन्ध लगावें, तो धीरे-धीरे चारों ओर से निर्यात बन्द हो जायगा और अन्त में अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय अपंग हो जायगा।"

दूसरे लेखक ने चुनाव के परिणाम का विश्लेषण इस ढंग से किया है कि भारतवासी उसे आसानी से समझ सकेंगे—"जॉन बुल को विश्वास दिला दीजिए कि उसके देश पर कोई वास्तविक भयङ्कर ख़तरा मंडरा रहा है; एक बार उसे यह विश्वास हो जाने दीजिए कि उसकी बचत का जब्त कर लेने और बैंक आफ़ इंग्लैंड (जो उसके लिए अचल दुर्ग है) की जड़ उखाड़ने और इसलिए उसके आश्वासन, आर्थिक रक्षा, आर्थिक प्रगति की सब आशाओं पर पानी फेरने के लिए कोई दुष्ट शक्ति काम कर रही है, तो जॉन बुल अपनी सारी शक्ति लगाकर उठ खड़ा होगा, और एक बार फिर दुनिया को विस्मय में डाल देगा।"

भारत इस प्रत्यक्ष उदाहरण से शिक्षा लेना न चूकेगा। भारत में दूसरा प्रसंग उपस्थित होने पर—जिसके कि शीघ्र होने की सम्भावना है,—यदि हम चाहें, तो जॉन बुल को आसानी से भयंकर ख़तरे का दर्शन करा सकते हैं, और उस समय वह फिर अपने मन्त्रियों से भारत के साथ सुलह करने के लिए कह कर संसार को विस्मित कर देगा।

आक्सफोर्ड में कुछ विद्यार्थियों ने एक प्रश्न यह पूछा था—"हिन्दू संयुक्त निर्वाचन क्यों चाहते हैं ?" उत्तर में (श्रोताओं के अट्टहास्य के बीच) उन्होंने कहा "क्योंकि वे मूर्ख हैं। पृथक् निर्वाचक मण्डल देकर वे मुसलमानों का सब जोश एकदम उतार सकते हैं और पृथक् निर्वाचन में हो न हो कुछ बुरी बात तो नहीं है इस असमञ्जस में उन्हें डाल दे सकते हैं।"

मूर्ख हिन्दू

एक अंग्रेज विद्यार्थी ने पूछा—"आप शराब पीने वालों के प्रति इतने अनुदार क्यों हैं ?"

उ०—"इसलिए कि इस अभिशाप के असर से पीड़ित लोगों के प्रति मैं उदार हूँ।"

कई लोगों को इस बात का आश्चर्य है कि वे इतने विचित्र कामों में सुबह से लेकर आधीरात तक अपने दिमाग़ को आवेश से मुक्त रखकर अपने-आपको किस प्रकार प्रसन्न रख सकते हैं। श्रीमती यूस्टेस माइल्स ने पूछा—"क्या अभी आपको चिड़चिड़ापन सूझता है ?" गाँधीजी ने उत्तर दिया—"मेरी पत्नी से पूछो। वह तुम्हें बतलायगी कि दुनिया के साथ तो मेरा बर्ताव बड़ा अच्छा रहता है किन्तु उसके साथ नहीं।" इस विनोदपूर्ण उत्तर को सराहते हुए श्रीमती माइल्स ने कहा—"मेरे प्रति तो मेरे साथ बड़ा अच्छा बर्ताव करते हैं।"

प्रत्युत्तर में गाँधीजी ने कहा—"तब मेरा विश्वास है कि श्री माइल्स ने तुम्हें गहरी रिश्वत दी है।"

प्र०—"क्या चरखा मध्ययुग का औज़ार नहीं है ?"

उ०—"मध्ययुग में हम बहुत सी ऐसी बातें करते थे, जो सर्वथा बुद्धिमानीपूर्ण थीं। किन्तु यदि हममें से अधिकांश ने उन्हें छोड़ दिया तो मुझ पर मेरी बुद्धिमत्ता का आक्षेप क्यों करते हो ? यह औज़ार कितने ही मध्ययुग का क्यों न हो, किन्तु अपने दरिद्र ग्रामवासियों की आय में इसके द्वारा ५० प्रतिशत वृद्धि करते हुए मुझे ज़रा भी लज्जा प्रतीत नहीं होती। महायुद्ध के समय आप लोगों ने आलू की खेती की और लिसियम क्लब की शौकीन-मिजाज़ रमणियों ने पुरुषों को सादे सूई और डोरे से सैनिकों के सोने के समय की पोशाक सीने के लिए आमन्त्रित किया था। क्या वे बातें मध्ययुग की न थीं ? मैंने तो यह मध्य-युगीन युक्ति लिसियम क्लब की युवतियों से सीखी है।"

किन्तु जिस प्रकार पिछला सत्याग्रह-आन्दोलन इतना अक-स्मात और इतना अचानक उठ खड़ा हुआ, उसी तरह गाँधीजी कई बार प्रसंग आने पर चमक उठते हैं और ज्वाला के रूप में फट पड़ते हैं।

प्र०—स्वराज्य के मार्ग में मुख्य विघ्न क्या है ?

उ०—"ब्रिटिश अधिकारियों के अधिकार छोड़ने का

अनिच्छा, अथवा अनिच्छित हाथों में से अपने अधिकार धरा लेने की हमारी अयोग्यता ही मुख्य विघ्न है।

स्वराज्य में बाधा

आपको इस बात का खेद है कि मैंने आपका मनचाहा उत्तर नहीं दिया। मैं आपको यह बात समझा देना चाहता हूँ कि हममें कितना ही अनैक्य होने पर भी हम अधिकार छीन ले सकते हैं और जिन लोगों को अधिकार छोड़ना है, वे राजी-खुशी से छोड़ने को तैयार हो जायँ तो हमारा अनैक्य तुरन्त मिट जायगा। आप कहते हैं कि अंग्रेज तो तटस्थ प्रेक्षक हैं। किन्तु मैंने तो भारत सरकार पर फच्चर की तरह आड़ लगाने और ब्रिटिश सरकार पर अपने मनचाहे लोगों की कॉन्फरेंस अथवा परिषद् बुलाने का आक्षेप लगाने को धृष्टता की है। विवेकशील मुसलमानों के साथ मिलकर महासभा ने साम्प्रदायिक प्रश्न के निर्णय की अपनी योजना तैयार की है। किन्तु यदि दुर्भाग्यवश अधिक-संख्यक मुसलमानों के प्रतिनिधि होने का दावा करनेवाले कुछ मुसलमान सन्तुष्ट नहीं हैं, और इसलिए यदि सरकार यह कहे कि हमारे गले में बाँधी हुई जञ्जीर को वह बँधी ही रक्खेगी, तो मेरा कहना है कि हम एक साथ एक ही प्रहार से इस जंजीर और इस अनैक्य दोनों के ही टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।" इसके बाद कामनवेल्थ आफ इण्डिया लीग के स्वागत के अवसर पर उन्होंने कहा:—

"सबसे अच्छा मार्ग तो यह है कि अंग्रेज लोग भारत से अलग हो जायँ और जिस तरह इंग्लैण्ड कर रहा है, उसी तरह भारत को अपने घर की व्यवस्था या कुव्यवस्था करने दें। किन्तु भारत में अँग्रेज जेलर की तरह झुककर भारतवासियों को नेकचलनी के नियम सिखाते हैं, और भारत एक विस्तृत जेलखाना बन गया है। अच्छा हम अपना हिसाब बतावेंगे और आपको भी अपना हिसाब बताना होगा। आपके लिए सबसे अच्छी बात तो यह है कि आप इस अप्राकृतिक अथवा अस्वाभाविक सम्बन्ध का अन्त कर दें। यदि ईश्वर की ऐसी ही इच्छा हुई, तो हम आप के अनिच्छित हाथों से स्वतन्त्रता धरवा लेंगे। मैंने खयाल किया था कि हम लोगों ने काफ़ी कष्ट सहन किया है; किन्तु मैं देखता हूँ कि हमारा कष्ट-सहन इतना व्यापक और वास्तविक नहीं है, जिससे कि उसका असर हो सके, इसलिए मुझे भारत जा कर अपने देश वासियों से गत वर्ष की अपेक्षा अधिक उग्र अग्नि-परीक्षा में से गुज़रने के लिए कहना होगा। चटगाँव और हिजली की घटनाएँ मेरे भारत लौटने के लिए प्रकाश-स्तम्भ की तरह काफ़ी चेतावनी है। किन्तु मुझे धैर्य रखना और अपने क्रोध को दबाना चाहिए। कभी-कभी मुझे अपने पर बेहद क्रोध आता है; किन्तु मैं इस शत्रु से छुटकारा पाने की प्रार्थना भी करता हूँ और ईश्वर ने मुझे अपना क्रोध दबाने की शक्ति दी है। किन्तु क्रोध हो वा

न हो, मैं इंग्लैंण्ड अकस्मात न छोड़ूँगा । मैं प्रतीक्षा करूँगा, देखूँगा और प्रार्थना करूँगा । किन्तु अन्त में यदि गोलमेज़ परिषद् टूट जायगी, तो हमें क्या करना होगा, यह मैं जानता हूँ । मैं जानता हूँ कि हम तराजू पर कम नहीं उतरेंगे, अथवा पीछे नहीं हटेंगे और उस समय आपका यह कर्त्तव्य होगा कि आप हमारी मदद करें ।

बर्नार्ड शॉ बहुत दिन से गाँधीजी से मिलना चाहते थे और वे काफ़ी हिचकिचाहट के उपरान्त मिलने आये । वे गाँधीजी के पास प्रायः एक घण्टे तक बैठे और इस समय में अगणित विषयों पर प्रश्न पूछते रहे । उनके प्रश्न धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और प्राणिशास्त्र और अर्थशास्त्र सम्बन्धी सभी विषयों पर थे । उनके वार्तालाप में गम्भीर मनोरंजन के छींटे भी थे । वे कहने लगे—"मैं आपके विषय में कुछ जानता था और आपमें अपने साथ कुछ विचार साम्य होना भी अनुभव करता था । हम लोगों की संसार में एक छोटी-सी जाति है ।" उनके अन्य सब प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के थे, परन्तु गोलमेज विषयक एक प्रश्न पूँछे बिना वे न रह सके । उन्होंने पूछा, "क्या गोलमेज़ परिषद् आपके धैर्य को नहीं तोड़ रही है ?" और इसके उत्तर में गाँधीजी ने खेद सहित स्वीकार किया—"इसके लिए तो असाधारण धैर्य्य की आवश्यकता है ।

बर्नार्ड शा

समझते होंगे कि अल्पसंख्यक-समिति में प्रधान मन्त्री के धमकी देनेवाले भाषण को मैंने पसन्द किया। मैं तो वहीं उसका विरोध करता, परन्तु चुप रहा और घर आकर एक हलका विरोध-सूचक पत्र लिख भेजा। अब इस सप्ताह एक और नैतिक समस्या उपस्थित हो गई है। सम्राट् के स्वागत का निमन्त्रण मुझे मिला है। भारत में होनेवाली घटनाओं ने मुझे इतना क्षुब्ध और दुःखी बना दिया है कि मेरा मन नहीं चाहता कि मैं इस स्वागत में सम्मिलित होऊँ और यदि मैं स्वच्छन्द रूप से यहाँ आता तो अपनी इच्छानुसार ही करता। परन्तु मैं तो महमान हूँ, अतः हिचकिचा रहा हूँ; शीघ्र कुछ निश्चय भी नहीं कर सकता। मुझे इसके नैतिक पहलू पर भी विचार करना है—खाली न्यायोचित निश्चय पर ही दृढ़ नहीं रहना है।" नैतिक ज़िम्मेवरी ने ही गाँधीजी से वहाँ जाने का निश्चय कराया। जब वह यह निश्चय कर चुके तो उन्होंने लार्ड चेम्बरलेन को एक विनम्र पत्र लिखा जिसमें निमंत्रण के लिए धन्यवाद दिया और लिखा कि वह और उनके एक साथी (जिनको भी आमन्त्रित किया था) अपनी सदा की पोशाक में उस स्वागत में सम्मिलित होंगे। साधारणतया गाँधीजी ऐसे उत्सवों में भाग नहीं लेते, परन्तु इस अवसर पर, जैसा कि अन्य कुछ अवसरों पर भी हुआ है, उन्होंने नियम ढीला कर दिया; क्योंकि वह ऐसा कोई काम नहीं करना चाहते, जिससे कोई निरादर प्रकट

हो। वह ऐसा मौक़ा नहीं देंगे, जिससे लोग उन्हें कोई दोष दें।

[६]

"इस वक्त तो ऐसा मालूम पड़ता है कि परिषद् टॉय-टॉय-फिस होनेवाली है। इस घोर अन्धकार में आशा की किरणें दीख नहीं

अब आगे ?

पड़ रही हैं। लेकिन आपमें से कुछ बड़े लोग परिषद् को असफलता के घाट न उतरने देने के लिए पूरा प्रयत्न कर रहे हैं। यदि वे लोग असफल रहे और यदि यह परिषद् आख़िर नाकामयाब साबित हुई —मुझे तो ऐसा ही अन्देशा है—तब लाखों लोग कष्टों का आवाहन करने के लिए कटिबद्ध हो जायँगे और भीषण दमन से भी विचलित न होंगे। हमसे कहा जा रहा है कि गत वर्ष की अपेक्षा अब की बार का दमन दसगुना भयंकर होगा। परन्तु मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगा कि हे भगवन्! पाशविक बल के ऐसे प्रदर्शन से मानव-समाज को दूर ही रखना।"

उपर्युक्त वाक्य महात्माजी के उन विचारों का अंतिम भाग है, जो उन्होंने वेस्टमिनिस्टर स्कूल में उस दिन की संध्या को प्रकट किये, जिस दिन उन्होंने गोलमेज़-परिषद् के समक्ष अपना तीसरा स्मरणीय व्याख्यान दिया था। उनका यह भाषण साम्प्रदायिक समस्या की उस लम्बी-चौड़ी सुलझन के उत्तर में था, जिसका

पेश किया यह दावा था कि मुसलमानों, अछूतों, भारतीय ईसाइयों तथा भारत में रहनेवाले गोरों के बीच, जिनकी कि संख्या हिन्दुस्थान की आबादी की ४६ फ़ी सदी बताई जाती है, लगभग पूरा ऐक्य है। उपर्युक्त भिन्न-भिन्न जातियों के नामज़दों की इस अनोखी और गुस्ताख़ाना सूझ में कुछ ऐसा बेतुकापन था, जिसे महसूस करने में मेहनत की दरकार नहीं है। उस मसविदे के पेश होते ही उसके ख़िलाफ़ ज़ोरों से आवाजें उठने लगीं। सरदार उज्जलसिंह का विरोध सबसे ज्यादा पुरज़ोर था। उन्होंने तो काने को साफ़-साफ़ काना कह दिया और उन लोगों की हरकत के बारे में अपना यह मत प्रकट किया कि यह दूसरे की सम्पत्ति को बाँट खाने के उद्देश्य से खड़ी की गई जालसाज़ी नहीं तो और क्या है ? जब गाँधीजी ने इसपर अपना सात्विक रोष प्रकट करते हुए उसका भंडा-फोड़ किया और कहा कि यह हरकत तो राष्ट्र के प्रति अत्याचार-रूप है, तब उस चालबाज़ी का काम तमाम हो गया। गाँधीजी ने इतना ही नहीं किया बल्कि उन्होंने उस तजवीज़ के तैयार करने वालों के इन व्यर्थ के दावों की भी पोल खोल दी—यह कहकर कि वे लोग उस जाति के प्रतिनिधि हैं भी, कि जिसकी ओर से वे बोलने का साहस कर रहे हैं ?

इससे प्रधान मंत्री की आँखें खुल गई होंगी।

"न्यू स्टेट्समेन" के आज के अंक में प्रकाशित हुआ निम्न-

लिखित वाक्य गाँधीजी की बात को मानों दुहरा रहा है—

"बिना इस बात के जाने हुए कि मुख्य प्रश्न के विषय में कुछ तय होनेवाला है या नहीं, कोई साम्प्रदायिक प्रतिनिधि, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान अथवा सिख, साम्प्रदायिक मामले में दूसरे और कम स्वीकार कर लेने के लिए तैयार नहीं है।"

आगे चलकर उसमें यह भी लिखा है कि "परिषद् के असफल होने का कोई वास्तविक कारण नहीं है। यदि टरकाने की नीति का अनुसरण किया गया तो जानबूझकर किया जायगा, क्योंकि इंग्लैंड के मंत्रि-मंडल ने निश्चय किया है कि यही सबसे अच्छा रास्ता है।"

ग़नीमत तो यह है कि गाँधीजी ने ब्रिटेन की जनता को भारतवर्ष की स्थिति से परिचित कराने का जो अटूट परिश्रम किया है, उसके फलस्वरूप यहाँ के लोगों से, खासकर समझदार अंग्रेजों के दिलों से वे ग़लतफ़हमियाँ और गढ़न्तें मिट गई हैं, जो यहाँ अधिकारियों ने फैला रक्खी हैं। और जब कुछ ही दिनों के भीतर यह परिषद् असफलतापूर्वक समाप्त होगी, वहाँ किसी का यह ख़याल न होगा कि इस बाधा के कारण स्वयं प्रतिनिधि लोग ही हैं।

प्रधानमंत्री ने यह दलील पेश करते हुए इस प्रश्न के बारे में कहा है कि संरक्षण के विषयों पर बहस न करने का कारण यह था कि स्वयं संघ-विधायक-समिति की ओर से बहस मुलतवी

रक्खी जाने का प्रस्ताव हुआ था। इस वक्तव्य का विरोध बहुतेरों ने एक-स्वर से किया और फलतः प्रधान-मंत्री को यह स्वीकार करना पड़ा कि वह प्रस्ताव समस्त संघ-विधायक-समिति की ओर से नहीं बल्कि उसके एक भाग की ओर से ही आया था। यदि वास्तव में वह इसी बात पर अड़ जाते (जैसे आज दोपहर को वह अड़े) कि प्रतिनिधियों की राय बहुमति के रूप में नहीं बल्कि सर्व-सम्मति के रूप में आनी चाहिए, तो उन्हें लाज़िम था कि वह इसी प्रकार यह भी कहते कि जबतक सर्व-सम्मति से प्रस्तावित न किया जायगा तबतक विधान-सम्बन्धी प्रश्न स्थगित न किया जायगा। और किसी बात से सरकार की स्थिति के थोथेपन को प्रकट कर देना इतना सम्भव न था, जितना कि आज की घटित कई बातों से हो सका है। और इन बातों में प्रधान-मन्त्री की उपर्युक्त स्वीकृति भी शामिल है।

परन्तु यह बात न तो यहाँ पर है और न वहीं है। वस्तुतः स्थिति यह है कि हम एक महान् विपत्ति के द्वार पर खड़े हुए हैं, जिसके खतरों को सिर्फ वही देख सकते हैं कि जिन्होंने स्वेच्छापूर्वक कष्ट-सहन के द्वारा मुक्ति प्राप्त करने का तरीक़ा अख्त्यार किया है। तथापि, जैसा कि भेंट करने को आये हुए एक सज्जन से कल रात गाँधीजी ने कहा, "यदि गोलमेज-परिषद् विधान-सम्बन्धी मामलों पर असफल हो गई, तो सविनय-अवज्ञा

का फिर से आरम्भ होना अनिवार्य है । इसके सिवा और कोई रास्ता ही नहीं हो सकता । क्योंकि, यदि आज हम इसे नहीं पाते, तो फिर इसका मतलब ही अनिश्चित काल के लिए इसे टाल देना है । परन्तु इसकी प्राप्ति की आशा के लिए बहुत गुंजायश नहीं है, हालांकि मैं यह नहीं कह सकता कि आखिरी वक्त तक किसी-न-किसी हल पर पहुँच जाने की आशा को मैंने सर्वथा त्याग दिया है । और, कम-से-कम मैं तो उस वक्त तक चैन न लूँगा, जबतक कि इसके लिए हर तरह की तदबीर न कर लूँगा ।"

गाँधीजी के भाषण पर जो ग़ौर करेंगे वे रास्ते में जो बाधायें हैं उन्हें अच्छी तरह देख पायेंगे । हमारे आपस में जो वाद-विवाद

महासभा सर्वसाधारण की प्रतिनिधि है

हुए वही काफ़ी प्रत्यक्ष हैं—जैसा कि उन्होंने एक से अधिक बार कहा, हम सब इस सम्बन्ध में मूर्ख ही रहे हैं । किन्तु सरकार ने हमारे अनैक्य के लिए ज़मीन तैयार कर ली और सत्ता छोड़ने के लिए अनिच्छित शक्तिमान दल की सारी चतुराई लगा कर हमारे भेदभावों को बढ़ाने का प्रयत्न किया है । परन्तु महासभा ही वस्तुतः राष्ट्र है, और एक-मात्र बहु-संख्यक वर्ग है, कि जो सरकार के साथ सौदा कर सकता है; इसलिए सरकार को चाहिए था कि वह सब दलों की बातें सुन लेने के बाद उसके साथ बातचीत करती । लेकिन, यह प्रत्यक्ष है कि,

महासभा का जो महत्व है, और समस्त देश की तरफ़ से बोलने का वह जो दावा करती है, उसकी छाप वह सरकार पर नहीं डाल पाई है। "ऐसी हालत में मैं वापस चला जाऊँगा और इससे भी अधिक कष्ट-सहन के प्रभाव द्वारा यह प्रदर्शित करूँगा कि एक-मात्र महासभा ही ऐसी है, जो भारतवर्ष के विस्तृत जन-समूह की प्रतिनिधि है।"

परन्तु, जैसा कि गाँधीजी ने "लन्दन स्कूल ऑफ इकोनामिक्स" (लन्दन का अर्थशास्त्र-विद्यालय) के विद्यार्थियों से कहा था, वास्तविक और अन्तिम अड़चन है—भारत की परिस्थिति के बारे में अंग्रेजों की नितान्त अनभिज्ञता। हम लोगों को अंग्रेज़ लोग एहसानफ़रामोश और ऐसे लोग मानते हैं कि जो उन नेकियों को भुलाये हुए हैं, जो ब्रिटेन ने भारत के साथ की हैं। यह धारणा यहाँ के अधिकारीवर्ग में ही नहीं प्रचलित है, बल्कि उन-में भी है, जो सार्वजनिक विचारों की बागडोर थामे हुए हैं। एक बात और है। बहुत अर्सा गुजरा, स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अंग्रेज़ों के चरित्र का एक विशेष लक्षण बतलाते हुए कहा था, "मुझ से हमेशा अंग्रेज़ों द्वारा यह बात पूछी जाती है कि 'जब कि हिन्दुस्थान में इतनी ज्यादा ग़रीबी है, तो वहाँ दंगे और बलवे क्यों नहीं होते? खिड़कियाँ क्यों नहीं तोड़ी-फोड़ी जाया करतीं?'" आजकल भी अंग्रेज़ों की मनोवृत्ति लगभग वैसी ही बनी हुई है।

उनकी समझ में अहिंसा का तरीक़ा जल्दी नहीं आता। तो फिर इसका अर्थ यह है कि गत वर्ष जो किया गया था, उससे अधिक प्रदर्शन की अब आवश्यकता है। बाहर के हमलों और भीतरी फ़िसादों के ख़तरे इतने बढ़ा-चढ़ाकर और ऐसे सयानेपन से लोगों के दिमाग़ों में जमा दिये गये हैं कि साधारण अंग्रेज़ लोग शुद्ध भावना से यह मानने लग पड़े हैं कि हिन्दुस्थान की रक्षा बिना अंग्रेज़ी बन्दूक के हो ही नहीं सकती। कुछ अंश तक तो यह शासक-जाति के स्वाभाविक अभिमान की बात है—क्योंकि दूसरे राष्ट्र पर हुकूमत चलानेवाली जाति अपने ऊपर कुछ ज़िम्मेवारियाँ और हुक़ूक़ यों ही ओढ़ लेती है और इसके विपरीत शासित जाति को साधारण-से-साधारण स्वत्व भी बरतने नहीं देती। आप प्रत्येक सड़क के आसपास, दीवारों पर, दूकानों के झरोखों पर, रेलगाड़ियों के रास्तों पर और समाचारपत्रों के पृष्ठों पर लिखी या चिपकी हुई अपीलें पढ़ते हैं कि 'केवल इंग्लैण्ड की बनी हुई चीज़ का इस्तेमाल कीजिए, बाहर का कोई भी माल न ख़रीदिए।' परन्तु हिन्दुस्थान में इसी बात को कहना—सिर्फ़ देशी चीज़ें ख़रीदने की अपील करना—ख़तरनाक और विद्रोहात्मक माना जाता है! एक विदुषी महिला तो—जो कि एक सुशिक्षित एवं घटनाओं से सुपरिचित व्यक्तियों की सभा में बैठी थीं—गंभीरता से पूछ उठीं कि जो राष्ट्र आपस में ही झगड़ रहा

हो, क्या उसे स्वतंत्रता के बारे में सोचने तक का भी न्यायोचित अधिकार है ? लोगों की आम चिल्लाहट यही है कि "तुम लोग पहले स्वतन्त्र होने की योग्यता तो प्राप्त करो !"

परन्तु मैं यहाँ शासक जाति की पहले से बनी हुई धारणाओं और उसके अज्ञान के सब पहलुओं पर, चाहे वे वास्तविकताओं से सम्बन्ध रखते हों या इतिहास से, बहस करने के लिए तैयार नहीं हूँ । ये बातें तो उन लोगों के लिए अनिवार्य हैं, जो अपनेको विजयी जाति ठहराते हैं । परन्तु जिसके पैर में काँटा चुभता है वही पराई पीर जान सकता है । श्री जे. दवलीन महाशय ने, जो कि एक आइरिश देशभक्त हैं, एक सभा में, जिसमें कि गाँधीजी का खानगी भाषण हो रहा था, स्वातंत्र्य-प्रेमी के नाते इन खरे शब्दों में अपना मत प्रकट किया था, "आप हमसे भारतीय परिस्थितियों को समझने के लिए कह रहे हैं; परन्तु दरअसल बात यह है कि किसी भी राष्ट्र के स्वातंत्र्य-स्वत्व को स्वीकार करने के लिए किसी अध्ययन की आवश्यकता नहीं है । वह तो उस देश या राष्ट्र का जन्मसिद्ध अधिकार है ।" गाँधीजी ने इस मत में फ़क़त एक बात और जोड़ दी है, वह यह कि यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार ही नहीं है, बल्कि हमने इसे आत्मत्याग के बल पर कमाया भी है ।

जन्मसिद्ध अधिकार

परन्तु प्रत्यक्षतः बात ऐसी मालूम होती है कि स्वेच्छापूर्वक किये गये आत्मबलिदान के रूप में इसकी शिक्षा की आवश्यकता अभी इंग्लैण्ड की जनता को बनी हुई है। गाँधीजी अभी तक कुछ हज़ार अंग्रेज़ों से मिल चुके हैं और वह अनेक बार उनके कानों में यह डाल चुके हैं कि अंग्रेज़ लोगों के इरादे चाहे जितने साफ़ क्यों न हों, लेकिन अंग्रेज़ी हुकूमत से हिन्दुस्थान को नुक़सान ही पहुँचा है और हम उससे अपना पिंड छुड़ाना चाहते हैं। यह शिक्षा बेअसर साबित हुई हो सो बात नहीं है, लेकिन उसकी जो रफ्तार है वह धीमी है और इतनी धीमी है कि भयप्रद है; क्योंकि हिन्दुस्थान के लोग सर्वत्र बे-मौत मर रहे हैं, यातनायें भोग-भोग कर पामाल हो रहे हैं। यह बात बंगाल, संयुक्तप्रान्त और बारडोली की रिपोर्टों से साफ़ साबित हो रही है। इसी वजह से गाँधीजी ने कई सभामंचों से इस बात को दुहराया है कि दस-बारह लाख मनुष्यों का स्वाहा करना करोड़ों की उपर्युक्त प्रकार की मौत से अधिक बेहतर है, उनकी मुक्ति के बारे में निरन्तर सोचे बिना मेरा जीना दुश्वार है। अन्तर केवल इतना है कि हम लोग अपने प्रतिद्वन्द्वियों के रक्त से अपनी अंगुलियाँ कलुषित न करेंगे और हम असत्य का सहारा न लेंगे। हम लोगों ने तो सब आशाओं को तिलाञ्जलि दे दी है। हम तो अपनी पीठ दीवार की ओर करके लड़ रहे हैं और जबतक कि

भारतीय ग्राम-निवासियों के लिए जीवन-संचारिणी स्वतन्त्रता प्राप्त न हो जायगी तबतक हमें चैन न होगा।

[१०]

गोलमेज़-परिषद् को सब तरह की उपमाओं का शिकार होना पड़ा। कुछ लोगों ने उसे उस मुर्दे की उपमा दी थी, जिसे प्राण-प्रद वायु देकर जीवित करने का प्रयत्न किया जाता हो। कुछ ने उसे डूबे हुए मनुष्य को निकाल कर कृत्रिम श्वासोच्छ्वास द्वारा सजीव करने के समान बताया था। कुछ ने तो यहाँ तक ख़याल किया था कि परिषद् मर चुकी है, और प्रधान-मन्त्री तथा लार्ड चान्सलर इस बात की फ़िक्र में हैं कि उसकी अन्त्येष्टि क्रिया किस प्रकार की जाय।

निरुद्देश्य गोलमेज़

किन्तु मेरा ख़याल है कि यह कहना ही सबसे अधिक ठीक है कि अबतक के इतने सप्ताहों तक जानबूझ कर आवश्यकीय बातों की ओर से आँखें बन्द किये रखने के बाद अब अन्तिम घड़ी में परिषद् के संचालकों का ध्यान उनकी ओर गया है। किसी-न-किसी बहाने से उन्होंने मध्यविन्दु अर्थात् मुख्य बात पर आने की किसी भी इच्छा के बिना इधर-उधर चक्कर काटना ही पसन्द किया। श्री वेजवुड बेन के शब्दों में "प्रश्न के मध्यविन्दु पर आये बिना ही हम लोग संघ-विधायक-समिति की अन्तिम बैठक

में आ पहुँचे हैं।" अथवा, जैसा कि श्री बेल्सफोर्ड ने अधिक स्पष्ट शब्दों में कहा था—"गौण बातों पर उकता देनेवाली सम्पूर्णता के साथ बहस की जाने दी गई। इस बात पर सब सहमत हो गये कि व्यवस्थापिका सभा के उच्च विभाग में एक सौ और निम्न विभाग में दो सौ सदस्य रक्खे जायँ। किन्तु तीन सौ सदस्यों की यह व्यवस्थापिका सभा पार्लमेंट होगी अथवा वाद-विवाद सभा, यह अभीतक शङ्कास्पद ही है; क्योंकि कोई भी इस बात को नहीं जानता कि राजस्व, सेना अथवा वैदेशिक नीति के विषय में वे हस्तक्षेप कर सकेंगे अथवा नहीं, और यदि कर सकेंगे तो कब और किस हद तक।"

गाँधीजी ने तो संघ विधायक-समिति के अपने सर्वप्रथम भाषण में ही इस बात की चेतावनी दे दी थी और उसके बाद भिन्न-भिन्न कई अवसरों पर आवश्यक बातों की ओर परिषद् का ध्यान खींचने का प्रयत्न किया और छोटी-मोटी तफ़सील की चर्चा में भाग लेने से इनकार कर दिया था। अल्प-संख्यकों के प्रतिनिधित्व का दावा करनेवाले कुछ प्रतिनिधियों और मुसलमान प्रतिनिधियों की अनुचित गुटबन्दी तथा अल्पसंख्यक समिति में प्रधान मन्त्री के भाषण से तो इस बाल की खाल निकालने की नीति की हद हो गई और इसलिए गाँधीजी के लिए तो सब बातों को खोल देनेवाले और सच्चे भावनायुक्त भाषण-द्वारा

सबको कोड़े लगा कर अपने कर्तव्य के प्रति जागृत करने के सिवा दूसरा कोई उपाय ही न था। परिषद् बुलानेवालों ने देखा कि यदि हम मौलिक विषयों पर प्रतिनिधियों के मत जाने बिना ही उन्हें भारत वापस भेज देंगे तो इससे हम अपने आपको सर्वथा ग़लत परिस्थिति में डाल लेंगे। श्री वेजवुड बेन के भाषण का उद्धरण तो मैं अभी दे ही चुका हूँ। श्री ली स्मिथ ने उनका समर्थन किया और अंग्रेजों की ओर से कदाचित् पहली ही बार परिषद् को याद दिलाया कि गाँधीजी और लार्ड इर्विन के बीच हुए समझौते के अनुसार संरक्षणों के सम्बन्ध की चर्चा आवश्यक हो गई है। श्री बेन ने इस सुन्दर वाक्य में कहा—"क्या यह एक ऐसी बात है, जो कि एक हाथ में ब्रेड शा (टाइमटेबल अर्थात् समय-सूची) और दूसरे हाथ में घड़ी रख कर समाप्त की जा सके?" अनिच्छापूर्वक ही क्यों न हो, प्रधानमन्त्री, लार्ड सैङ्की तथा मुसलमानों को भी इसपर विचार करना पड़ा और नतीजा यह हुआ कि अन्त में जिस बात से भारत के करोड़ों मूक-प्राणियों का सम्बन्ध है, अब हम उसकी चर्चा के मध्य में हैं। इससे यह कहा जा सकता है कि परिषद् को अन्त में आवश्यकीय बातों का ध्यान हुआ है और दिन-प्रति-दिन जो भाषण हो रहे हैं उनका प्रधानमन्त्री की भावी घोषणा पर कुछ वास्तविक असर हो या न हो, कम-से कम उनसे यह लाभ अवश्य होगा कि ब्रिटिश

सरकार के सामने जनता की माँग जितनी भी सम्भव हो सके उतनी स्पष्टता के साथ आ जायगी।

संघ-विधायक-समिति में अपने दो [illegible] भाषणों द्वारा गाँधीजी ने लोगों की आँखें खोलीं। उन्होंने इतनी स्पष्टता के

मूल विषय

साथ, जितनी पहले किसीने नहीं की थी, यह बात साफ़ कर दी थी, कि प्रत्येक बात इस मूल विषय पर निर्भर है कि ब्रिटेन ने भारत पर जो क़ब्ज़ा किया, आज जो वह उसे अपनी अधीनता में रख रहा है, और आगे जो वह उसपर अपना क़ब्ज़ा बनाये रखना चाहता है, वह उचित है या नहीं ? और महासभा की ओर से इस तत्त्व को रखने के बाद कि ब्रिटेन ने भारत पर जो क़ब्ज़ा किया, आज जो वह उसे अपनी अधीनता में रख रहा है, और आगे भी जो वह उस-पर अपना क़ब्ज़ा बनाये रखना चाहता है, वह अनुचित है, यह बात जोर से कहने में उन्हें कुछ भी कठिनाई नहीं है कि 'यदि सारी सेना हमारे अधिकार में न आती हो तो उसे तोड़ देना चाहिए।' सच बात तो यह है कि हमें अपनी सत्ता सौंपने की ब्रिटेन की सच्ची नीयत ही नहीं है, और हममें से भी कुछ लोग सत्ता एवं अधिकार-सूत्र प्राप्त करने और भारत के पददलित और करोड़ों मूक जनता के हित में ही उसका सर्वथा उपयोग करने के लिए तैयार नहीं हैं। दोनों ओर के भाषणों, साथ ही

लार्ड सैंकी के इस प्रश्न का कि 'क्या भारत चाहता है कि ब्रिटिश सेना वापस खींच ली जाय ?' सर तेज बहादुर सप्रू तथा श्री शास्त्रीजी के श्रद्धाहीन भाषणों तथा व्यापारिक भेद-भाव की नीति पर हुए गाँधीजी के भाषण से हमारे ही दलों में जो खलभलाहट पैदा हो गई थी, उसका इस बात से खुलासा हो जाता है। क्योंकि इस भाषण में गाँधी जी केवल व्यापार में भेद करने की नीति पर ही नहीं बोले थे, वरन् उन्होंने प्रजा द्वारा और प्रजा के लिए ही शासित उस भारत का चित्र सामने खड़ा कर दिया, जो कि केवल विदेशियों की लूट से ही स्वतन्त्र न होगा बल्कि देश के पूँजीपतियों और ज़मींदारों और बौद्धिक तथा सामाजिक निरंकुश अमीर-उमरावों की लूट से भी, जो कि अभी तक विदेशियों की ही तरह ग़रीबों की गाढ़े पसीने की कमाई पर ही ज़िन्दा रहते आये हैं, मुक्त होगा। इसीलिए उनके इस भाषण को 'बोलशेविक भाषण' का नाम दिया गया। किन्तु महासभा की अहिंसा की नीति उसको दूसरे किसी भी मार्ग से पृथक् कर देती है। साथ ही गाँधीजी ने परिषद् के सामने यह बात छिपी न रक्खी कि कोई भी स्वार्थ जो न्यायपूर्वक प्राप्त न किया गया होगा, अथवा जो राष्ट्र के सर्वोत्तम हित के विरुद्ध होगा, उसे न्याय की दृष्टि से विचार किये जाने और तदनुकूल निर्णय के ख़तरे में पड़ना होगा। इसी-लिए 'डेली मेल' ने आज यह पोस्टर अथवा विज्ञापन प्रकाशित

किया है—" गाँधीजी को घर वापस भेज दो । "

आज एक प्रमुख सार्वजनिक व्यक्ति के पुत्र ने गाँधीजी से पूछा—"तब भारत के भविष्य में क्या है ? क्या परिषद् का असफल होना निश्चित है ?" उत्तर में गाँधीजी ने कहा—"ऐसा कहना कृतघ्नता होगी । किन्तु मुझे सफलता की आशा बहुत कम है ।" फिर पूछा गया—"क्या आप नहीं समझते कि सरकार ने इस विषय पर चर्चा करने दी, इसलिए वह अब कुछ करेगी ? क्या सरकार में परिवर्तन हो जाने से कुछ अन्तर पड़ेगा ?" गाँधीजी ने तुरन्त ही बिना किसी सङ्कोच के स्थिति का सार बताते और दोनों ही प्रश्नों का एकसाथ जवाब देते हुए कहा—"अवश्य ही मैंने तो उससे अधिक अच्छाई की आशा की थी; किन्तु मुझे यह प्रतीत नहीं होता कि उसने सत्ता हमारे हाथ में सौंप देने का निश्चय कर लिया है । रहा दोनों दलों (मजदूर और अनुदार) के सम्बन्ध में, सो मेरा खयाल है कि भारत के लिए तो दोनों में इतना ही अन्तर है जितना कि 'आधा दर्जन और छः कहने में ।' सच पूछा जाय तो मुझे इस बात की खुशी है कि अनुदार दल की इतनी अधिक बहुमति के साथ मुझे निपटना है । क्योंकि मैं यहाँ से कुछ चुरा कर नहीं ले जाना चाहता, मुझे तो इतनी बड़ी और अच्छी बात चाहिए, जिसे ग़रीब आदमी आसानी से देख और समझ सकें, और इसलिए यह अच्छा है कि मुझे एक मज़-

बूत दल के साथ लड़ना है और जो मैं चाहता हूँ वह उस मज़-बूत दल से जीत लेना है। मुझे तो स्थायी चीज चाहिए। मुझे सम्बन्ध तोड़ना नहीं उसे बदल देना है। भारत और इंग्लैण्ड के बीच समान साझेदारी का सम्बन्ध तभी टिक सकता है, जब कि प्रत्येक पक्ष कमजोरी के कारण नहीं, बल्कि अपनी शक्ति का ज्ञान रखकर दोनों का हित साधन करे। और इसलिए मैं यह अनुभव करना पसन्द करूँगा कि अनुदार दल के शासनकाल में हम अनु-दार मतवादियों को यह समझा सकें कि न तो हम अयोग्य प्रति-पक्षी हैं, न अयोग्य साझेदार।"

किन्तु जैसा कि मैं हाल ही में कह चुका हूँ, मूल तत्त्व का ही प्रश्न विकट है। और अंग्रेज जनता की ओर से 'डेलीमेल' उसे इस प्रकार रखता है—"भारत के बिना ब्रिटिश राष्ट्रसंघ के टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे। व्यापारिक, आर्थिक राजनैतिक और भौ-गोलिक दृष्टि से यह हमारे साम्राज्य की सबसे बड़ी सम्पत्ति है। किसी भी अंग्रेज के लिए, इसपर के अधिकार को खतरे में डालना, बड़े-से-बड़े राजद्रोह का पाप करना होगा।"

श्री लायर्ड जार्ज ने गाँधीजी को अपने यहाँ चर्ट में निमंत्रित

श्री लायड जार्ज

करने का सौजन्य बताया था। गाँधीजी को लाने और ले जाने के लिए उन्होंने अपनी मोटर भेजी और उनके साथ अपनी तीन घण्टे की मुलाक़ात

में अत्यन्त मधुरता और सर्वथा निष्कपटता के साथ बातचीत की। स्त्रियों की विभिन्न संस्थाओं की ओर से गाँधीजी से भाषण के लिए प्रार्थनायें आई थीं, किन्तु मिस एगेथा हेरिसन ने उन सबको 'स्त्री-भारत-समाज' के अन्तर्गत एक जगह इकट्ठा कर गाँधीजी को एक संयुक्त स्त्री-सभा में बोलने के लिए मार्ले-कालेज-भवन में निमन्त्रित किया। इस सभा में गाँधीजी ने भारतीय स्त्रियों के सम्बन्ध में प्रचलित अनेक बेहूदी धारणाओं को दूर करने का अवसर साधा और गत सत्याग्रह-संग्राम में उन्होंने जिस बहादुरी से भाग लिया उसका तादृश चित्र उपस्थित किया। उन्होंने कहा, "कई तरह से वे कदाचित् आपसे कहीं अधिक उच्च हैं। आपको अपना मताधिकार प्राप्त करने में अनेक अवर्णनीय कष्टों का सामना करना पड़ा था। भारत में वह स्त्रियों को माँगते ही मिल गया। उनके सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने के मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट नहीं आई और स्त्रियाँ केवल महासभा की अध्यक्षा ही नहीं हुई हैं, प्रत्युत् श्रीमती सरोजिनी नायडू उसकी कार्यसमिति की सदस्या तक हैं। कई वर्षों से और गत सत्याग्रह-संग्राम में जब हमारी समितियाँ ग़ैरक़ानूनी घोषित कर दी गई और उनके ज़िम्मेदार कार्यकर्त्ता जेल में भेज दिये गये, तब हमारी स्त्रियाँ ही थीं, जो मोर्चे पर सामने आईं, उन्होंने डिक्टेटरों—सर्वाधिकार-

भारतीय स्त्रियाँ

युक्त अध्यक्षों—का स्थान लिया और जेलें भरदीं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि पुरुषों के हाथों उन्हें कष्ट-सहन न करना पड़ा हो। उन्हें भी कड़ुवी घूँटें पीनी पड़ी हैं। किन्तु मैं आपको बिना किसी हिचकिचाहट के कहना चाहता हूँ कि मिस मेयो की भारत-सम्बन्धी पुस्तक में आपने जो कुछ पढ़ा है, उसका ९९ प्रति शत झूठ है। मैंने इस पुस्तक का एक-एक पृष्ठ पढ़ा है और उसे समाप्त करते ही मेरे मुँह से सहसा निकल पड़ा कि यह तो सर्वथा एक गन्दी नालियों के इन्सपेक्टर की रिपोर्ट है। मिस मेयो की कथित कुछ बातें सच हैं; किन्तु यह कहना कि वे बातें सर्व-साधारण में आम तौर पर प्रचलित हैं, सर्वथा झूठ है; और पुस्तक की कुछ बातें तो उसने केवल अपनी कल्पना से ही घड़ ली हैं।"

इसके बाद गाँधीजी ने बतलाया कि किस प्रकार गत वर्ष स्त्रियों के झुण्ड-के-झुण्ड घर से बाहर निकल आये और उन्होंने अपूर्व एवं आश्चर्यजनक जागृति का परिचय दिया। उन्होंने जुलूसों में भाग लिया, क़ानून तोड़े, अंगुली तक उठाये बिना और पुलिस को बिना कुछ अपशब्द कहे लाठियों के प्रहार सहे, और अपनी विनयशक्ति का उपयोग कर शराबियों से शराब और विदेशी वस्त्र के व्यापारियों तथा ग्राहकों से विदेशी वस्त्र बेचना और खरीदना छुड़वाने में सफलता प्राप्त की। वह स्त्री सरोजिनी नायडू की तरह सुशिक्षिता नहीं, सर्वथा निरक्षर थी, जिसने अपने सिर

पर लाठी के प्रहार सहन किये और रक्त की धारा बहते रहने पर भी अविचल भाव से डटी रह कर अपने साथ की बहनों को अपने स्थान से न हटने का आदेश देती रही और इस प्रकार बोरसद जैसे छोटे-से गाँव को थर्मापोली बना दिया। गत वर्ष की विजय का मुख्य श्रेय इन्हीं स्त्रियों को है।

प्रश्नों के लिए बहुत कम समय रह गया था। किन्तु जो एक-दो प्रश्न पूछे गये, उनसे पता चलता था कि ये बहनें गोलमेज़-परिषद् के काम को कितनी आतुरता से देख रही हैं। गाँधीजी ने उनसे कहा, "अब भी समय है कि ये दोनों देश संसार के कल्याण के लिए परस्पर समानता की शर्त पर संयुक्त रह सकते हैं। यह मेरी आत्मा के लिए सन्तोषप्रद न होगा कि भारत के लिए स्वतन्त्रता तो प्राप्त करली जाय और संसार की शान्ति में सहायता न दी जाय। मेरा विश्वास है कि जिस समय इंग्लैण्ड भारत को अपना शिकार बनाना छोड़ देगा, उस समय वह दूसरे देशों का शिकार भी बन्द कर देगा। कुछ भी हो, भारत तो इस रक्तशोषण के अपराध में भाग नहीं लेगा।"

[११]

पिछले कुछ दिनों में गाँधीजी लन्दन अथवा अन्य स्थान की

विविध वार्त्ता

सभाओं में इस समय के प्रायः सभी निर्णायक प्रश्नों पर अपने विचार प्रकट कर चुके हैं। प्रश्नों के उत्तर के रूप में उन्होंने जो-कुछ कहा है, वह सब मैं उन्हींके शब्दों में यहाँ दे देना चाहता हूँ।

उनसे पूछा गया—क्या आप अपने बजट को बराबर करने के लिए नमक पर टैक्स न लगाते ? क्या आप संघ को कुछ वस्तुओं पर, जिनमें नमक भी शामिल है, टैक्स लगाने की अमर्यादित सत्ता दिये जाने से सहमत न होंगे ?

गाँधीजी ने जवाब दिया—संघ-शासन को नमक पर कर लगाने का कोई हक नहीं होगा। जबतक मैं ग़रीबों पर टैक्स लगाने का पाप न करूँ, मैं नमक पर कर लगाकर बजट को बराबर करने की कल्पना तक नहीं कर सकता। यदि आप बजट को बराबर करना चाहते हैं तो सैनिक व्यय को कम क्यों नहीं करते ? पहले से ही अत्यधिक कर के बोझ से दबे हुए ग़रीब भारतीय करदाताओं पर और कर लगाना मानवता के विरुद्ध अपराध करना होगा। आप चाहें तो हवा और पानी पर भी टैक्स लगाकर भारत के ज़िन्दा रहने की कल्पना कर सकते हैं।

\+ \+ \+

गाँधीजी को जितना दुःख इंग्लैण्ड में भारत के सम्बन्ध में

फैले हुए अज्ञान से होता है, उतना और किसी बात से नहीं होता। इंग्लैण्ड के सब भागों से एकत्र, और अनेक संस्थाओं और वर्गों के प्रतिनिधि अंग्रेज पुरुषों और स्त्रियों के, एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सम्मेलन में बोलते हुए उन्होंने कहा—"वह कौन है, जो यह कहता है कि आपने भारत का भला किया है? हम या आप? हल की नोक से दबनेवाला मेंढक ही जानता है कि नोक कहाँ चुभ रही है। क्या आप जानते हैं कि दादाभाई नवरोजी, फ़ीरोजशाह मेहता, रानाडे, गोखले जैसे व्यक्ति, जो आपपर फ़िदा थे और ब्रिटिश सम्बन्ध तथा आपकी सभ्यता द्वारा होनेवाले लाभों के लिए गर्वित थे, वे सब इस बात के कहने में सहमत थे कि सब मिल कर आपने भारत को हानि ही पहुँचाई है? आप जब जायँगे, हमें दरिद्रताग्रस्त और नपुंसक बने हुए छोड़ कर जायँगे; और जो लोग आपसे प्रेम करते रहे हैं, उनकी परछाहीं आपसे पूछेगी—'शिक्षा के इन वर्षों में आपने क्या किया है?' आपको यह बात समझ लेनी चाहिए कि आपके वेतन की दर से हम चौकीदार नहीं रख सकते; क्योंकि आप चौकीदारों से बढ़ कर नहीं हैं, और जिस राष्ट्र की औसत आमदनी दो आने रोज प्रति व्यक्ति हो, वह इतनी तनख्वाह नहीं दे सकता। मैं बार-बार इस बात को नहीं दुहराना चाहता कि जब कि आपके प्रधान-मंत्री का वेतन आपकी औसत आमदनी का ५० गुना है, भारत का

वाइसराय एक भारतीय की औसत आमदनी का ५,००० गुना लेता है। आप कहते हैं कि हम एक दुर्बल जाति हैं। ठीक है, लेकिन हमारा दिल बड़ा मजबूत है। श्रीमती सरोजिनी नायडू का दूसरा या तीसरा संस्करण नहीं, प्रत्युत् अक्षरज्ञान तक से अपरिचित और अशिक्षित दुबली-पतली भारतीय स्त्रियों तक ने छाती आगे कर लाठियों के प्रहार सहे हैं। आपके मत से हम शासन-कार्य में प्रवीण नहीं हैं। ठीक है, किन्तु क्या सर हेनरी केम्पबेल बेनरमैन ने यह नहीं कहा कि सुशासन स्वशासन अथवा स्वराज्य का स्थानापन्न नहीं है ? क्या आप, जो कि भूलें या गलतियाँ करने में सिद्धहस्त हैं, आप जो कि लार्ड सेलिस्बरी के शब्दों में भूलों के ज़रिये सफलता प्राप्त करना जानते हैं, हमें भूलें करने की स्वतन्त्रता न देंगे ? हम विदेशी अंकुश से पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते हैं। असंख्य पुरुष और स्त्रियों की आत्मा में, जो विदेशी नियन्त्रण से उकता गये हैं, लोहा घर कर चुका है। हम यह स्वतन्त्रता यदि आप चाहें तो आपकी सहायता से, अन्यथा उसके बिना ही, प्राप्त करने के लिए उतावले हो रहे हैं।

"और अल्प-संख्यकों के प्रश्न के इस हौवे का क्या अर्थ है ? मैं

सेवा की कसौटी

अपने जीवन भर इसे नहीं समझ सकता। आप महासभा को अनेक संस्थाओं में से एक अथवा सबसे बड़ी संस्था मानते हैं। किन्तु मैं आपसे कहता

हूँ कि महासभा न केवल सबसे बड़ी संस्था है वरन् केवल वही सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्रधान संस्था है, जो स्वतन्त्रता के लिए लड़ी है। इस महासभा की पुकार पर ही सैकड़ों गाँववालों ने प्रायः अपनी हस्ती तक को मिटा दिया, हज़ारों रुपये की फ़सल जला दी गई या कौड़ियों के मोल बेच दी गई और लाखों रुपये के मूल्य की ज़मीन ज़ब्त करली गई और बेच दी गई। क्या आप समझते हैं कि ये सब आपदायें हमने केवल टुकड़ों के ही लिए सही हैं? कहा जाता है कि महासभा एक हिन्दू-संस्था है। क्या आप समझते हैं कि गत वर्ष जो लोग लड़े, जेल गये और मरे वे सब हिन्दू थे? उनमें कई हजार मुसलमान थे, और बहुत से सिख, ईसाई, पारसी और अन्य सब लोग थे। बहु-संख्यक अथवा अल्प-संख्यक जातियों की बात न कहिए। अकेली महासभा ही सबसे बड़ी बहु-संख्यक जाति है। आप हमसे अल्प-संख्यक जातियों के दावों का सम्मान करने के लिए कहते हैं। क्या आप चाहते हैं कि महासभा एंग्लो-इण्डियन और भारतीय ईसाइयों के लिए, और फिर मैं समझता हूँ, उनमें प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिक सम्प्रदायों के लिए, और अंग्रेज़ों के लिए और उनमें भी प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिकों के लिए, और हिन्दुओं में जैन, बौद्ध, सनातनी, आर्यसमाजी आदि जितनी उपजातियों में बाँटना चाहें, उनके लिए, भारत के टुकड़े-टुकड़े कर डाले? कम-से-कम-

मैं तो अंग-विच्छेद के इस हृदयहीन कार्य में सम्मिलित न होऊँगा। क्या आप इसी तरह फूट डाल कर शासन करने की अपनी नीति से भारत को एक राष्ट्र बनाना चाहते हैं ? छोटी अल्प-संख्यक जातियों को पूर्ण नागरिक अधिकार माँगने का पूरा हक़ है। किन्तु इसके लिए उन्हें पृथक् प्रतिनिधित्व के लिए उत्साहित न कीजिए। वे कौंसिलों में चुनाव के खुले हुए द्वार से प्रवेश कर सकते हैं। एंग्लो-इण्डियनों को अपने हितों के भुला दिये जाने का डर क्यों है ? क्या इसलिए कि वे एंग्लोइण्डियन हैं ? नहीं, उनका डर इसलिए है कि उन्होंने भारत की कुछ सेवा नहीं की है। उन्हें पारसियों के उदाहरण का अनुकरण करना चाहिए, जिन्होंने भारत की सेवा की है और जो पृथक् निर्वाचन की माँग न करेंगे और यह इसलिए क्योंकि वे जानते हैं कि वे केवल अपनी सेवा के अधिकार से ही कौंसिलों में पहुँच जायँगे। दादाभाई नवरोजी का सारा जीवन भारत की सेवा में बीता और किसी भी अंग्रेज़ लड़की की तरह शिक्षित और सुसंस्कृत उनकी चारों पोतियाँ किसानों के लिए गुलामों की तरह काम कर रही । उनमें से एक एक प्रान्त की डिक्टेटर थीं, और जब वह प्रान्तीय कौंसिल के लिए खड़ी हुईं, तो उन्हें सबसे अधिक मत मिले। इस समय वह सरहद के पठानों में चरखे का सन्देश फैला कर उनके हृदयों पर अधिकार कर रही

हैं। इसी तरह एंग्लोइण्डियनों को भी सेवा के राजमार्ग द्वारा कौंसिलों में प्रवेश करना चाहिए। यही बात अंग्रेज़ों के सम्बन्ध में है। क्या यह लज्जा की बात नहीं है कि जिस देश को अंग्रेज़ों ने दरिद्र बनाया है, वे वहाँ अब भी रिआयत चाहते हैं और दरिद्र देश की कौंसिल के लिए पृथक् निर्वाचन का दावा करते हैं? नहीं, मैं इन दलों के लिए भारत के टुकड़े-टुकड़े करने का गुनाह हर्गिज़ नहीं कर सकता। यह सारे राष्ट्र का अङ्ग-विच्छेद अथवा टुकड़े-टुकड़े करने के सिवा और कुछ न होगा।"

श्रीमती सरोजिनी नायडू ने, जो लोकप्रसिद्ध प्राचीन रोम की स्त्रियों के समान किञ्चित मल्लयुद्ध में अनुराग तथा बच्चों के ऊपर अभिमान करती हैं, एक दिन भारतीय नवयुवक साम्यवादियों के दल को गाँधीजी से परिचित कराया। लगभग ये सब नवयुवक अपनी मातृभूमि से निर्वासित और उत्कट शोधक-वृत्ति वाले थे। उन्होंने एक भीषण प्रश्नावलि, जिसको वे कुछ दिन पहले छोड़ गये थे, गाँधीजी से पूछी। कुछ प्रश्न और गाँधीजी के उत्तर यहाँ दिये जाते हैं।

प्र०—"किस रीति से भारतीय नरेश, ज़मींदार, मिल मालिक, साहूकार और दूसरे नफ़ाख़ोर धनी हो जाते हैं, यह ठीक-ठीक बताइए।"

उ०—"वर्तमान काल में सर्वसाधारण को लूट कर।"

प्र०—"क्या ये वर्ग भारतीय मज़दूरों और किसानों को बिना लूटे धनवान हो सकते हैं ?"

उ०—"हाँ, किसी अंश तक।"

प्र०—"क्या इन वर्गों को साधारण मज़दूरों और किसानों से अधिक आराम से रहने का कोई सामाजिक अधिकार है, जब कि उनके श्रम से धनी मालदार होते हैं ?"

उ०—"कोई भी अधिकार नहीं है। मेरा विचार समाज के विषय में यह है कि यद्यपि जन्म से हमें सबके समान अधिकार हैं, अर्थात् हमें सबको समान अवसर मिलने के अधिकार हैं, पर सबकी एकसी योग्यता नहीं होती। यह बात स्वभावतः असंभव है। जैसे सबकी ऊँचाई, रंग आदि एक-से नहीं होते। इस कारण स्वभावतः कुछ में कमाने की योग्यता अधिक और कुछ में कम होगी। बुद्धिमान मनुष्य अधिक कमा सकेंगे और इसके लिए वे अपनी बुद्धि काम में लायेंगे। यदि वे अपनी बुद्धि का सदिच्छापूर्वक उपयोग करेंगे तो वे राष्ट्र की सेवा करेंगे। वे अपनी कमाई बतौर संरक्षक के ही रख सकेंगे। हो सकता है कि इसमें मुझे बिलकुल सफलता न मिले। परन्तु मैं तो इसीके लिए प्रयत्न कर रहा हूँ और मौलिक अधिकारों के घोषणा-पत्र में भी यही बात समाविष्ट है।"

समाज

प्र०—"क्या आप यह नहीं मानते कि अपनी आर्थिक और

सामाजिक मुक्ति के लिए किसानों और मज़दूरों का वर्ग-युद्ध जारी करना न्यायसंगत है, जिससे कि वे हमेशा के लिए समाज के परोपजीवी वर्गों को सहायता पहुँचाने के बोझ से मुक्त हो सकते हैं ?"

उ०—"नहीं। उनकी तरफ से मैं स्वयं एक क्रान्ति कर रहा हूँ। हाँ, वह है अहिन्सात्मक क्रान्ति।"

प्र०—"युक्तप्रान्त में भूमिकर कम कराने के अपने आन्दोलन के द्वारा आप किसानों की स्थिति में कुछ सुधार भले ही करें, पर उस पद्धति के मूल पर आप आघात नहीं करते ?"

उ०—"हाँ। किन्तु सभी बातें एकसाथ हो भी तो नहीं सकतीं।"

प्र०—"तब आप उनमें संरक्षकता का भाव कैसे पैदा करेंगे? क्या उन्हें समझा-बुझा कर ?'

उ०—"कोरे शब्दों से समझा कर नहीं, बल्कि एकाग्र होकर अपने साधनों का व्यवहार करूँगा। कई लोगों ने मुझे अपने समय का सबसे बड़ा क्रान्तिकारी कहा है। सम्भव है कि ऐसा न हो, किन्तु मैं स्वयं भी अपनेको क्रान्तिकारी मानता हूँ—अहिन्सात्मक क्रान्तिकारी। असहयोग मेरा साधन है। और तबतक कोई भी व्यक्ति धन-संग्रह नहीं कर सकता, जबतक कि उसे तत्सम्बन्धी व्यक्तियों का स्वेच्छापूर्ण या बलात् सहयोग न प्राप्त हो।"

प्र०—"पूँजीपतियों को संरक्षक बनाया किसने ? उन्हें कमीशन लेने का क्या हक़ है ? और आप वह कमीशन कैसे निश्चित करेंगे ?"

उ०—"उन्हें कमीशन लेने का हक़ है, क्योंकि पूँजी उनके क़ब्ज़े में है। उन्हें संरक्षक किसी ने नहीं बनाया है। मैं उनसे संरक्षक बनने को कह रहा हूँ। आज जो अपनेको सम्पत्ति का मालिक मानते हैं, मैं उनसे कहता हूँ कि वे सम्पत्ति के संरक्षक बनें, अर्थात् अपने खुद के हक़ से नहीं, किन्तु जिनको चूस कर उन्होंने धन-संग्रह किया है उसके हक़ से उसके मालिक बनें। मैं उनसे यह नहीं कहूँगा कि वे कितना कमीशन लें, किन्तु जो उचित हो वही उन्हें लेना चाहिए। मिसाल के तौर पर जिस आदमी के पास १००) होंगे उससे मैं कहूँगा कि वह ५०) खुद रखकर बाक़ी के ५०) मज़दूरों को दे दे। परन्तु जिसके पास एक करोड़ रुपया होगा उससे शायद मैं सिर्फ १ फी सैकड़ा ही अपने लिए लेने को कहूँगा। इस प्रकार आप देखेंगे कि कमीशन की मेरी दर निश्चित नहीं होगी, क्योंकि उसका परिणाम तो घोर अन्याय होगा।

सुविधाप्राप्त वर्ग

"आमलोग (सर्वसाधारण) तो, ज़मींदारों और अन्य मुनाफ़ेदारों को आज भी अपना शत्रु नहीं मानते। परन्तु इन वर्गों ने उनके साथ जो अन्याय किया है उसका भान उनमें जागृत करना होगा। मैं आम

लोगों को यह नहीं सिखाता कि वे पूँजीपतियों को अपना शत्रु मानें, किन्तु मैं तो उन्हें यह सिखाता हूँ कि वे खुद ही अपने शत्रु हैं। असहयोगियों ने लोगों से यह कभी नहीं कहा कि अंग्रेज़ या जनरल डायर ख़राब हैं, किन्तु यह कहा था कि वे उस पद्धति के शिकार हुए कि जो बुरी है। अतः नाश उस पद्धति का होना चाहिए, न कि व्यक्ति का। और यही कारण है, जो स्वतंत्रता की अग्नि से प्रज्वलित जनता के बीच में अंग्रेज अफ़सर ऐसी निर्भयता के साथ रह सकते हैं।"

प्र०—"अगर आप पद्धति पर ही हमला करना चाहते हैं, तो फिर भारतीय और अंग्रेज़ पूँजीपतियों के बीच कोई भेद नहीं हो सकता। तब आप ज़मींदारों को कर देना क्यों नहीं बन्द करते?"

उ०—"ज़मींदार तो उस पद्धति के एक औज़ार मात्र हैं। अतः जब हम ब्रिटिश शासन से लड़ रहे हों तभी उनके खिलाफ़ भी आन्दोलन करें, यह ज़रूरी नहीं है। दोनों के बीच भेद किया जा सकता है। परन्तु फिर भी हमें लोगों को कहना पड़ा था कि वे ज़मींदारों को कर न दें, क्योंकि उसी रक़म में से ज़मींदार सरकार को देते हैं। किन्तु वस्तुतः ज़मींदारों से खुद से हमारा कोई झगड़ा नहीं है, जबतक कि किसानों के साथ उनका बर्ताव अच्छा हो।"

प्र०—"किसानों और मज़दूरों को अपने भाग्य का अपने-आप निर्णय करने योग्य पूर्ण शक्ति प्राप्त हो, ऐसा ठोस कार्यक्रम आपके पास क्या है ?"

उ०—"मेरा कार्यक्रम तो वही है, जिसे कि महासभा के द्वारा मैं अमल में ला रहा हूँ। मेरा विश्वास है कि उसके कारण वर्तमान काल में किसी भी समय उनकी जैसी स्थिति थी उससे आज उनकी स्थिति कहीं बेहतर हुई है। यहाँ मैं उनकी आर्थिक स्थिति की बात नहीं कर रहा हूँ, किन्तु उनमें जो अपार जागृति और उसके फलस्वरूप अन्याय एवं लूट का प्रतिरोध करने की शक्ति आ गई है उसका ज़िक्र कर रहा हूँ।"

प्र०—"किसानों पर जो पाँच अरब का क़र्ज़ है, उसमें से आप उन्हें किस प्रकार मुक्त करना चाहते हैं ?"

उ०—"क़र्ज़ की ठीक रक़म क्या है, यह कोई नहीं जानता। किन्तु वह कुछ भी हो, अगर महासभा के हाथ में सत्ता आई तो वह किसानों के कहे जानेवाले क़र्ज़े की भी उसी तरह जाँच करेगी, जैसे कि वह इस बात की जाँच पर ज़ोर दे रही है कि शासन छोड़नेवाली विदेशी सरकार से शासन ग्रहण करनेवाली भारतीय सरकार को क़र्ज़े का कितना बोझ स्वीकार करना चाहिए।"

× × ×

ऐसा ही मज़ेदार जवाब गाँधीजी ने उस प्रश्न का दिया,

जो कि उसके बाद उनसे पूछा गया। प्रश्न यह था कि आपने गोलमेज़ में देशी रियासतों की प्रजा के प्रतिनिधि रखने पर ज़ोर क्यों नहीं दिया ? और अगर संघ-शासन के समय देशी रियासतों की प्रजा अपने हक़ स्थापित करने के लिए सत्याग्रह शुरू करे तो संघ-शासन की सेना उस विद्रोह को दबाने में राजाओं को मदद करेगी या नहीं ? गाँधीजी ने इसपर कहा कि, जीवन के किसी भी क्षेत्र में सत्याग्रह को दबाने के लिए मैं सेना का उपयोग नहीं करूँगा, और न करने ही दूँगा; क्योंकि सत्याग्रह मानव-जीवन का शाश्वत धर्म है और हिंसा जो कि पशु-धर्म है उसका वह सम्पूर्ण स्थान ले लेनेवाला है। जहाँ तक पहले प्रश्न से सम्बन्ध है, जिस परिषद् की रचना में महासभा को कोई सत्ता प्राप्त नहीं थी उसमें किसी को भी शामिल करने की माँग करने की न तो उन्हें छूट थी और न ऐसा करना महासभा की प्रतिष्ठा के ही अनुकूल था। अतः उन्होंने कहा—"महासभा की ओर से मैं कोई प्रार्थना नहीं कर सकता था, और न यह बात शोभा ही दे सकती थी कि जो महासभा सरकार के विरुद्ध सतत विद्रोही की स्थिति में रही है वह किसीको भी परिषद् में शरीक करने के लिए आरज़ू-मिन्नत करे।"

हमारे यहाँ आने के कुछ ही दिन बाद एक चिट्ठीरसा (पोस्टमैन)

अपनी एक अजीब पुस्तक पर गाँधीजी के हस्ताक्षर कराने के लिए संकोच के साथ मीराबहन के पास पहुँचा। इस पुस्तक में पृष्ठों के

ब्रिटिश पोस्टल यूनियन

जुदे-जुदे भाग किये गये थे, और उनमें सैनिक, राजनीतिज्ञ, विद्वान, दयाभावी और परोपकारी, इस प्रकार सबके हस्ताक्षर (उनके फोटो सहित) यथास्थान दिये गये थे। और जब हमें यह मालूम हुआ कि यह पुस्तक हस्ताक्षर कराने आनेवाले की नहीं, बल्कि एक ऐसे साहसी चिट्ठीरसा की है, जिसने अपना जीवन भारत के कोढ़ियों की सेवा के लिए अर्पित कर दिया है, तो हमें कुछ आश्चर्य हुआ। इसलिए स्वभावतः ही हमारी इस ओर दिलचस्पी हुई और हमने श्री गुर से श्री कार्डिनल की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में पूछा, जो कि भारत में सैनिक बनकर आये थे किन्तु जिनके मन में भारत के कोढ़ियों की सेवा की प्रेरणा हो गई थी। हस्ताक्षर प्राप्त करने और हमारे साथ सम्बन्ध स्थापित करने के बाद श्री गुर कभी-कभी हमारे पास आते और इंग्लैण्ड की पोस्टल-यूनियन की प्रवृत्तियों का हाल सुनाते और यूनियन के अन्तर्राष्ट्रीय मुखपत्र 'दि पोस्ट' की प्रतियाँ भेजते थे। उन्हींके प्रयत्न से यूनियन के प्रधान कार्यालय में इस सभा की योजना की गई।

उनके कार्यालय, उनके सभा-भवन, उनके सभा-संचालन के तरीक़े और उनके भाषणों से आपको एक क्षण के लिए भी यह

सन्देह न होगा कि वह चिट्ठीरसा हैं। किन्तु वह सच्चे प्रामाणिक चिट्ठीरसा हैं, जो अपना काम करते हैं और उसके बाद समय निकाल कर न केवल अपने देश के मामलों में ही प्रत्युत हमारे जैसे पददलित राष्ट्रों के प्रश्नों में भी दिलचस्पी रखते हैं। उनकी और हमारे देश के, गाँधीजी के शब्दों में, 'अत्यन्त छोटी तनख्वाह-वाले अज्ञान और अत्यन्त भारी काम के बोझ के नीचे दबे हुए' चिट्ठीरसाओं की कुछ तुलना ही नहीं हो सकती। कारण स्पष्ट है। वह एक स्वतन्त्रराष्ट्र के निवासी और हमारे चिट्ठीरसा एक गुलाम देश के वासी हैं, और उनके बीच जो भारी अन्तर है उसका परिचय कराने के लिए गाँधीजी ने उन्हें बताया कि भारत की औसत आय का जितना गुना वेतन वाइसराय को मिलता है चिट्ठीरसा की आय का उतना ही गुना वेतन पोस्टमास्टर जनरल को मिलता है। ऐसी दशा में भारत के चिट्ठीरसा 'दि पोस्ट' जैसा सर्वाङ्ग-पूर्ण साप्ताहिक पत्र निकालें, अथवा ऐसा भव्य कार्यालय रख कर यूनियन अथवा संघ स्थापित करें, अथवा भारत में कोढ़ियों के लिए चन्दा देकर अस्पताल जारी करें, इसकी स्वप्न में भी आशा नहीं की जा सकती। गाँधीजी ने कहा—'भारत में एक पोस्टमेन्स यूनियन है और महासभा के अध्यक्ष उसके प्रेसीडेण्ट हैं। किन्तु वह यूनियन स्वभावतः ही केवल उनकी शिकायतें सुनाने का ही काम करती है।'

यद्यपि इस प्रकार की तीव्र असमानता देखकर स्वतन्त्रता की भूख बढ़ती है और जबतक वह मिल नहीं जाती तबतक शान्त न

सैनिक से दानी

बैठने का निश्चय अधिकाधिक दृढ़ होता है, फिर भी उससे इंग्लैण्ड के चिट्ठीरसा जो बड़ा काम कर रहे हैं उसके और भारत के चिट्ठीरसा, भारत के कोढ़ी अस्पतालों तथा गाँधीजी के इंग्लैण्ड के कार्य के सम्बन्ध में कुछ कहने के लिए उनको आमन्त्रण करने के उनके विनय के प्रति आँखें मीच लेना उचित नहीं। श्री कार्डिनल, जिनपर भारतीय संस्कृति, भारतीय पुराण, भारत के वीर और वीराङ्गनाओं तथा भारत के पर्वतों और नदियों तक का भी अनिवार्य असर होता है, कहते थे कि यद्यपि वह भारत में सैनिक की तरह रहे, फिर भी उन्होंने अपनी आँखें खुली रक्खीं और जबसे उन्होंने इलाहाबाद में एक कोढ़ी को देखा, तभी से उसका उनके दिल पर इतना गहरा असर हुआ कि उन्होंने अपने-आपको भारत के कोढ़ियों की सेवा के लिए अर्पित कर देने का निश्चय कर लिया। इंग्लैण्ड वापस लौटने पर उन्होंने चिट्ठीरसा की नौकरी की और मित्रों के सामने अपना अनुभव बताया और इंग्लैण्ड के चिट्ठीरसाओं के चन्दे से उन्होंने मदुरा में कोढ़ियों का एक अस्पताल खोला। इसके बाद पोस्टल विभाग ने उन्हें दो बार तीन-तीन महीने की छुट्टी दी और उन्होंने अपनी देख-रेख में उस अस्पताल का इतना विकास

किया कि आज उसने एक बड़े गाँव का-सा रूप धारण कर लिया है। उन्होंने अब डाक-विभाग की नौकरी छोड़ दी है; किन्तु भारत के कोढ़ियों की सेवा नहीं छोड़ी है और इंग्लैण्ड के चिट्ठी-रसाओं के स्वेच्छापूर्वक दिये गये दान से उस परोपकार के काम को अब भी कर रहे हैं।

भारतीय चिट्ठीरसाओं के प्रति भी यूनियन की दिलचस्पी भुला देने योग्य नहीं है। यद्यपि उसे अन्तर्राष्ट्रीय यूनियन से सम्बन्ध जोड़ने की इजाज़त नहीं दी गई है, फिर भी अध्यक्ष ने बताया कि उसका दृष्टिकोण तो अन्तर्राष्ट्रीय ही है। और उन्हें आशा है कि एक दिन ऐसा आवेगा, जब कि उनकी यूनियन संसारव्यापी यूनियन का एक अंग होगी। इस समय यूनियन के सदस्यों की संख्या १,००,००० है और उसके (अन्तर्राष्ट्रीय तथा स्थानीय) पत्र सब सदस्यों में बाँटे जाते हैं।

उनकी इस प्रचुर संगठन-बुद्धि और उक्त परोपकारी कार्य की सराहना के लिए ही गाँधीजी ने उनके साथ एक सायंकाल बिताना तुरन्त स्वीकार कर लिया और भारत के प्रति उनकी सहानुभूति प्राप्त करने के लिए उन्होंने स्पष्ट और तादृश भाषण में स्वातन्त्र्य-युद्ध की विशेषताओं का उन्हें परिचय कराया।

लन्दन से बाहर

[१]

चिचेस्टर की यात्रा तिगुनी सफल हुई, क्योंकि इसमें इंग्लैण्ड के तीन अग्रगण्य पुरुषों से—चिचेस्टर के बिशप श्री बेल, केनन कैम्पबेल और 'मैञ्चेस्टर गार्जियन' के भूतपूर्व सम्पादक श्री स्कॉट से—परिचय हुआ।

गाँधीजी की तीनों के साथ लम्बी और खुले दिल से बात-चीत हुई और ये सब स्वयं गाँधीजी से भारत की स्थिति समझ कर प्रसन्न हुए।

चिचेस्टर के बिशप

पहले मिले हुए अनेक पादरियों से बिशप सर्वथा जुदी तरह के पादरी हैं। उनमें आगे बढ़ा हुआ धर्म का 'दिखाव' ज़रा भी नहीं है। उनके साथ किसी भी विषय की बातचीत करने पर वह उसपर अत्यन्त कुशलता के साथ बोलते हैं और जिस अनासक्ति के साथ बोलते हैं उससे कई बार हम चक्कर में पड़ जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानों उन्होंने प्रत्येक वस्तु के विषय में अपना मत बना रक्खा है और अपने साथ किसी बात में मतभेद हो तो वह आपको यह अनुभव न होने देंगे कि उनका आपसे मतभेद है। वह अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति हैं और शासन के कार्यों को बड़ी कुशलता के

साथ पूरा करने की क्षमता रखते हैं। कोई सहसा यह ख़याल करता है कि उन्होंने यह धन्धा पसन्द करने में भूल की है; किन्तु उसके इस ख़याल की भूल तुरन्त ही समझ में आ जाती है। उनकी प्रत्येक बात में,जो वह कहते हैं या करते हैं, आध्यात्मिकता का गहरा प्रवाह बहता है, और उनका जीवन इतना सादा है कि केनन कैम्पबेल के शब्दों में 'हमारे बिशप जितने अपने महल में सुखी हैं,उतने ही झोंपड़े में भी होंगे।' कई वर्ष तक वह ऑक्सफोर्ड के एक कालेज में अध्यापक थे, और जिस कालेज के लार्ड इर्विन विद्यार्थी थे, उसीके वह भी विद्यार्थी थे। लार्ड इर्विन और इसी तरह अन्य अनेकों अग्रगण्य पुरुषों के साथ उनका सम्बन्ध है और मैं कह सकता हूँ कि उनके साथ गाँधीजी ने जितने घण्टे बिताये, उसका एक मिनट भी व्यर्थ न गया। अत्यन्त आत्म-विश्वास के साथ उन्होंने मुझसे कहा—"मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं कि अल्प-संख्यक जातियों के प्रश्न पर परिषद् टूट जायगी। कल रात को अनेक पादरियों ने गाँधीजी से कई प्रश्न पूछे थे। एक जने ने जब कहा, मैं आशा करता हूँ कि इस प्रश्न का निर्णय भारत में होगा, तब गाँधीजी ने कहा कि इस प्रश्न का निपटारा यहीं करने का मेरा निश्चय है। मैं समझता हूँ कि वह ऐसा ही करेंगे। उनका आशावाद पोला नहीं है।" इतना कह कर वह फिर बोले, "गाँधीजी के साथ मेरी कई बहुमूल्य बातें

हुई हैं; और एक सामान्य व्यक्ति जितना समझ सकता है, उतना मैंने उनसे समझ लिया है। किन्तु मुझे भय है कि कितने ही लोगों के विषय में जितना शङ्कित होना चाहिए, वह उससे कहीं अधिक शङ्कित हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि अंग्रेज़ यदि भारत को छोड़कर चले जायँ तो वहाँ अराजकता और मार-काट मच जायगी यह भय निराधार और अज्ञानजन्य है; किन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सचमुच ऐसा भय लगता है और इसलिए क्या भावी शासन-विधान में इस भय को दूर करने के लिए रक्खी जा सकने योग्य कोई योजना ढूँढ निकालने का प्रयत्न नहीं किया जा सकता ?"

गाँधीजी के साथ उनकी लम्बी बातचीत हुई और यदि सम्बन्धित व्यक्तियों पर परिषद् के बाहर का कोई व्यक्ति असर डाल सकता हो, तो बिशप निश्चय ही वह डाले बिना न रहेंगे।

मैंने कहा, "किन्तु मान लीजिए कि यदि कुछ भी न हुआ तोभी इस यात्रा से इंग्लैण्ड और भारत एक-दूसरे को निश्चय ही अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे और शान्तिवादियों को तो उनके काम में इस मुलाक़ात से बहुत अधिक सहायता मिलेगी।"

मेरी बात के प्रथम अंश के विषय में उनका निश्चय था; किन्तु दूसरे अंश के विषय में नहीं। उन्होंने कहा, "मुलाक़ात का परिणाम इससे अधिक कुछ क्यों न हो ? और यदि परिणाम

अधिक न हो, तो भविष्य अनिश्चित है। हम जानते हैं कि मंचूरिया में कुछ करना चाहिए, फिर भी हम क्या कर सकते हैं ? मेरा यह पूर्ण निश्चय है कि यदि यहाँ किसी प्रकार का समझौता न हो और इससे भारत में कुछ घटना घटित हो तो हमें कुछ करना चाहिए। किन्तु मुझे सन्देह है कि हम इतना साहस दिखा सकेंगे। मैं नहीं समझता कि शान्तिवादियों को वास्तव में क्या करना चाहिए, इसका वे निर्णय कर सकेंगे।" इस आफत का मुक़ाबला करने की अपेक्षा इसे टाल देने के लिए वह अधिक चिन्तित दिखाई देते थे।

मैंने पूछा—"आज अग्रगण्य शान्तिवादी कौन हैं ?" उन्होंने तुरन्त ही अलबर्ट स्विट्ज़र और रोम्यारोलाँ का नाम लिया। डा० स्विट्ज़र की हाल ही की पुस्तक के सम्बन्ध में बहुत-कुछ बात करने के बाद उन्होंने कहा—"वह एक भारी नैतिक शक्ति हैं। जब मैं पहली ही बार उनसे फ्रांस में मिला, तब उनके कार्ड पर 'डाक्टर ऑफ़ मेडीसिन,' 'डाक्टर ऑफ़ थिऑलॉजी' और 'डाक्टर ऑफ़ म्यूज़िक' पदवियाँ देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। इतनी पदवियाँ प्राप्त करने के बाद उन्होंने निश्चय किया कि उनका काम अफ्रीका के जंगलों में ख़तरे और मौत के बीच में है। और यह ख़तरा और मौत भी ऐसा, जिसमें ज़रा भी आकर्षण नहीं।" यह कह कर बिशप ने डा० स्विट्ज़र के स्वार्थत्याग का वीरत्व

प्रदर्शित किया। अंग्रेज शान्तिवादियों में उन्होंने डा० मॉड रॉयडन, आर्थर पॉनसानबी और शान्ति संघ के सदस्यों के नाम बताये। उन्होंने बिना किसी सङ्कोच के कहा कि "एच० जी० वेल्स और बरट्रेण्ड रसल शान्तिवादी हैं; किन्तु हम जिस नैतिक शक्ति की कल्पना कर रहे हैं, वह उनमें नहीं है।"

केनन कैम्पबेल

केनन कैम्पबेल दूसरी प्रकृति के व्यक्ति हैं। उनके हृदय को जान लेना कुछ भी कठिन नहीं। उनकी विद्वत्ता और संस्कारिता पहाड़ी झरने की तरह वह निकलती है। उनके जैसे प्रसिद्धि-प्राप्त महान् उपदेशक का जितना गहन अध्ययन होना चाहिए उतना गहन और विशाल उनका अध्ययन है और पूर्व और पश्चिम के तत्त्वज्ञान में उन्हें कई समानतायें दिखाई दी हैं। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के लेखों का उनके हृदय पर स्थायी असर पड़ा है, और यद्यपि कुछ वर्षों पहले वह उग्र वाद-विवाद खड़ा करके धर्मशास्त्रियों पर कठोर आघात कर चुके हैं, किन्तु फिर भी उनका हृदय शान्त, चिन्तनशील जीवन के लिए छटपटाता है। 'स्वराज्य' का मूल समझ लेने के लिए वह बहुत उत्सुक थे, और जब गाँधीजी ने कहा कि उसका मूल आत्मशुद्धि और आत्मबलिदान है, तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—"यही सब धर्मों का सार है।" वह 'आधुनिक विज्ञान के विनाश-साधनों' से उकता गये हैं और वह यह

अनुभव करते हैं कि हमारे जीवन के प्रत्येक व्यवहार में अर्थ और काम की दृष्टि होना ही हमारी सब आपदाओं अथवा रोगों की जड़ है। भारत के आन्दोलन के सम्बन्ध में उनके हृदय में गहरी-से-गहरी सहानुभूति है। यह कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं कि गाँधीजी के साथ का उनका परिचय आत्मा के साथ आत्मा का ही परिचय था।

पत्रकारों के महारथी श्री स्कॉट की मुलाक़ात तो स्वयं गाँधीजी के शब्दों में एक तीर्थयात्रा की तरह थी। ५० वर्ष तक 'मैञ्चेस्टर गार्जियन' के सम्पादक-पद का उपभोग

श्री स्कॉट

करके ८३ वर्ष की अवस्था में सन् १९२९ में उससे मुक्त हुए। इस समय उनकी अवस्था ८५ वर्ष की है, किन्तु हमने उन्हें अपना ओवरकोट लेने के लिए नसैनी पर से जिस दृढ़ता और स्थिरता के साथ चढ़ते-उतरते देखा उससे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों उनमें अभी उत्साह तो २० वर्ष के नवयुवक जैसा है। जीवन भर के परिश्रम के पश्चात् मिला हुआ विश्राम वह इंग्लैण्ड के दक्षिणी किनारे पर बोगनोर में अपनी बहन के घर में बिता रहे हैं। सम्राट् ने अपनी पिछली बीमारी के बाद का समय यहाँ बिताया था, तबसे बोगनोर को विशेष प्रसिद्धि मिल गई है। यहाँ हम श्री स्कॉट तथा उनकी बहन से मिले। उनकी बहन की अवस्था ९७ वर्ष की है, फिरभी उनकी सब शक्तियाँ अखण्डित हैं,

उनके चेहरे पर ज़रा भी झुर्री नहीं पड़ी है, केवल स्वभावतः ही सुनाई कुछ कम देने लगा है। ऐसा प्रतीत हुआ,मानों सब बातों में उनकी दिलचस्पी है। गाँधीजी की भेंट को वह अपने जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना समझती थीं। हम रवाना होने लगे उस समय गाँधीजी ने उनसे कहा, "मुझे आशा है कि मेरे उद्देश्य के प्रति आपकी शुभ कामनायें हैं।" इसपर उन्होंने प्रेमपूर्वक कहा, "हाँ, हाँ, अवश्य !"

श्री स्कॉट के साथ गाँधीजी की लम्बी बातचीत हुई। गाँधीजी उनके साथ तर्क-वितर्क अथवा वाद-विवाद करके उन्हें किसी प्रकार तंग नहीं करना चाहते थे। ज्यों ही वृद्ध स्कॉट उनका स्वागत करने के लिए आगे आये, गाँधीजी ने उनसे कहा, "यह तो केवल तीर्थयात्रा है। ग़लतफ़हमी और विपरीत प्रचार के विरुद्ध आपके पत्र ने अपूर्व काम किया है और मैंने सोचा कि और कुछ नहीं तो केवल कृतज्ञता-प्रदर्शन के लिए ही मुझे आपसे मिलना चाहिए।" श्री स्कॉट गाँधीजी को अपने घर के पिछले भाग के, चारों ओर से सूर्य-प्रकाश अच्छी तरह आ सके इस प्रकार बनाये गये, काच के कमरे में ले गये और वहाँ दोनों जने बातें करने लगे। मैं और चार्ली एण्डरूज़ बराबर के कमरे में से देखते और बातें सुनते थे। ऐसा प्रतीत हुआ कि श्री स्कॉट वर्तमान घटनाओं से अच्छी तरह परिचित थे। गाँधी-

जी ने यहाँ एक सभा में कहा था कि सब मिला कर परिणाम में अंग्रेजी राज्य भारत के लिए हितकर सिद्ध नहीं हुआ। इसलिए श्री स्कॉट ने पूछा—"क्या आप नहीं मानते कि भारत में जो एकता है, वह अंग्रेजी शासन के ही कारण है?" गाँधीजी ने कहा—"हाँ, यह एकता अंग्रेजी शासन ने हमारे सिर पर थोपी है। नतीजा यह हुआ है, जैसा कि हम इस समय देख रहे हैं, कि आन-वान का प्रसंग आने पर असंख्य विनाशक शक्तियाँ उद्भूत हो जाती हैं। मेरी इस बात से श्री मैक्डोनल्ड चिढ़ गये थे; किन्तु मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि यदि परिषद् में भारत के चुने हुए सच्चे प्रतिनिधि होते तो साम्प्रदायिक प्रश्नों का निपटारा होने में कुछ भी कठिनाई न होती। अभी तो, जैसा कि सर अलीइमाम ने कहा था, प्रत्येक प्रतिनिधि प्रधानमन्त्री की इच्छानुसार यहाँ आ सके हैं। और मान लीजिए कि राष्ट्र ने चुन कर भी इन्हीं व्यक्तियों को भेजा होता, तो आज उन्होंने जो ढंग अख्तियार कर रक्खा है, उस समय उन्हें इससे अधिक ज़िम्मेदारी का तरीक़ा अख्तियार करना पड़ता। सच बात तो यह है कि छोटी-छोटी हास्यास्पद अल्प-संख्यक जातियों में से व्यक्ति पसन्द कर लिये गये हैं, वे उन जातियों के प्रतिनिधि कहे जाते हैं, और वे चाहे जितने रोड़े अटका सकते हैं।"

किन्तु सब दलील मैं यहाँ न दे सकूँगा और सच तो यह है

कि, जैसा कि पहले कह चुका हूँ, श्री स्कॉट के सामने उन्होंने दलील के तौर पर कुछ रक्खा ही नहीं। उन्होंने घटनाओं से परिपूर्ण भूतकाल का विचार किया, 'मिठास और तेज से पूर्ण सुन्दर काली आँखोंवाले' ग्लैडस्टन और सदैव के लिए इतिहास पर अपनी राजनीतिज्ञता की छाप बिठा देनेवाले कैम्पबेल बेनरमेन जैसे व्यक्तियों की, और दक्षिण अफ्रीका का विधान बनाते समय उन्होंने जो बड़ा हिस्सा लिया उसकी याद की और ऐसे वीर पुरुषों के लिए आह भरी।

[२]

ईटन एक तरह अनुदार दल का, अथवा, अधिक स्पष्ट शब्दों में कहें तो, साम्राज्यवादियों का सुदृढ़ दुर्ग है, जहाँ पर मध्यम वर्ग के बालकों को रेवरेण्ड पेपिलोन के शब्दों में "भूमि पर अधिकार करने, वहाँ के जंगली लोगों पर शासन करने और साम्राज्य-निर्माण करनेमें पौरुष बताना" सिखलाया जाताहै। ईटन का सार्वजनिक स्कूल, "साढ़े चार शताब्दियाँ हुईं, इंग्लैण्ड की प्रगति और खुशहाली का अंग बन रहा है।" ईटन के लिए यह गौरव की बात है कि उसने इंग्लैण्ड को ग्लैडस्टन, सेलिसबरी, रोजबरी और बालफ़ोर जैसे प्रधानमन्त्री दिये और भारत को वेलेस्ली,

भावी साम्राज्य-विधायकों के बीच

मेटकाफ़, ऑक्लैण्ड, एलिनबरो, कैनिंग, एल्गिन, डफ़रिन, लैन्सडाउन, कर्ज़न और इर्विन जैसे वाइसराय और बहुत से गवर्नर भेजे । उनकी ईटन की शिक्षा के विषय में यह बात गर्वपूर्वक कही जाती है कि इस शिक्षा का ही कारण था कि "इन्होंने कई बार तो जीवन को खतरे में डाल कर और प्राण तक गँवा कर इस विशाल देश का कारबार चलाने में सहायता की है ।" वेलिंग्टन, रॉबर्ट्स, और बूलर जैसे बड़े-बड़े सैनिक सब ईटन के थे और ईटन-निवासी को यह सिखाया जाता है कि "जहाँ-जहाँ युद्ध में इंग्लैण्ड का झण्डा फहराया गया है, वहाँ-वहाँ अनेकों ईटोनियनों ने स्वदेश के लिए अपने प्राणों की आहुतियाँ दी हैं ।" ईटन-उत्साही एक सज्जन का तो कहना है— "ईटन प्रतिदिन एक महापुरुष तैयार करता है, और देश के भावी इतिहास के लिए सामग्री देता है ।"

जहाँ इंग्लैण्ड के उच्च वर्ग के बालकों को इस परम्परा के अधीन शिक्षित किया जाता है, वहाँ बड़े विद्यार्थियों को गाँधीजी जैसे साम्राज्य के बाग़ी को आमन्त्रित करने और स्कूल के हेडमास्टर को अपने पाँच सौ वर्ष पुराने महल में उन्हें ठहराने की इजाज़त देना कुछ आसान काम न था । इस आमन्त्रण और हेडमास्टर के अत्यन्त सौजन्यपूर्ण आतिथ्य के लिए कृतज्ञ होते हुए भी मेरा ख़याल है कि यह कहना ठीक होगा कि इस आमन्त्रण का उद्देश्य

भी बालकों को साम्राज्यवाद का ही एक अधिक पाठ देना था। ईटन के बालकों के लिए लगभग २५,००० पुस्तकों का एक वृहत् पुस्तकालय है; किन्तु भारत का जो इतिहास उन्हें सिखलाया जाता है, वह तो वही प्रचलित इतिहास है और कदाचित् इस निमन्त्रण का उद्देश्य भी यही बताना था कि भारतवासी भारत का शासन चलाने में असमर्थ हैं और इसलिए उसे अब भी इंग्लैण्ड के ही मातहत रहना चाहिए। हम क्लब के ५० विद्यार्थियों से मिले, और उनके सामने भाषण देने की अपेक्षा गाँधीजी ने उनसे प्रश्न पूछने और खुले दिल से बात-चीत करने के लिए कहा। किन्तु उनके पास तो एक ही प्रश्न था अथवा अधिक स्पष्ट शब्दों में दो प्रश्न थे; और ऐसा मालूम होता था, मानों उस जादू के दायरे से बाहर इधर-उधर हटने से उन्हें रोक दिया गया है।

सभापति ने कहा—"शौकतअली ने मुसलमानों का पक्ष हमें समझाया। आप हमें हिन्दू-पक्ष समझावेंगे?" और जब गाँधीजी ने विद्यार्थियों से प्रश्न करने के लिए कहा तो एक लड़के ने यही प्रश्न दुहराया। ईस्ट एण्ड के ग़रीब बालक और यहाँ के लड़कों में कितना अन्तर है! उन बालकों ने तो गाँधीजी से उनके घर, पोशाक, चप्पल और भाषा के सम्बन्ध में ढेरों प्रश्न पूछ डाले, और यहाँ के बालक निश्चित प्रश्न के सिवा कुछ न पूछ सके! किन्तु उन ग़रीबों को कहीं साम्राज्य-विधायक थोड़े ही होना था।

कुछ भी हो गाँधीजी ने यह चुनौती स्वीकार कर ली और इसका ऐसा उत्तर दिया, जिसके लिए वे लोग तैयार न थे। मैं यहाँ उसका केवल सारांश देता हूँ।

"आपका इंग्लैण्ड में बड़ा स्थान है। आप लोग भविष्य में प्रधान-मन्त्री और सेनापति बनेंगे और इसलिए इस समय जब कि आपका चरित्र-निर्माण हो रहा है, और आपके हृदय में प्रवेश कर सकना आसान है, मैं उसमें प्रवेश करने के लिए उत्सुक हूँ। आपको परम्परा से जो झूठा इतिहास पढ़ाया जाता है, उसके विपक्ष में मैं आपके सामने कुछ हक़ीक़तें रखना चाहता हूँ। उच्च अधिकारियों में मैं अज्ञान देखता हूँ। अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं, प्रत्युत ग़लत बातों पर निर्धारित ज्ञान है। इसलिए मैं आपके सामने सच्ची बातें रखना चाहता हूँ, क्योंकि मैं आपको साम्राज्य का निर्माता नहीं प्रत्युत उस राष्ट्र के सदस्य मानता हूँ, जिसने अन्य राष्ट्रों को लूटना छोड़ दिया हो और जो अपने शस्त्र-बल के आधार पर नहीं, प्रत्युत नैतिक बल से संसार की शान्ति का रक्षक बना हो। इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि कम-से-कम मेरे लिए कोई हिन्दू-पक्ष नहीं है, क्योंकि अपने देश की स्वतन्त्रता के विषय में जितने हिन्दू आप हैं, मैं उससे अधिक नहीं। हिन्दू महासभा के प्रतिनिधियों ने हिन्दू-पक्ष पेश किया है। ये प्रतिनिधि हिन्दू-मनोवृत्ति के

विदेशी फच्चर

प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं, किन्तु, मेरे विचार में, उनका यह दावा उचित नहीं। वे इस प्रश्न का राष्ट्रवादी निर्णय पसन्द करेंगे, वह इसलिए नहीं कि वे राष्ट्रवादी हैं, प्रत्युत इसलिए कि वह उनके अनुकूल है। इसे मैं विनाशक नीति कहता हूँ, और उन्हें समझाता हूँ कि वे बड़ी बहुमति के प्रतिनिधि हैं, इसलिए उन्हें झुक कर छोटी जातियाँ जो माँग रही हैं, वह देदेना चाहिए। इससे वातावरण जादू की-सी तरह साफ़ हो जायगा। हिन्दुओं का व्यापक समुदाय क्या समझता है और क्या चाहता है, इसका किसीको कुछ पता नहीं; किन्तु मैं इतने वर्षों से उनके बीच में फिरते रहने का दावा करता हूँ, इसलिए मैं ख़याल करता हूँ कि वे ऐसी निकम्मी बातों की ज़रा भी परवा नहीं करते, व्यवस्थापक सभाओं में अपने स्थानों और सरकारी ओहदों के रूप में टुकड़ों के प्रश्न पर वे ज़रा भी अशान्त नहीं होते। साम्प्रदायिकता का यह हौआ अधिकांश में शहरों में ही है, और ये शहर कोई भारत नहीं हैं, प्रत्युत लन्दन और अन्य पाश्चात्य शहरों के ब्लॉटिंग पेपर (स्याही-चूस) हैं और जान में वा अजान में गाँवों का शिकार करते हैं, और इंग्लैण्ड के दलाल बनकर इन गाँवों को लूटने में आपके एजेण्ट की तरह काम करते हैं। भारत की स्वतन्त्रता के जिस प्रश्न को ब्रिटिश मन्त्रिगण जान-बूझ कर टालते रहते हैं, उसके सामने इस साम्प्रदायिक प्रश्न का

कुछ भी महत्त्व नहीं है। वे इस बात को भूल जाते हैं कि असन्तुष्ट और बाग़ी भारत को वे अधिक दिन तक अपने पंजे में न रख सकेंगे। अवश्य ही हमारी बग़ावत शान्त अर्थात् अहिंसात्मक है; फिर भी वह बग़ावत तो है ही। जो रोग इस समय जाति के कुछ भागों को क्षीण कर रहा है, उसकी अपेक्षा भारतवर्ष की स्वतन्त्रता कहीं अधिक उच्च वस्तु है, और यदि शासन-विधान-सम्बन्धी प्रश्न का निपटारा सन्तोषजनक हो जायगा, तो साम्प्रदायिक अनैक्य तुरन्त ही ग़ायब हो जायगा। जिस क्षण विदेशी फच्चर हट जायगी, उसी क्षण जुदा हुई जातियाँ आपस में मिले बिना रह नहीं सकतीं। इसलिए हिन्दू-पक्ष नाम का पक्ष है ही नहीं, और यदि कोई हो भी तो उसे छोड़ देना चाहिए। यदि आप इस प्रश्न का अध्ययन करेंगे, तो आपको इससे कोई लाभ न होगा; और जब आप इसकी उत्तेजनात्मक तफ़सीलों में उतरेंगे, तब बहुत सम्भव है आप यही ख़याल करेंगे कि हम टेम्स नदी में डूब मरें तो अच्छा।

आध्यात्मिक बनाम पाशविक

"जब मैं आपसे कहता हूँ कि साम्प्रदायिक प्रश्न की कोई बात नहीं और आपको उससे ज़रा भी चिन्तित होने की ज़रूरत नहीं, आपको मेरी इस बात को ईश्वर-प्रेरित सत्य की तरह मान लेना चाहिए। किन्तु यदि आप इतिहास का अध्ययन करें, तो आप इस बड़े

प्रश्न का अध्ययन करें कि किस प्रकार करोड़ों व्यक्तियों ने अहिंसा को ग्रहण करने का निश्चय किया और किस प्रकार वे उसपर टिके रहे। मनुष्य की पाशविक वृत्ति का, जंगली नियमों का अनुसरण करनेवाले व्यक्तियों का अध्ययन न करो, वरन् अभ्यास करो मनुष्य की आत्मा के वैभव का। साम्प्रदायिक प्रश्नों में उलझे हुए व्यक्ति पागलखानों में पड़े हुए लोगों की तरह हैं। किन्तु आप जो लोग अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए किसी को चोट पहुँचाये बिना अपने प्राणों की आहुतियाँ देते हैं, उनका अध्ययन करें, उच्च कोटि के मनुष्य का, आत्मा की पुकार और प्रेम-धर्म का अनुसरण करनेवाले व्यक्तियों का अध्ययन करें, जिससे जब आप बड़े हों, तब अपनी विरासत को सुधार सकें। आपका राष्ट्र हमपर शासन करता है, इसमें आपके लिए कोई गर्व की बात नहीं हो सकती। ऐसा कभी नहीं हुआ कि गुलाम को बाँधनेवाला स्वयं कभी न बँधा हो; और दूसरे राष्ट्र को गुलामी में रखने वाला राष्ट्र स्वयं गुलाम बने बिना नहीं रहा। इंग्लैण्ड और भारत के बीच आज जो सम्बन्ध है, वह अत्यन्त पापपूर्ण सम्बन्ध है, अस्वाभाविक सम्बन्ध है; और मैं अपने काम में जो आपका शुभाशीर्वाद चाहता हूँ वह इसलिए कि स्वतन्त्रता प्राप्त करने का हमारा स्वाभाविक हक़ है, वह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, और हमने जो तपस्या की है और जो कष्ट सहे हैं उनके

कारण हमारा यह अधिकार दुगुना हो गया है। मैं चाहता हूँ कि आप जब बड़े हों, तब आप अपने राष्ट्र को लुटेरेपन के पाप से मुक्त करके उसकी कीर्त्ति में अपूर्व वृद्धि करें और इस प्रकार मानवजाति की प्रगति में अपना भाग दें।"

दूसरा प्रश्न यह था कि जब अंग्रेज भारत से चले जायँगे, तो लुटेरे राजाओं के सामने भारत की क्या दशा होगी ? गाँधीजी ने इन नवयुवकों को विश्वास दिलाया कि राजाओं की ओर से हमें कोई भय नहीं है, और यदि वे दुःखदायी हुए भी तो अंग्रेज़ों की अपेक्षा उनसे समझ लेना कहीं आसान होगा ! उनकी दुर्बलतायें ही उन्हें किसी प्रकार की शरारत करने से बाज़ रक्खेंगी। भारत का गौरव अंग्रेज़ों को भारत से निकाल देने में नहीं, प्रत्युत उनका हृदय परिवर्त्तन कर उन्हें लुटेरे से मित्र बनने और आवश्यकता के समय भारत के सम्मान की रक्षा करने के लिए वहीं रखने में होगा।

इस मुलाक़ात का विद्यार्थियों के हृदय पर क्या असर हुआ, इसका कुछ पता नहीं। किन्तु यह मेरा विश्वास है कि इस मुलाक़ात से उनकी बुद्धि पर जो आघात पहुँचा है, उसे वे जल्दी भूल नहीं सकते। सुना-सुना कर प्राप्त किये ज्ञान की अपेक्षा सजीव व्यक्ति का संसर्ग अनन्तगुना बहुमूल्य है और प्रेमपूर्ण सम्मिलन के स्पष्ट प्रकाश के आगे ग़लतफ़हमी का कोहरा अक्सर

हट जाता है। तत्काल हृदय-परिवर्तन का एक उदाहरण यहां देता हूँ। मीरां बहन की भारतीय पोशाक और गांधीजी के प्रति उनकी शिष्यवृत्ति देख कर वहां की कुछ महिलाओं के हृदयों को गहरी चोट पहुँची। ये बहनें इस बात को मानने के लिए तैयार ही न थीं कि मीरां बहन अंग्रेज़ हैं। जब मीरां बहन ने कहा कि केवल एडमिरल स्लेड की पुत्री ही नहीं, वरन् उनके एक निकट सम्बन्धी डा० एडमण्डवार ईटन के प्रसिद्ध विद्यार्थी थे और कई वर्षों तक ईटन के हेड मास्टर रह चुके हैं, तो इसपर कुछ कटु आलोचना भी हुई, किन्तु इससे मीरां बहन ज़रा भी विचलित एवम् दुःखित न हुईं। उन्होंने हंसते-हंसते सब प्रश्नों के उत्तर दिये। परिणाम यह हुआ कि दो घण्टे बाद इनसे खुले दिल से बातें कर चुकने पर प्रश्न करनेवाली उनकी मित्र बन गईं।

लन्दन में जब एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सभा में गाँधीजी ने कहा कि भारत में अंग्रेजों के शासन में, उनके पहले जितना था,

अंग्रेज़ भारत की शिक्षा के संरक्षक नहीं हैं

उससे भी कम अक्षर-ज्ञान है, तब कई लोग इसे एकदम अतिशयोक्ति समझ कर उनके इस कथन से दुःखित हो उठे थे। किन्तु यदि कोई व्यक्ति ५०० वर्ष पुराने ईटन का ख़याल करे, आक्सफोर्ड के २१ कालेजों में कम-से-कम तीन तो सन् १२६१ के समय के पुराने हैं, और बेलियल, मर्टन, और यूनीवर्सिटी

कालेज ये तीनों कालेज सबसे पुराने होने के विषय में स्पर्द्धा करते हैं यह देखे, और दूसरी ओर अनेक राष्ट्रों से प्राचीनतम संस्कृति का अभिमान रखवाले भारत में ईटन अथवा बेलियल जैसी पुरानी शिक्षण-संस्था के खोज का व्यर्थ प्रयत्न करे, तो कदाचित वह गाँधीजी के उक्त कथन की वास्तविकता की कल्पना कर सके। अंग्रेज़ी-शासन के पहले भारत में एक समय ऐसा था, जब कि भारत के सब प्राचीन नगरों में विद्या के धाम और गाँव-गाँव में पाठशालाएं थीं; ब्रह्मदेश में प्रत्येक गाँव में बौद्ध साधुओं के विहार के साथ एक-एक पाठशाला थी। इस बात का आश्चर्य है कि अब वे पाठशालाएं कहाँ गईं। यदि ये पाठशालाएं रहने दी गई होतीं, और सावधानी के साथ उनका पाषण हुआ होता तो हमारे यहां भी ईटन, बेलियल और मर्टन जैसी शिक्षण-संस्थाएं होतीं। इन प्राचीन संस्थाओं का निरीक्षण करते समय किसी भी भारतीय को इतने ही प्राचीन इतिहासवाली अपनी संस्थाओं का स्मरण हुए बिना नहीं रह सकता।

[३]

आक्सफोर्ड की मुलाक़ात एक महत्त्व की घटना थी, क्योंकि वहाँ सर्वथा विशुद्ध प्रेम, और भारतीय प्रश्न को समझने और उसकी तह तक पहुँचने की सच्ची और हार्दिक इच्छा थी। बेलियल कालेज के अध्यापक डा० लिण्ड्से जब भारत में आये थे, तब उन्होंने अपने घर में कुछ दिन शान्ति-पूर्वक बिताने के लिए गाँधीजी को निमन्त्रण दिया था। उन्होंने अपना वह निमन्त्रण यहाँ फिर दुहराया। इसमें उनका उद्देश्य गाँधीजी को एक दिन शान्ति पहुँचाना तो था ही, साथ ही इससे भी अधिक वे आक्सफोर्ड के विद्वद् समुदाय से उनका परिचय करा देना चाहते थे। उनमें शासक जाति के होने का गर्व छू भी नहीं गया है, (वे स्कॉट हैं) और वे मानते हैं कि स्वतन्त्रता भारत का जन्मसिद्ध अधिकार है, इसलिए भारतीय प्रश्न की ओर मित्रों की दिलचस्पी कराने में उन्हें ज़रा भी कठिनाई नहीं हुई। अनेक सभाएँ और सम्भाषण हुए। श्री लिण्ड्से के घर पर ही चालीसेक ख़ास-ख़ास मित्रों की एक सभा हुई और पढ़े-लिखे विद्वानों की तीन सभाएँ अन्यत्र हुईं। श्री टॉमसन ने, जिन्होंने कि 'अदर-साइड आफ़ दि मेडल' (ढाल का दूसरा रुख) नामक पुस्तक

आक्सफोर्ड

लिखी है और जिन्होंने 'एटोनमेण्ट' (प्रायश्चित्त) नामक पुस्तक में इंग्लैण्ड को भारत के प्रति किये गये पापों का प्रायश्चित्त करते हुए चित्रित किया है, डा० गिलबर्ट मरे, डा० गिलबर्ट स्लेटर, प्रो० कुपलैंड और डा० दत्त जैसे मित्रों को गाँधीजी के साथ शान्तिपूर्वक लम्बी बातचीत करने के लिए निमन्त्रित किया था। आक्सफ़ोर्ड के अग्रगण्य अध्यापकों की भी ऐसी ही सभा हुई, और उसके बाद रेले क्लब के सभ्यों की सभा हुई। इस क्लब में अधिकतर उपनिवेशों के विद्यार्थी हैं, जिनमें कई सेसिल रहोड्स की छात्रवृत्ति पानेवाले और प्रायः सभी साम्राज्य के सूक्ष्म प्रश्नों का अध्ययन करनेवाले हैं। सबसे पीछे, किन्तु महत्त्व में किसी से कम नहीं, भारतीय विद्यार्थियों की मजलिस की व्यवस्था में एक सभा हुई, जिसमें कुछ अंग्रेज़ विद्यार्थी भी आमन्त्रित किये गये थे।

श्री टॉमसन के घर पर हुई बातचीत में अनेक विषय छिड़े और कई मौलिक सिद्धान्तों पर चर्चा हुई। पाठकों को कदाचित याद होगा कि श्री गिलबर्ट मरे ने करीब तेरह वर्ष हुए 'हिबर्ट जनरल' नामक पत्र में पशुबल के विरुद्ध आत्मबल की अत्यन्त प्रशंसा करते हुए एक लेख लिखा था। उन्हें हमारे आन्दोलन में अहिंसक क्रान्ति और राष्ट्रवाद अत्यन्त भयङ्कर रूप धारण करते हुए दिखाई दिया और इससे वे बड़े परेशान दिखाई दिये। उन्होंने कहा—"आज मेरा आपके साथ श्री विन्स्टन चर्चिल से

भी अधिक मतभेद है।" उत्तर में गाँधीजी ने कहा—"आप संसार में होते हुए संस्कृति के नाश को रोकने के लिए जुदे-जुदे राष्ट्रों के बीच सहयोग चाहते हैं। मैं भी यही चाहता हूँ। किन्तु सहयोग तभी हो सकता है, जब सहयोग करने योग्य स्वतन्त्र राष्ट्र हो। यदि मुझे संसार में शान्ति पैदा करनी या क़ायम रखनी हो और उसमें पड़नेवाले विघ्न का विरोध करना हो, तो उसके लिए मेरे पास वैसा करने की शक्ति होनी चाहिए। और जबतक मेरा देश स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर लेता, तबतक मुझसे वह हो नहीं सकता। इस समय तो भारत का स्वतन्त्रता-प्राप्ति का आंदोलन ही ससार की शान्ति के लिए उसका हिस्सा है, क्योंकि जबतक भारत एक पराधीन राष्ट्र है, तबतक न केवल वही वरन् उसे लूटनेवाला इंग्लैण्ड तक शान्ति के लिए ख़तरा है। दूसरे राष्ट्र आज भले ही इंग्लैण्ड की साम्राज्यवादी नीति और उसके द्वारा होनेवाली अन्य राष्ट्रों की लूट को सहन कर लें; किन्तु निश्चय ही वे उसे पसन्द तो हर्गिज़ नहीं करते और इसलिए इंग्लैण्ड के दिन प्रति-दिन अधिकाधिक ख़तरनाक बनने को रोकने में अवश्य ही सहायता देंगे। बेशक आप यह कह सकते हैं कि स्वतंत्र भारत स्वयं ही एक ख़तरा हो सकता है। लेकिन हमें यह मान लेना चाहिए कि यदि वह अपनी स्वतन्त्रता अहिंसा के द्वारा प्राप्त कर सका तो वह अपने अहिंसा के सिद्धान्त और स्वयं लूट का शिकार

होने से उसके कटु अनुभवों के कारण अच्छी तरह बरताव करेगा।

"मेरे क्रान्ति की भाषा में बोलने के सम्बन्ध में जो आपत्ति की जाती है, उसका जवाब तो मैं राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में जो कह चुका हूँ, उसमें आ जाता है। किन्तु मेरे आन्दोलन में एक बड़ी और परेशान करने-वाली शर्त है। आप तो यह कहेंगे ही कि अहिंसक बगावत हो ही नहीं सकती और इतिहास में ऐसे बलवे का कोई उदाहरण नहीं है। किन्तु मेरी महत्त्वाकांक्षा तो ऐसा उदाहरण पैदा कर देने की है। मैं ऐसा स्वप्न देख रहा हूँ कि मेरा देश अहिंसा द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा और मैं अगणित बार संसार के सामने यह बात दुहरा देना चाहता हूँ कि अहिंसा को छोड़ कर मैं अपने देश की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं करूँगा। मेरा अहिंसा के साथ का विवाह इतना अविच्छिन्न है कि मैं अपनी इस स्थिति से विलग होने की अपेक्षा आत्महत्या कर लेना पसन्द करूँगा। यहाँ मैंने सत्य का उल्लेख नहीं किया, वह केवल इसलिए कि सत्य अहिंसा के सिवा दूसरी तरह प्रकट हो ही नहीं सकता। इसलिए यदि आप यह कल्पना स्वीकार कर लें तो मेरी स्थिति सुरक्षित है।"

अपूर्व अवसर

जैसा कि बातचीत से मालूम हुआ सर गिलबर्ट की आपत्ति अहिंसा के सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं, बल्कि समाचार-पत्रों में वर्णित

उसके कई प्रयोगों के विरुद्ध थी। बॉयकॉट (बहिष्कार) की चर्चा करते हुए उनके मन में कर्नल बॉयकॉट (जिस पर से 'बॉयकॉट' शब्द प्रचलित हुआ) पर हुए अत्याचार का, जिसके परिणाम में उनके कुक को आत्महत्या करनी पड़ी, खयाल हो रहा था। इस पर जो बहस छिड़ी वह लगभग उकता देने वाली, दुर्बोध तथा तात्त्विक हो उठी। किन्तु अन्त में गाँधीजी ने जो बात-चीत की उसका सार इस प्रकार है—"आपका यह कहना ठीक हो सकता है कि मुझे अधिक सावधानी से क़दम रखना चाहिए; किन्तु यदि आप मूल सिद्धान्त पर आक्षेप करते हों, तो इसके लिए आपको मेरा समाधान करा देना चाहिए। और मैं आपको यह कह देना चाहता हूँ कि यह हो सकता है कि बहिष्कार का राष्ट्र-वाद से भी कोई सम्बन्ध न हो। यह विशुद्ध सुधार का प्रश्न भी हो सकता है, जैसा कि सर्वथा राष्ट्रवादी न होते हुए भी हम आपका कपड़ा लेने से इनकार कर सकते हैं और अपना आप तैयार कर सकते हैं। सुधारक के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह हमेशा किसीका इन्तजार करता बैठा रहे। यदि वह अपने विश्वास पर अमल नहीं करता, तो वह सुधारक हो ही नहीं सकता। या तो वह अत्यधिक जल्दबाज़ एवम् डरपोक है अथवा अत्यधिक काहिल अर्थात् सुस्त है। उसे सलाह अथवा बेरोमीटर (ताप-मापक यन्त्र) कौन दे? आप केवल अपनी अनुशासित अन्त-

रात्मा के आदेश के अनुसार ही चल सकते हैं और तब सत्य और अहिंसा के कवच से सब तरह के खतरों का मुक़ाबला कर सकते हैं। एक सुधारक इसके सिवा और कुछ कर नहीं सकता।"

इसके बाद सेना और भारत की अपना शासन-कार्य चलाने की शक्ति तथा ऐसे ही अन्य प्रश्नों पर चर्चा हुई। स्वशासन के कठिन कार्य के पहले क्या भारत कुछ दिनों प्रतीक्षा नहीं कर सकता? यदि हम अपने सैनिक भेजें, तो उनके प्राणों के लिए भी हमें ज़िम्मेवर रहना होगा, और इसलिए क्या यह नहीं हो सकता कि आप जितनी जल्दी भारतीय सेना रख सकें, उतना ही अच्छा? मुस्लिम वर्ग ने पिछले वर्ष एकमत से यह बात कही थी कि हमें केन्द्रीय शासन में उत्तरदायित्व की आवश्यकता नहीं। ऐसी दशा में हम निर्णय किस तरह करें?

गाँधीजी ने इन प्रश्नों का उत्तर कुछ इस प्रकार दिया, "संक्षेप में आप यह क्यों नहीं कहते कि आप हम पर विश्वास न करेंगे।

ग़लती करने की स्वतन्त्रता

आप हमें भूल करने की आज़ादी दे दीजिए। यदि हम आज अपने घर का काम नहीं सम्भाल सकते, तो वह हम कबतक कर सकेंगे यह कौन कह सकता है? मैं नहीं चाहता कि इसका निश्चय आप करें। जान में अथवा अनजान में आप अपनेको विधाता मान बैठे हैं। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि एक क्षण के लिए

आप इस सिंहासन से नीचे उतरें। हमें हमारे भरोसे पर छोड़ दीजिए। आज एक छोटे-से राष्ट्र के पैरों के नीचे सारी मानव-जाति कुचली जा रही है, इससे भी बदतर कुछ और हो सकता है, इसकी मैं कल्पना ही नहीं कर सकता।

"और आपके-अपने सोलजरों या सैनिकों के प्राणों के लिए जिम्मेवर रहने की यह बात क्या है? मैं भारत की सेना में भरती होने के लिए सब विदेशियों के नाम एक नोटिस प्रकाशित करूँगा और उस पर यदि कुछ अंग्रेज़ भरती होना चाहेंगे तो क्या आप उन्हें रोक देंगे? यदि वे भरती होंगे, तो जिस तरह किसी भी दूसरे देश की सरकार की नौकरी करने पर वह उनके प्राणों के लिए उत्तरदायी रहती है, उसी तरह हम भी रहेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सेना का नियन्त्रण ही स्वराज्य की कुञ्जी है।

हमारा रणक्षेत्र

"सर्व-सम्मत माँग के सम्बन्ध में, जैसा कि मैं अबतक कई बार कह चुका हूँ, मैं यही कहूँगा, कि आपके अपनी पसन्द के बुलाये हुए लोगों से आप सर्व-सम्मत माँग की आशा नहीं कर सकते। मेरा यह दावा है कि महासभा सबसे अधिक भारतीयों की प्रतिनिधि है। ब्रिटिश मन्त्री इस बात को जानते हैं। यदि वे इस बात को नहीं जानते, तो मैं अपने देश को वापस जाऊँगा, और जितना अधिक-से-अधिक संभव हो सकता है लोकमत संग्रह करूँगा। हमने जीवन और

मरण का संग्राम लड़ा है। अंग्रेजों में से एक शरीफ़-से-शरीफ़ अंग्रेज़ ने हमें कसौटी पर चढ़ाया और हमें किसी तरह कम नहीं पाया। नतीजा यह हुआ कि उसने जेल के दरवाजे खोल दिये और महासभा से गोलमेज़ परिषद् में शरीक होने के लिए अपील की। हमने कई दिनों तक लम्बी बातचीत और सलाह-मशविरा किया, इस अर्से में हमने अधिक-से-अधिक धीरज रक्खा और परिणाम में एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार महासभा ने गोलमेज़ परिषद् में शरीक होना मंजूर किया। सरकार ने इस समझौते का पालन करने की अपेक्षा भंग ही अधिक किया, और इसलिए मैं बड़ी हिचकिचाहट के बाद यहाँ आने पर रज़ामन्द हुआ और वह भी सिर्फ उस शरीफ़ अंग्रेज के साथ किये हुए वादे को पूरा करने के लिए। यहाँ आने पर मैं देखता हूँ कि भारत और कॉंग्रेस के विरोध में खड़ी हुई शक्तियों का मेरा अन्दाज़ ग़लत था। किन्तु मैं इससे हताश नहीं होता। मुझे वापिस जा कर अपने को योग्य बनाना है और कष्ट-सहन के ज़रिये यह साबित करना है कि सारा देश जो माँगता है, वास्तव में उसकी उसे आवश्यकता है। हण्टर ने कहा है कि युद्धक्षेत्र में प्राप्त विजय सत्ता प्राप्ति का छोटे से छोटा मार्ग है। किन्तु हम सफलता के लिए दूसरे प्रकार के रणक्षेत्र पर लड़े हैं। मैं आपके शरीर को छूने की अपेक्षा आपके हृदय को स्पर्श करने का प्रयत्न कर रहा

हूँ। यदि मैं इस बार सफल नहीं होता हूँ, तो अगली बार सफल होऊँगा।"

इस बातचीत का परिणाम यह हुआ कि जिस समय गाँधीजी इन मित्रों से बिदा हुए तब, वह आये उस समय की अपेक्षा, उनके परस्पर के विचारों में अधिक साम्य था और निश्चय ही दोनों पक्ष एक-दूसरे को अधिक गहराई से समझ सके थे।

गाँधीजी ने अछूतों को जो पृथक् निर्वाचक-मण्डल देने से साफ़ इनकार कर दिया है, यह पहेली सब सभाओं में पैदा होती है और गाँधीजी से इस सम्बन्ध में अपनी स्थिति समझाने के लिए कहा जाता है। इस सम्बन्ध में उन्होंने भारतीय विद्यार्थियों की सभा में जो-कुछ कहा और जिसका विवरण दूसरे मौक़ों पर भी दिया, उसका सार मैं यहाँ देता हूँ।

"मुसलमान और सिख सब सुसंगठित हैं। अछूतों की यह बात नहीं है। उनमें राजनैतिक जागृति बहुत ही कम है और उनके साथ ऐसा भयङ्कर बरताव होता है कि मैं उनका विरोधी बन कर भी उससे उनकी रक्षा करना चाहता हूँ। यदि उनका पृथक् निर्वाचक-मण्डल होगा, तो गाँवों में, जो कि कट्टर रूढ़ी-प्रेमी हिन्दुओं के सुदृढ़ दुर्ग हैं, उनका जीवन दुःखद हो जायगा। अछूतों की युगों से उपेक्षा करने के पाप का प्रायश्चित्त तो उच्च वर्ग के

सदा के लिए अछूत?

हिन्दुओं को करना है। यह प्रायश्चित्त सक्रिय समाज-सुधार द्वारा और अछूतों की सेवा करके उनके जीवन को अधिक सह्य बना कर करना है, उनके लिए प्रथक निर्वाचक-मण्डल की माँग करके नहीं। उन्हें पृथक् निर्वाचक-मण्डल दे कर आप उन्हें और रूढ़ी-प्रेमी कट्टर हिन्दुओं को लड़ा मारेंगे। आपको यह बात समझ लेना चाहिए कि मुसलमानों और सिखों के लिए प्रथक् प्रतिनिधित्व के प्रस्ताव को मैं एक अनिवार्य बुराई मान कर ही सहन कर सकता हूँ। अछूतों के लिए वह निश्चित रूप से खतरा होगा। मेरा निश्चय है कि अछूतों के लिए प्रथक् निर्वाचक-मण्डल का प्रश्न शैतानी सरकार की आधुनिक घड़न्त है। केवल एक ही बात की आवश्यकता है, और वह यह कि मतदाताओं की सूची में उन्हें सम्मिलित कर दिया जाय और शासन-विधान में उनके लिए मौलिक अधिकारों की सुविधा रक्खी जाय। यदि उनके साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार हो और उनके प्रतिनिधि को जान-बूझ कर अलग रक्खा जाता हो, तो उन्हें अधिकार होगा कि वे विशेष 'निर्वाचन-न्यायमण्डल' की माँग करें, जो उनकी पूरी तरह रक्षा करेगा। इन न्यायमण्डलों को यह खुला अधिकार होना चाहिए कि वे चुने हुए उम्मीदवार को हटा कर अलग रक्खे गये उम्मीदवार को चुनने का हुक्म दे सकें।

"अछूतों के लिए प्रथक् निर्वाचक-मण्डल उनका दासत्व

सदैव के लिए टिकाये रक्खेगा। प्रथक् निर्वाचक-मण्डल से मुसलमानों का मुसलमान होना कभी नहीं छूटेगा। क्या आप चाहते हैं कि अछूत भी सदैव के लिए 'अछूत' बने रहें? प्रथक् निर्वाचक-मण्डल इस कलङ्क को चिरस्थायी बना देगा। जिस बात की ज़रूरत है, वह है अस्पृश्यता के निवारण की, और इतना होने के बाद उद्धत 'उच्च' वर्ग ने 'निम्न' वर्ग पर जो प्रतिबन्ध लगा रक्खे हैं वे दूर हो जायँगे। इन प्रतिबन्धों के दूर हो जाने पर आप किसे प्रथक् निर्वाचक-मण्डल देंगे? यूरोप का इतिहास देखिए। क्या आपके यहां मज़दूर वर्ग अथवा स्त्रियों के लिए प्रथक् निर्वाचक-मण्डल थे? बालिग़ मताधिकार देकर आप अछूतों को पूरा संरक्षण दे देते हैं। कट्टर-से-कट्टर रूढ़िवादी हिन्दू को भी मत लेने के लिए उनके पास पहुँचना होगा।

"आप पूछेंगे, कि तब उनके प्रतिनिधि डा० अम्बेडकर किस तरह उनके लिए प्रथक् निर्वाचक-मण्डल मांगते हैं? डा० अम्बेडकर के लिए मेरे हृदय में गहरा सम्मान है। उन्हें मेरे प्रति कटु होने का सब प्रकार से अधिकार है। यह उनका आत्म-संयम है कि वह हमारा सिर नहीं फोड़ डालते। आज वह आशङ्का और सन्देह से इतने अधिक घिरे हुए हैं कि उन्हें दूसरी बात कुछ सूझती ही नहीं। वह आज प्रत्येक हिन्दू को अछूतों का पक्का विरोधी मानते हैं और यह सर्वथा स्वाभाविक है। मेरे प्रारम्भिक

दिनों में दक्षिण-अफ्रिका में भी ठीक ऐसी ही बात हुई थी; वहाँ मैं जहाँ जाता, वहीं गोरे लोग अर्थात् यूरोपियन मेरे पीछे पड़ जाते। डा० अम्बेडकर अपना रोष प्रकट करते हैं, यह सर्वथा स्वाभाविक ही है। किन्तु वह जो पृथक् निर्वाचक-मण्डल चाहते हैं, उससे उनका सामाजिक सुधार न होगा। यह सम्भव है कि इससे उन्हें सत्ता और उच्चपद मिल जाय; किन्तु इससे अछूतों का कुछ भला न होगा। इतने वर्षों तक उनके साथ रहने और उनके सुख-दुख में शरीक होने के कारण मैं यह सब बात अधिकारपूर्वक कह सकता हूँ।"

इंग्लैण्ड की विरासत

यह सर्वथा विद्यार्थियों की सभा थी, इसलिए इसमें सब तरह के प्रश्न पूछे गये। इनमें के कुछ तो ऐसे थे, जो इंग्लैण्ड में रहने वाले भारतीय विद्यार्थियों के ही पूछने योग्य थे।

एक प्रश्न यह था—"क्या आप अब भी इंग्लैण्ड की नेकनीयती पर विश्वास करते हैं ?" और उसका उन्हें जो उत्तर मिला उसे वे सदैव याद रक्खेंगे।

गाँधीजी ने कहा—"मैं इंग्लैण्ड की नेकनीयती में उसी हद तक विश्वास करता हूँ कि जिस हद तक मानव-स्वभाव की नेकनीयती में करता हूँ। मेरा विश्वास है कि सब मिला कर मानव-जाति की प्रवृत्ति हमें नीचे गिराने की नहीं प्रत्युत ऊँचा उठाने

की है और अज्ञात किन्तु निश्चित रूप से यह परिणाम प्रेम के नियम का है। मानवजाति का अस्तित्व बना हुआ है, यह बात यह सिद्ध करती है कि विनाश की अपेक्षा जीवन-शक्ति बड़ी है। और मैं तो केवल प्रेम का काव्य ही जानता हूँ, इसलिए मैं अंग्रेज़ जाति पर जो विश्वास रखता हूँ, वह देख कर आपको आश्चर्यान्वित न होना चाहिए। मैं कई बार कटु हो उठा हूँ और कई बार मैंने अपने मन में कहा है, 'इस आपत्ति का अन्त कब होगा? ये लोग इस ग़रीब जनता को लूटने से कब बाज़ आयँगे?' किन्तु मुझे अन्तरात्मा से अपने-आप उत्तर मिलता है, 'इन्हें यह विरासत रोम से मिली है।' इसलिए मुझे प्रेम-धर्म के आदेश के अनुसार ही चलना चाहिए, और यह आशा रखनी चाहिए कि आगे चलकर अंग्रेजों के स्वभाव पर असर हुए बिना न रहेगा।"

प्र०—"भारत को उद्योगवादी बनाये जाने के सम्बन्ध में आपका क्या मत है?"

उ०—"मुझे भय है कि उद्योगवाद मानव-जाति के लिए शाप-रूप सिद्ध होगा। एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र को लूटना हमेशा जारी रह नहीं सकता। उद्योगवाद का आधार आपकी लूटने की शक्ति, विदेशों के बाजार आपके लिए खुले रहने और प्रतियोगिता करनेवालों के अभाव पर निर्भर है। ये बातें दिन-प्रतिदिन इंग्लैण्ड के लिए कम होती जा रही हैं, यही

उद्योगवाद

कारण है कि प्रतिदिन उसके बेकारों की संख्या में असंख्य वृद्धि हो रही है। भारत का बहिष्कार तो केवल एक ततैये का दंश-मात्र था। और जब इंग्लैण्ड का यह हाल है, तो भारत जैसा विशाल देश उद्योगवादी बन कर लाभ उठाने की आशा नहीं कर सकता। वास्तव में यदि भारत दूसरे राष्ट्रों को लूटने लगे—और यदि वह उद्योगवादी बने तो ऐसा किये बिना उसका छुटकारा नहीं—तो वह दूसरे राष्ट्रों के लिए शाप-रूप और संसार के लिए खतरा बन जायगा। और दूसरे राष्ट्रों को लूटने के लिए मैं भारत को उद्योगवादी बनाने की कल्पना क्यों करूँ ? क्या आप आज की दुःखद स्थिति को नहीं देखते ? हम अपने ३० करोड़ बेकारों के लिए काम तलाश कर सकते हैं, किन्तु इंग्लैण्ड अपने ३० लाख बेकारों के लिए कोई काम नहीं तलाश कर सकता और आज उसके सामने जो प्रश्न आखड़ा हुआ है वह उसके बुद्धिमान-से-बुद्धिमान लोगों को परेशान कर रहा है ! उद्योगवाद का भविष्य अंधकारपूर्ण है। इंग्लैण्ड को अमेरिका, जापान, फ्रान्स और जर्मनी सफल प्रतियोगी मिले हैं और भारत की मुट्ठीभर मिलों की भी उसके विरुद्ध प्रतियोगिता है। और जिस तरह भारत में जागृति हुई है, उसी तरह दक्षिण-अफ्रिका में भी होगी। उसके पास तो प्राकृतिक खानों और मनुष्यों का विशाल साधन है। बलिष्ठ अंग्रेज, बलिष्ठ अफ्रिकन जाति के सामने, महज बौने

दिखाई देते हैं। आप कहेंगे कि कुछ भी हो वे शरीफ़ जंगली हैं। अवश्य ही वे शरीफ़ हैं, किन्तु जंगली नहीं और कुछ ही दिनों में पश्चिम के राष्ट्र अपने सस्ते माल की बिक्री के लिए अफ्रिका के द्वार बन्द हुए देखेंगे। और यदि उद्योगवाद का भविष्य पश्चिम में काला हो तो क्या वह भारत के लिए उससे भी अधिक काला सिद्ध न होगा ?"

प्र०—"आई. सी. एस. के विषय में आपका क्या मत है ?"

उ०—"आई. सी. एस. इण्डियन सिविल सर्विस नहीं प्रत्युत इ. सी. एस. अर्थात् इंग्लिश सिविल सर्विस है। मैं यह बात यह जान कर कह रहा हूँ कि इसमें कुछ भारतीय भी हैं। जब कि भारत एक गुलाम देश है, वे इंग्लैण्ड के हित के सिवा दूसरी बात कर ही नहीं सकते। किन्तु मान लीजिए कि योग्य अंग्रेज भारत की सेवा करना चाहते हैं, तो वे वास्तव में राष्ट्रीय सेवक होंगे। इस समय तो वे आई. सी. एस. नाम धारण कर लुटेरी सरकार की सेवा करते हैं। भारत के स्वतन्त्र होने के बाद अंग्रेज या तो साहसिक वृत्ति से या प्रायश्चित्त करने के लिए भारत में आयेंगे, छोटी तनख़्वाहों पर सेवा करेंगे, और असह्य भारी वेतन लेकर इंग्लैण्ड को भी मात कर देनेवाली फ़िजूल-ख़र्ची से रहने और इंग्लैण्ड की आबहवा को भारत में पैदा करने का प्रयत्न कर ग़रीबों पर बोझरूप होने की

आई.सी.एस

अपेक्षा भारत की आबहवा की कठोरता सहन करेंगे। हम उन्हें सम्मानित साथियों की तरह रक्खेंगे, किन्तु यदि उनको हमपर हुकूमत चलाने और अपने-आपको उच्च वर्ग का मानने की अन्दर-ही-अन्दर जरा-सी भी इच्छा होगी, तो हमें उनकी आवश्यकता नहीं।"

प्र०—"क्या आपका कहना है कि आप स्वतन्त्रता के लिए पूर्णतः योग्य हैं?"

उ०—"यदि हम योग्य नहीं हैं, तो होने का प्रयत्न करेंगे। किन्तु योग्यता का तो प्रश्न ही नहीं उठता; और इसका केवल यही

भारत और साम्राज्य

सीधा-सादा कारण है कि जिन लोगों ने हमारी स्वतन्त्रता छीन ली है, उन्हें ही वह वापस देनी है।। मान लीजिए कि अपने आचरण के लिए आपको पश्चात्ताप होता है, तो आप यह पश्चात्ताप हमें अकेला छोड़कर ही प्रकट कर सकते हैं।"

प्र०—"किन्तु औपनिवेशिक स्वराज्य पर ही आप रजामन्द क्यों नहीं होते? बात यह है कि अंग्रेज औपनिवेशिक स्वराज्य का अर्थ समझ सकते हैं, साझेदारी क्या चीज़ है, यह वे नहीं जानते; और औपनिवेशिक स्वराज्य का क़रीब-क़रीब वही अर्थ है, जो आप चाहते हैं। जब कि आपको वह दिया जाता है, तो जिस तरह आयर्लैण्ड ने स्वयं ही 'फ्री स्टेट' पद को स्वीकार कर

लिया, आप भी उसे स्वीकार क्यों नहीं कर लेते ? क्या आपकी साझेदारी का अर्थ उससे कुछ जुदा है ?

उ०—"मेरे सामने यह बात पेश कीजिए, मुझे उसकी जाँच करने दीजिए, और यदि मैं देखूँगा कि आपके पेश किये हुए औपनिवेशिक स्वराज्य का अर्थ स्वतन्त्रता ही है तो मैं उसे तुरन्त स्वीकार कर लूँगा। किन्तु मैं यह सिद्ध करने की जिम्मेदारी उन्हींपर डालूँगा, जो कहते हैं कि औपनिवेशिक स्वराज्य और स्वतन्त्रता एक ही बात है।"

× × ×

रेले क्लब के सदस्यों के साथ की बातचीत अत्यन्त आकर्षक थी, क्योंकि ये सदस्य सब उपनिवेशों से आये हुए विद्यार्थी थे। उनकी नस-नस में साम्राज्यवाद की कल्पना भरी हुई थी और वे राजनीति का सूक्ष्म अध्ययन करनेवाले थे। उनका प्रत्येक प्रश्न सीधा और तत्त्व की बात पर था और इसलिए मैं इस सम्भाषण का अधिकांश भाग यहाँ देने के लिए उत्सुक हूँ।"

प्र०—"आप भारत का साम्राज्य से किस हद तक सम्बन्ध-विच्छेद करेंगे ?"

उ०—"साम्राज्य से पूरी तरह; और यदि मैं भारत को लाभ पहुँचाना चाहता हूँ, तो ब्रिटिश राष्ट्र से जरा भी नहीं। ब्रिटिश साम्राज्य केवल भारत के ही कारण साम्राज्य है। उस साम्राज्य-

पन का अवश्य अन्त होना चाहिए और मैं ब्रिटेन के सब सुख-दुःख में भाग लेता हुआ उसके और सब उपनिवेशों के साथ समान साझेदार बनना पसन्द करता हूँ। किन्तु यह साझेदारी बराबरी के दर्जे की होनी चाहिए।"

प्र०—"इंग्लैण्ड के दुःख में भारत किस हद तक हिस्सा लेने के लिए तैयार होगा?"

उ०—"पूरी तरह।"

प्र०—"क्या आप समझते हैं कि भारत अपने भविष्य को अविच्छिन्न रूप में इंग्लैण्ड के साथ जोड़ने के लिए एकमत हो जायगा?"

उ०—"हाँ, जबतक वह साझेदार। रहेगा। किन्तु यदि उसे मालूम हो कि यह साझेदारी राक्षस और बौने की साझेदारी-सी है, अथवा उसका उपयोग संसार के दूसरे राष्ट्रों को लूटने के लिए होता है, तो उस समय वह साझेदारी को तोड़ डालेगा। उसका उद्देश्य संसार के सब राष्ट्रों का कल्याण साधन करना है, और यदि यह सम्भव न हो सकता हो तो कृत्रिम साझेदारी की पैबन्द लगाने के बजाय मुझमें युगों तक प्रतीक्षा करने का धैर्य है।"

प्र०—"किसी राष्ट्र को लूटना और उसके साथ व्यापार करना इन दोनों बातों को आप किस प्रकार भिन्न करेंगे?"

कि कूटनीति के आसानी से हम शिकार बन जाते हैं।"

प्र०—"क्या आप खयाल करते हैं कि ब्रिटिश सरकार को साम्प्रदायिक समस्या का हल सुझाना चाहिए ?"

उ०—"नहीं। किन्तु इस 'नहीं' कहनेवाले पक्ष में मैं अकेला ही हूँ। यह अपमानजनक बात है और न तो महासभा और न मैं ही इसमें शरीक हो सकते हैं। किन्तु मैंने एक न्यायकारी मण्डल की सूचना की है। यद्यपि सब सरकारी योजनायें केवल राजनैतिक उद्देश्य की सिद्धि के लिए हैं, फिर भी भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारों के खरीतों में सरकार की ओर से कुछ बातें तो स्वीकार की गई हैं। हमारे विषय में प्रत्येक पक्ष न्याय की बात करता है, किन्तु पंचायत से दूर भागता है; इससे सिद्ध होता है कि जहाँ तक सम्भव हो सके अधिक-से-अधिक धरना लेने की चाल पूरी तरह चल रही है, और कौन गलत और कौन ठीक है यह केवल थोड़े-बहुत अंश का ही सवाल है। जुदे-जुदे दावों के प्रति न्याय-मण्डल न्याय करेगा, यह आशा उससे अवश्य की जा सकती है।"

प्र०—"इस न्याय-मण्डल में कौन होंगे, यह आप कह सकेंगे ?"

उ०—"उसमें हिन्दुस्थान की हाइकोर्ट के न्यायाधीश, जो हिन्दू और मुसलमान न हों, होंगे और प्रिवी कौन्सिल के न्यायाधीश होंगे।"

प्र०—"उनका निर्णय स्वीकार कर लिया जायगा ?"

उ०—"अदालत के निर्णय का स्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं हो सकता है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि इस सूचना के मूल में एक युक्ति भी है। सरकार यदि मेरी इस सूचना को स्वीकार करेगी तो सारा वायुमण्डल ही बदल जावेगा और न्याय-मण्डल नियुक्त किया जाय उसके पहले ही ये जातियाँ निबटारा कर लेंगी, क्योंकि अभी जो दिया जा रहा है उसमें राजनैतिक दृष्टि रखनेवालों को सन्तोष हो उसके लिए काफ़ी गुञ्जाइश है और हरएक अपनी माँग में जो त्रुटि है उसे जानता है।"

× × ×

आक्सफोर्ड से हम लौटे, परन्तु उसकी मधुर-से-मधुर स्मृति लेकर। उसमें सबसे अधिक मधुर स्मृति है डा० लिण्डसे और उनकी पत्नी की, जिनके यहाँ हम ठहरे थे। एक सम्भाषण में गाँधीजी को जनरल डायर और अमृतसर में लोगों को जिस गली में पेट के बल चलाया गया था उसका उल्लेख करना पड़ा। श्रोतागण ऐसी सहानुभूति अनुभव करनेवाले थे कि उनमें कुछ लोगों को उसके वर्णनमात्र से कँपकँपी आगई। सभा के अन्त में श्रीमती लिण्डसे गाँधीजी के पास आईं और मधुरता से बोलीं, "यदि आप इसे योग्य प्रायश्चित्त समझें तो हम पचास बार पेट के बल चलने के लिए तैयार हैं।" गाँधीजी ने कहा, "नहीं, नहीं, ऐसा

करने की कोई जरूरत नहीं है। कोई भी ऐसा करे, यह मैं नहीं चाहता। मैं या आप स्वेच्छापूर्वक पचास बार पेट के बल चलें, परन्तु यदि मैं किसी अंग्रेज लड़की को जबरदस्ती पेट के बल चलने पर मजबूर करूँ तो ? वह मुझे लात मारेगी और वह, सर्वथा उचित ही होगा। मुझे तो आपको वीभत्सता का एक उदाहरण मात्र देना था। प्रायश्चित्त तो यही चाहिए कि अंग्रेज लोग भारत में मालिक बन कर नहीं, सेवक बन कर रहें।" बैलि-यल के आचार्य एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो प्रजातन्त्र की समस्याओं पर अक्सर सोचते और लिखते रहे हैं, इसलिए स्वतन्त्र भारत के भविष्य के विषय में वह स्वभावतः सावधान हैं और जहाँ तक सम्भव हो सके इस सम्बन्धी आपत्ति को टालने के लिए बड़े चिन्तित हैं। लेकिन यदि कोई आपत्ति उठ ही खड़ी हो, और उसमें महान् कष्ट-सहन का काम पड़े, जैसा कि गाँधीजी के नेतृत्व में होनेवाले किसी भी आन्दोलन में होगा, तो मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि डा० लिण्डसे की सहानुभति पूर्णतया हमारे ही प्रति होगी। भविष्य-सम्बन्धी कुछ बातचीत के बाद जैसे ही हम आराम करने को जा रहे थे, उन्होंने अपने विस्तृत पुस्तकागार में से एक पुस्तक निकाली और उसमें से जान ब्राउन सम्बन्धी निम्न महत्वपूर्ण अंश मुझे पढ़कर सुनाया:—

"Sometimes there comes a crack in Time itself,
Sometimes the earth is torn by something blind,
Sometimes an image that has stood so long
It seems implanted as the polar star
Is moved against an unfathomed force
That suddenly will not have it any more.
Call it the *mores*, call it God or Fate,
Call it Mansoul or economic law
That force exists and moves.
And when it moves
It will employ a hard and actual stone
To batter into bits an actual wall
And change the actual scheme of things.

John Brown

Was, such a stone—unreasoning as the stone
Destructive as the stone, and if you like,
Heroic and devoted as such a stone.
He had no gift for life, no gift to bring
Life but his body and a cutting wedge,
But he knew how to die"

बैलियल के आचार्य के तत्त्वज्ञान में यदि जान ब्राउन को

स्थान है, तो इसमें सन्देह नहीं कि गाँधीजी के लिए तो बहुत ही गुञ्जाइश होगी, जिन्होंने कि जान ब्राउन के उपायों को सम्पूर्ण करके बतला दिया है।

गाँधीजी ने विलायत पहुँचते ही तुरन्त ही कर्नल मैडक के बारे में पूँछताँछ आरम्भ कर दी थी। कर्नल मैडक एक दिन आये और

कर्नल मैडक

रीडिंग के पास के अपने मकान पर आने के लिए गाँधीजी से आग्रह कर गये। उन्होंने कहा, 'मेरी पत्नी ने आपके लिए अच्छे फल-फूल और शाक-भाजी चुन रक्खे हैं।' सौभाग्य से ईटन और आक्सफोर्ड जाने के लिए रीडिंग होकर जाना होता है, इसलिए गाँधीजी ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। सात वर्ष के बाद मिलने पर गाँधीजी और मैडक-दम्पति दोनों को बड़ा आनन्द हुआ। गाँधीजी ने आभार प्रदर्शित करते हुए श्रीमती मैडक से कहा—"आपके पति ने मुझ-पर सफल शस्त्र-प्रयोग न किया होता तो मैं आज आपसे मिलने यहाँ न आ सकता।" कर्नल मैडक को उनके जीवन के सायं-काल के समय बीस वर्ष के युवक के से उत्साह से संशोधन का कार्य करते और विस्मित कर देने जितने अधिक विषयों में संलग्न देखना, मेरे लिए तो बड़े सौभाग्य की बात थी। वह कुशल बाग़-वान हैं और उनके सुन्दर बगीचे में भांति-भांति के फूल और फल के वृक्ष हैं। उनपर वह तरह-तरह के प्रयोग करते हैं। उन्हें

दुग्धालय के काम में भी इतनी ही दिलचस्पी है और गायों के क्षय के कारणों की शोध करते हुए उन्होंने गायों के खाने के घास पर विचित्र प्रयोग किये हैं। उत्तम मक्खन पैदा करनेवाले परमाणुओं पर उन्होंने दिन-के-दिन बिता दिये और उसमें सफलता प्राप्त की, परन्तु उन्हें उसमें आर्थिक लाभ नहीं मालूम हुआ। वह घर के उपयोग के लिए पेट्रोल से गैस बनाते हैं और हमेशा काम में लगे रहते हैं। श्रीमती मैडक ने कहा, "गाँधीजी, मैंने आपको पूना में देखा था, उससे बुड्ढे तो आप बिलकुल नहीं मालूम पड़ते।" ठीक इसी प्रकार मुझे भी कहना चाहिए कि कर्नल मैडक जैसे पूना में थे उससे बुड्ढे नहीं दिखलाई दिये। बल्कि शायद किसी क़दर वह उससे कम उम्र ही दिखाई पड़े, क्योंकि अब वह अपने ओहदे के जंजाल से मुक्त थे और अपने मन-मुआफ़िक काम करने के लिए स्वतन्त्र थे। जिस तरह कर्नल मैडक अपने समय का मूल्यवान उपयोग कर रहे हैं उसी प्रकार सभी लोग नौकरी से अलग होने पर अपने समय का सदुपयोग करें, तो क्या अच्छा हो !

परावलम्बी ब्रिटिश जनता

यह बड़ा अच्छा हुआ कि श्री होराबिन तथा कृष्णा मेनन ने कामनवैल्थ ऑफ इण्डिया लीग के अन्तर्गत गाँधीजी के स्वागत-सम्मान का विचार किया। श्री होराबिन ने स्वराज्य-सम्बन्धी भारतीय माँग के प्रति

लीग के जोरदार समर्थन का गाँधीजी को आश्वासन दिया और गाँधीजी से यह बताने के लिए कहा कि किस प्रकार वे मदद करें, जो बहुत उपयोगी साबित हो। गाँधीजी ने कहा—हिन्दुस्थान के सम्बन्ध में सच्चा ज्ञान फैलाइए, और अंग्रेज प्रजा को जिस झूठे इतिहास पर पाला गया है उसका स्थान सच्चे ज्ञान को दिलाइए। विलायत के पत्र जान-बूझ कर सच्ची बात को दबा कर झूठी बातें फैलाते हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने चटगाँव और हिजली के अत्याचार और विलियर्स और डूर्नो पर हुए आक्रमण का सबल उदाहरण दिया। चटगाँव और हिजली के अत्याचार, जिनके कारण वयोवृद्ध और बीमारी के बिछौने पर पड़े हुए कविवर का पुण्य प्रकोप भड़क उठा और उन्होंने अपने एकान्तवास का त्याग किया, उनका तो केवल नाम ही विलायत के पत्रों में आया है। परन्तु यह बताना न चूके कि ये क़ैदी दुष्ट हैं और वे गोली से मार देने लायक़ हैं। गाँधीजी ने कहा, "ये दोनों खूनी हमले दुःखदायक और लज्जाजनक हैं और मेरी परेशानी के बायस हैं। परन्तु यदि आप इन्हें इतना बड़ा रूप देते हैं, तो चटगाँव और हिजली को क्यों नहीं देते? कार्य-कारण का नियम तो अटल है। केवल सन्देह पर ही बिना मुक़दमा चलाये अनिश्चित मुद्दत के लिए इन नौजवानों को क़ैद में रक्खा जाता है, उन्हें दबा कर कुचल डाला जाता है। उनके कुछ मित्र गुमराह होते हैं और

बैर लेने का प्रयत्न करते हैं। इन कृत्यों की मुझसे अधिक कोई निन्दा करे, यह संभव नहीं है; क्योंकि मुझे दोनों तरफ़ की हिंसा के प्रति तिरस्कार है, और मुझे मेरे पक्ष की हिंसा अधिक कष्टप्रद मालूम होती है। मेरी स्वार्थ-बुद्धि यह है कि यह हिंसा मेरे काम में बाधा डालती है। यह बात ठीक है कि वे लोग महासभावादी नहीं हैं, परन्तु यह जवाब मेरे लिए नहीं हो सकता। क्योंकि वे हैं तो हिन्दुस्थानी ही; और इससे यह ज़ाहिर होता है कि महासभा उनकी प्रवृत्ति पर अङ्कुश रखने और उनका पागलपन रोकने में असमर्थ है। परन्तु यह न भूलना चाहिए कि इसका दूसरा पहलू भी है—भारत जैसे विशाल देश में इतने कम हिंसक अत्याचार होते हैं, यही आश्चर्य की बात है, क्योंकि चटगाँव और हिजली जैसे जंगली अत्याचारों के विरुद्ध दूसरे किसी भी देश में चारों ओर खुला बलवा हो गया होता। मैं चाहता हूँ कि अखबार सारा सत्य प्रकट करें। उसके बदले यहाँ मौन और झूठे और अपूर्ण विवरण प्रकट करने के षड्यन्त्र हो रहे हैं।"

उपस्थित जनों पर इसका असर हुआ और रेवरेण्ड बेल्डन ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसमें ब्रिटिश पत्रों से प्रार्थना की गई कि वे पूरी और सच्ची बातें प्रकाशित करने की आवश्यकता समझें, साथ ही इसमें यह चेतावनी भी दी गई कि सच्ची बातों का दबाना हिन्दुस्थान और इंग्लैण्ड दोनों के प्रति बड़ा अन्याय

है। प्रस्ताव को पेश करते हुए रेव० बेल्डन ने एक जोरदार वक्तृता दी और गाँधीजी को आश्वासन दिया कि हिन्दुस्थान में यदि सत्याग्रह जारी करना पड़े तो फिर उसके साथ-साथ इंग्लैण्ड में भी सत्याग्रह- आन्दोलन होगा। प्रगति-विरोधी पत्रों के प्रतिनिधि इन सब बातों को बर्दाश्त नहीं कर सके, इसलिए उन्होंने इसका विरोध किया और कहा कि यह प्रस्ताव तो इंग्लैण्ड के अख़बारों के लिए अपमानपूर्ण है। उसमें से एक ने तो यहाँतक कह डाला कि गाँधीजी हमें समाचार ही नहीं देते, हालाँ कि हमारी कम्पनी ने इसके बदले में उनकी चलती-बोलती तस्वीर लेने का भी आग्रह किया था। इस मित्र ने, अपने साथ, दूसरों को भी गाँधीजी के आगे ला घसीटा; और उन सबको पराजित करते हुए गाँधीजी ने कहा—"अच्छा, सुनिए, जो मित्र अन्त में बोले उनके लिए तो अन्य किसी बात की अपेक्षा व्यापारिक बात ही मुख्य है। पर दूसरों के सामने मैं एक महत्वपूर्ण बात रखता हूँ। चटगाँव और हिजली में जो-कुछ हुआ मैं उन्हें उसका सच्चा-सच्चा हाल बतलाना चाहता हूँ। क्या वे उसे प्रकाशित करेंगे? दूसरी महत्व की बात और सुनिए। जब-तक मैं यहाँ पर हूँ, मुझे उनके लिए, बिना किसी मुआविज़े की आशा के, रोज़-ब-रोज़, भारत के समाचार मिलते रहते हैं। क्या वे उन समाचारों को प्रकाशित करेंगे?" इसपर सन्नाटा छा

गया, विरोध और प्रतिवाद की आवाजें बन्द हो गईं, और सिर्फ उन दो-तीन की तटस्थता के साथ प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

[४]

जब हम ईटन जा रहे थे तो पहला प्रश्न गाँधीजी ने यही किया क्या ईटन वही स्कूल है, जहाँ जवाहरलालजी पढ़ चुके हैं?

केम्ब्रिज

मैंने उन्हें बताया कि वह स्थान हैरो है, ईटन नहीं—इसपर, कुछ अत्युक्ति न समझिए, गाँधीजी का कुछ उत्साह तो वहीं ठण्डा हो गया। अतः पाठक समझ सकते हैं कि गाँधीजी केम्ब्रिज जाने के लिए उत्सुक क्यों थे। यह जवाहरलालजी और श्री एण्डरूज़ का केम्ब्रिज है और जब एण्डरूज़ उनको सुबह घूमने ले गये तो गाँधीजी ने ट्रिनिटी कालेज के विशाल मैदान में से होकर चलने की इच्छा प्रकट की क्योंकि जवाहरलालजी ट्रिनिटी कालेज में पढ़ चुके हैं। इसे आप भावुकता समझिए या और कुछ, यह तो मनुष्य-स्वभाव ही है और गाँधीजी, अन्य पुरुषों की तरह, उससे बरी नहीं हो सकते। ट्रिनिटी कालेज में जवाहरलालजी ही नहीं बल्कि टेनीसन, बेजल, न्यूटन आदि भी पढ़ चुके हैं; परन्तु हम उसे कभी नहीं देखते, यदि हमको यह न मालूम होता कि यहीं जवाहरलालजी पढ़ चुके हैं—जैसे हमने क्राइस्ट चर्च को नहीं देखा,

हलांकि वहाँ वर्ड्स्वर्थ पढ़ चुके हैं। यही पेम्ब्रोक के लिए कहा जा सकता है—वह हमको इसीलिए प्रिय है कि वहाँ श्री एण्डरूज़ पढ़ चुके हैं; इसलिए नहीं कि ग्रे और स्पेन्सर जैसे कवि वहाँ पढ़े थे। जब सन् १२६१ में आक्सफोर्ड में पहले कालेज की स्थापना हुई, कैम्ब्रिज की अभिलाषायें भी जाग उठीं और थोड़े ही काल में बेलियल और मार्टन के मुक़ाबले में केम्ब्रिज में पीटर हाउस की स्थापना हो गई। यह प्रतियोगिता बराबर जारी रही और दोनों को इंग्लैण्ड के महापुरुषों का वहाँ के विद्यार्थी होने का गर्व समान रूप से है। यदि कैम्ब्रिज में आक्सफ़ोर्ड से कम कालेज हैं तो वहाँ विद्यार्थियों की संख्या अधिक है। यदि आक्सफोर्ड में टेम्स नदी और उसके भव्य किनारे हैं तो केम्ब्रिज में वह 'बन्द' है, जहाँ केम नदी चक्कर काटती हुई वहाँ की भूमि को एक अत्यन्त सुन्दर भूस्थल होने का गर्व दिलाती है। इन कालेजों की स्थापना धार्मिक विचारों को लेकर हुई है और इसको याद दिलाने के लिए अब भी इन दोनों स्थानों पर 'चेपल' विद्यमान हैं। किंग्स कालेज (कैम्ब्रिज) का चेपल १५ वीं शताब्दी में छठे हेनरी ने बनवाया था और यह भवन निर्माण-कला का एक अद्भुत उदाहरण है, जिसको देखने इंग्लैण्ड के सभी यात्री आते हैं। कवि ग्रे ने अपनी प्रसिद्ध 'एलेजी' के ये शब्द इसी भवन से उत्साहित होकर लिखे थे:—

"Where through the long drawn aisle and frettad vault
The pealing anthem swells the not of praise"

इसकी खिड़कियों में जो रंगीन काच जड़े हैं उनमें ईसा के जीवन, मृत्यु और स्वर्गारोहण के चित्र चित्रित हैं और कहा जाता है कि काच की चित्रकारी में संसार भर में यहाँ की चित्रकला सर्वोपरि है। आश्चर्य तो यह है कि चित्रकार और राज यहीं के कालेजों के 'फेलो' (सदस्य) थे। इसीलिए वर्ड्स्वर्थ ने, जो यहीं के वातावरण में शिक्षित हुआ और जिसने इस चेपल में कई बार प्रार्थना कीहोगी, इसपर यह सुन्दर कविता लिखी है, जो रस और माधुर्य्य में अद्वितीय है:—

Tax not the royal Saint with vain expense,
With ill-matched aims the Architect who planned
(Albeit labouring for a scanty band
Of white-robed scholars only) this immense
And glorious work of fine intelligence !
—Give all thou can'st: high Heaven rejects the lore
Of nicely-calculated less or more:—
So deemed the man who fashioned for the sense
These lofty pillars, spread that branching roof
Self-poised, and scoop'd into ten thousand cells
Where light and shade repose, where music dwells
Lingering—and wandering on as loth to die;
Like thoughts whose very sweetness yieldeth proof
That they were born for immortality.

यह स्थान देखकर हमारे हृदयों में पुरातन नालन्द, तक्ष-शिला, पाटलि-पुत्र और काशी की नष्टप्राय संस्कृति के लिए सम-वेदना का अनुभव हो रहा था और जब गाँधीजी से किसी ने भारत की शिक्षा-प्रणाली के भविष्य के विषय में प्रश्न किया तो उन्होंने दुःख के साथ बंगलोर और बंबई के सफेद हाथियों (अर्वाचीन विद्यालयों) की ओर इशारा किया।

यदि आक्सफोर्ड के अध्यापकों को महासभा के देश की प्रतिनिधि-संस्था होने के दावे से परेशानी हुई थी, तो केम्ब्रिज के अध्यापकों को भारत के इंग्लैण्ड और साम्राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद की योजना से कम परेशानी नहीं हुई। पूर्ण स्वतंत्रता की बात कर इंग्लैण्ड को क्यों नाराज़ करते हो ? क्या भारत में अंग्रेज़ी राज्य ने हानि के सिवाय लाभ कुछ नहीं किया ? क्या ब्रिटिश सत्ता के अधिकार में रहता हुआ भारत स्वतंत्र सरकार वाले चीन से अच्छी हालत में नहीं है ? यदि गोरे सिपाही ग़ैर सरकार के नीचे रहकर नौकरी नहीं करना चाहते तो क्या कुछ काल के लिए शान्ति के नाते उनकी बातें नहीं मान लेनी चाहिएँ ? क्या स्थिति इतनी भया-नक हो चली है कि यदि पूर्ण अधिकार नहीं प्राप्त हुए तो भारत १० लाख जान की कुर्बानी कर देगा ? ऐसे-ही-ऐसे प्रश्न वहाँ चल रहे थे। पेम्ब्रोक के आचार्य के मकान में उस समय यूनीवरसिटी के सभी विद्वान मौजूद थे,जो गाँधीजी के मुख से भारत के विषय

में सुनने और यथा संभव सहायता देने के लिए जमा हुए थे। श्री एलिस बार्कर जैसे बड़े नामी प्रोफ़ेसर जिनका नाम प्राचीन और मध्यकालीन राजतंत्रों के अध्ययन के लिए प्रसिद्ध है; श्री वेज़ डिकिन्सन जैसे बड़ यग्य विद्वान जिनके पूर्वीय देशों के अध्ययन और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-स्थापना के प्रयत्न से हम भारत तक में परिचित हैं, डाक्टर जॉन मरे और डाक्टर बेकर आदि जैसे धर्मशास्त्र के प्रौढ़ पंडित भी वहाँ उपस्थित थे। उसी सभा में 'स्पेक्टे-टर' के श्री एल्विन रेंच भी थे जो ऐसी योजना की खोज में हैं जिससे इंग्लैंड और भारत के बीच शान्ति रहे और विरोध के मौक़े कम से कम आवें।

उनकी विद्वत्ता, उदारता और स्थिति को समझने और सहा-यता करने की सच्ची इच्छा आदि सद्गुणों का आदर करते हुए मैं कहूँगा कि आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज के इन विद्वानों में कोई ऐसा नहीं है, जो हेनरी केम्पबेल बेनरमेन की प्रसिद्ध उक्ति "सुराज्य स्वराज्य का काम नहीं दे सकता" का मर्म समझता हो। वे प्रश्न के नैतिक, न्यायिक और सहूलियत के पहलू पर विचार तो करते हैं, परन्तु उनमें कोई यह नहीं सम-झता कि उपर्युक्त उक्ति की सत्यता के आधार पर ही आगे बात चल सकती है। खैर अब मैं इनविभिन्न प्रश्नों पर जो विचार गाँधीजी ने प्रकट किये उनपर आता हूँ। ये बातें कई बार दुहराई जा चुकी है।

"साझा सदा बराबर की शर्तों पर होता है। दासता की चाहे जितने सुन्दर शब्दों में व्याख्या हो, वह साझे के बराबर नहीं हो सकती। अतः वर्तमान सम्बन्ध में एकदम परिवर्तन होने की आवश्यकता है, सम्बन्ध-विच्छेद चाहे न हो, पर सम्बन्ध मनुष्य-मात्र के हित को दृष्टि में रखते हुए हो। भारत स्वयं चाहे संसार की दलित जातियों का रक्त-शोषण नहीं कर सकता, परन्तु ब्रिटेन के सहयोग से अवश्य कर सकता है। साझे का अर्थ है इस रक्तशोषण का सदा के लिए बन्द हो जाना। यदि ब्रिटेन इसके लिए तैयार नहीं है तो भारत को उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेना ही उचित है। आवश्यकता इस बात की है कि ब्रिटेन अपनी इस रक्तशोषण-नीति में परिवर्तन करे। ऐसा हो जाने पर ब्रिटेन यह गर्व नहीं कर सकेगा कि उसके पास इतनी जल-सेना है कि जो समुद्रों और उसके द्वीपान्तर व्यापार की रक्षा कर सकती है।"

स्वतंत्र भारत और साझा

प्र०—"दक्षिण अफ्रिका के अधीनस्थ लोगों के बारे में क्या करना होगा ?"

उ०—"मैं यह हठ नहीं करूँगा कि हमारे साझे की पहली यह शर्त है कि ब्रिटेन पहले उनकी ओर भी अपनी नीति बदले। परन्तु मैं वहाँ की आदिम जाति के कष्ट-निवारण का प्रयत्न अवश्य करूँगाक्योंकि मुझे अनुभव है कि वे भी ब्रिटेन की शोषण-नीति के

शिकार हैं। हमारे गुलामी से मुक्त होने का अर्थ है कि वे भी स्वतंत्र हो जायँ। यदि यह संभव न हो तो मैं उस साझे में नहीं रहूँगा, चाहे वह भारत के भले के लिए ही हो। व्यक्तिगत रूप से तो मैं यही कहूँगा कि वह साझा मेरी जाति के योग्य होगा और मैं उसको सदा क़ायम रखने का प्रयत्न भी करूँगा, जिससे संसार इस शोषण-नीति से सदा के लिए बरी हो जायगा। भारत कभी किसी दशा में इस नीति का स्वागत नहीं करेगा और मेरी तो यह दृढ़ धारणा है कि यदि महासभा भी इस साम्राज्य-नीति को स्वीकार कर ले तो मैं उससे भी अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लूँगा।"

प्र०—"क्या महासभा अभी फिलहाल, जबतक अन्य प्रबन्ध न हो, दक्षिण अफ्रिका, कनाडा आदि के समकक्ष स्थान से संतुष्ट नहीं होगी ?"

उ०—"इस प्रश्न के उत्तर में 'हाँ' कह देने में मुझे ख़तरा मालूम होता है। यदि आप इससे किसी अधिक अच्छी और उच्च स्थिति की कल्पना करते हों, कि जिसे प्राप्त करने के लिए हमें फिर प्रयत्न करना होगा, तो मेरा उत्तर 'नहीं' है। और यदि वह स्थिति ऐसी आदर्श है कि फिर हमारी कोई अभिलाषा बाक़ी नहीं रहती, तो मेरा उत्तर 'हाँ' है। वह स्थान तो उपयुक्त तभी होगा, जब सर्व-साधारण तक को यह अनुभव होने लगे

कि वे पहले से सर्वथा विभिन्न अवस्था में हैं। अतः मैं थोड़े भी काल के लिए कोई नीचा दर्जा स्वीकार करने को तैयार नहीं हूँ। महसभा तो सर्वोत्तम स्थान से थोड़े भी नीचे स्थान से संतुष्ट नहीं होगी।"

प्र०—"इन राजाओं का क्या होगा, ये तो स्वाधीनता नहीं चाहते ?"

उ०—"हाँ, मैं जानता हूँ, वे नहीं चाहते। परन्तु वे तो मजबूर हैं, इसके सिवा कुछ कर ही नहीं सकते। वे तो ब्रिटिश सरकार के आज्ञा-पालक हैं। परन्तु ऐसे अन्य व्यक्ति भी तो हैं, जो ब्रिटिश-शस्त्रों ही को अपना रक्षक समझते हैं। मैं तो फ़ौज पर पूरा अधिकार मिले बिना कुछ भी न लूँगा। यदि भारत के सभी नेता मिलकर इस फ़ौजी अधिकार के प्रश्न पर अन्य कोई समझौता करलें तो भी मैं इससे बाहर रहूँगा, चाहे उसका विरोध न करूँ, लोगों को और त्याग करने और कष्ट सहने को न कहूँ। यदि कोई ऐसी रीति निकाली गई कि जिससे हमारी सब आशायें कुछ अर्से में मगर शीघ्र ही पूरी हो जाती हों, तो मैं उसे सहन कर लूँगा; परन्तु उसके लिए अपनी स्वीकृति नहीं दूँगा।

"परन्तु यदि आप यह कहें कि गोरी फ़ौजें राष्ट्रीय सरकार के अधीन रह कर काम नहीं करेंगी। तो मेरी सम्मति में तो यह ब्रिटेन और हमारे सम्बन्ध-विच्छेद का जबरदस्त कारण हो जायगा।

हम नहीं चाहते और न हम बरदाश्त करेंगे कि हमपर कब्ज़ा जमानेवाली फ़ौज यहाँ रहे। ऐसी किसी फ़ौज को भारतीय बनाने की योजना हमारे लिए लाभप्रद नहीं हो सकती है, जिसमें अन्ततः अधिकार गोरों के हाथ में हो और जिसमें हमारे अधिकार पाने की योग्यता पर वैसा ही सन्देह प्रकट किया जाता हो कि जैसा आज किया जा रहा है। सच्ची उत्तरदायित्त्वपूर्ण सरकार तो तभी स्थापित हो सकती है, जब अंग्रेज़ हमपर और हमारी योग्यता पर विश्वास करें। यह अशान्ति तो तभी दूर होगी, जब ब्रिटेन को यह विश्वास हो जायगा कि उसने भारत के साथ अन्याय किया है और वह उसके प्रायश्चित्त के लिए गोरी फ़ौजों को भारतीय मंत्रियों के अधिकार में दे देगा। क्या आपको डर है कि भारतीय मंत्रियों की मूर्खतापूर्ण आज्ञाओं से गोरे सिपाही मार डाले जायँगे? क्या मैं आपको याद दिलाऊँ कि गत बोअर-युद्ध में एक ऐसा अवसर आया था, जिसमें इंग्लैण्ड में उस युद्ध के ब्रिटिश जनरलों को गधे कहा गया था और गोरे सिपाहियों की वीरता की प्रशंसा की गई थी। अगर बड़े-बड़े ब्रिटिश जनरल भी ग़लती कर सकते हैं तो भारतीय मन्त्रियों को भी करने दो। ये भारतीय मंत्री निश्चय ही कमाण्डर-इन-चीफ़ और अन्य फ़ौजी विशेषज्ञों से सब बातों में परामर्श करेंगे, हाँ, आख़िरी ज़िम्मेदारी और अधिकार मंत्री का

होगा। तब कमांडर–इन–चीफ़ को स्वतंत्रता होगी कि वह आज्ञा-पालन करे या इस्तीफ़ा दे दे।

"स्वतन्त्रता का मूल्य खून से चुकाने का मेरा विचार आपको चौंका देता है। मैं हिन्दुस्थान की सब हालतों से वाक़िफ़ होने का दावा करता हूँ और इसलिए कहता हूँ कि हिन्दुस्थान एक-एक इंच करके आनेवाली मौत से मर रहा है। लगान की वसूली का अर्थ है किसानों के बालकों के मुँह से कौर छीन लेना। किसान अवर्णनीय कष्टों में से गुजर रहा है। इसका इलाज दरमियानी व्यवस्था नहीं है। क्या ब्रिटिश सरकार उसका मैं जो अर्थ करता हूँ वही अर्थ करती है? क्या वे हमारी मदद करने को अर्थात् हमारे हित के के लिए ही ब्रिटिश सोलजरों को रक्खेंगे? यदि यह बात है तो हम भी उन्हें रक्खेंगे और हमारे साधनों की अनुकूलता के अनुसार उन्हें तनख्वाह देंगे। परन्तु यदि प्रामाणिकता के साथ यह माना जाता हो कि हम नालायक़ हैं और ब्रिटिश अधिकार को ढीला नहीं करना चाहिए तो, यदि ईश्वर की ऐसी इच्छा है, हमें कष्ट-सहन की कसौटी में से गुजरना चाहिए। मैंने दूसरे लोगों के खून बहाने की बात नहीं कही है, क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि हिंसक दल मिटते जा रहे हैं। परन्तु हमारे अपने खून की गंगा बहाने की—प्राप्त स्थिति का सामना करने के लिए स्वेच्छापूर्वक शुद्ध-आत्मबलिदान करने की बात मैंने कही थी। यदि उसमें से

उसे गुज़रना ही चाहिए तो यह कष्ट-सहन भारत को लाभ ही पहुँचायगा। मैं खुद तो यह ख़याल नहीं करता कि क़ौमी दंगे, जिसका आपको भय है, होंगे। भारत की आबादी का ९० फ़ी सैकड़ा ग्रामवासी हैं और यह झगड़े शहर की १० फ़ी सैकड़ा आबादी में ही होते हैं। जिस मृत्यु में कुछ भी गौरव नहीं, ऐसीइस तुच्छ मृत्यु की अपेक्षा मैं उस खूनख़राबी को कुछ भी न गिनूँगा। बेशक, इसमें यह बात मान ली गई है कि भारत को जो विदेशी सेना उसपर क़ब्ज़ा किये हुए है उसका और दुनिया में सबसे ख़र्चीली सिविल सर्विस का इतना भारी खर्च देना पड़ता है कि उसे भूखों मरना पड़ता है। जापान जो इतनी बड़ी सेना रखता है उसकी भी सेना का इतना ख़र्च नहीं है जितना कि भारत को देना पड़ता है।

"आपसे मेरा यह झगड़ा है। मैं यह जानता हूँ कि प्रत्येक प्रामाणिक अंग्रेज़ भारत को स्वतन्त्र देखना चाहता है, परन्तु क्या यह दुःख की बात नहीं है कि वे यह खयाल करते हैं कि ब्रिटिश सेना भारत में से हटाई नहीं कि उसपर आक्रमण और परस्पर के युद्ध होने लगेंगे? इसके विरुद्ध मेरा तो यह कहना है कि अंग्रेज़ों की मौजूदगी ही अन्दरूनी अन्धाधुन्धी का कारण है, क्योंकि आपने फूट डालकर राज्य करने की नीति से भारत पर राज्य किया है। आपके उपकारक इरादों के कारण, आपको ऐसा

प्रतीत होता है कि मेंढक को खुरपी चुभती नहीं है। परन्तु स्वभाव से ही वह तो चुभेगी। आप हमारे आमन्त्रण से तो भारत में आये नहीं। आपको यह जान लेना चाहिए कि सब जगह असन्तोष फैला हुआ है और हरएक शख्स यह कहता है कि 'हमें विदेशी राज्य नहीं चाहिए।' आपके बिना हमारी कैसे गुज़रेगी, इसके लिए आपको इतनी अधिक चिन्ता क्यों है ? अंग्रेज़ों के आने के पहले के ज़माने का ख़याल कीजिए। इतिहास में हिन्दू-मुसलमानों के दंगे आज से अधिक दर्ज नहीं हैं। सच बात तो यह है कि हमारे ज़माने का इतिहास ही अधिक काला है। अंग्रेज़ी बन्दूकें अपराधी और निरपराधी को दंड देने में समर्थ हैं, फिर भी दंगे रोकने में असमर्थ हैं। औरंगजेब के राज्य-काल में भी दंगों का होना सुनाई नहीं देता। आक्रमणों में बुरे से बुरा आक्रमण भी लोगों को छू नहीं सका है। वे महामारी की तरह एक समय पर आते थे। महामारी के ऐसे आक्रमणों को रोकने के लिए, जो अन्ततोगत्वा शुद्धि का उपाय भी हो सकता है, यदि डाक्टरों की फ़ौज हमें रखनी पड़े और उनको तनख्वाह देने के लिए हमें भूखोंमरना पड़े तो हम उस शुद्धि के उपाय को ही अधिक पसंद करेंगे। बाघ और सिंह के कभी कभी होनेवाले आक्रमणों को लीजिए। क्या हम इन प्राणियों से सीधे युद्ध करने के और जोखिम उठाने के बदले करोड़ों के खर्च से किले और कोट

बाँधना स्वीकार करेंगे ? मुझे माफ़ करें, हम ऐसे भीरु राष्ट्र के लोग नहीं हैं, जो हमेशा जोखिम से डर कर भाग जायँगे। विदेशी बन्दूक के रक्षण के नीचे जीने से तो हम इस पृथ्वी पर से मर मिटें यही अच्छा है। आपको यह विश्वास करना चाहिए कि अपने झगड़े मिटाना और आक्रमणों का सामना करना हम जानते हैं। भारत जो कई आक्रमणों में से गुज़रा है और जिसकी संस्कृति और सभ्यता से बढ़कर दूसरी कोई संस्कृत और सभ्यता नहीं है उसके प्रति दया नहीं करना चाहिए और उसे रुई में दबा न रखना चाहिए।"

कई घण्टों की बातचीत को मैंने कुछ पेरेग्राफों में संक्षेप करके दिया है। यह बात नहीं कि दूसरे कई प्रश्नों की चर्चा नहीं हुई, परन्तु मैंने केवल चर्चा के मुख्य-मुख्य विषयों का ही उल्लेख किया है। मित्रों ने धैर्यपूर्वक सब सुना और ब्रिटिश मंत्रियों के सामने रक्खा जा सके ऐसा कोई हल सुझा सकने की दृष्टि से चर्चा करने का वचन दिया।

आक्सफोर्ड की ही तरह यहाँ पर भी पूर्णतया मैत्री और सहानुभूति का ही वातावरण था, और प्रत्येक के हृदय में बात को समझने और सहायता करने की ही इच्छा समाई हुई थी। इसका एक उदाहरण देने का लोभ में संवरण नहीं कर सकता। चर्चा यह हो रही थी कि भारत के साथ यदि उपनिवेश या

'सन्तति राष्ट्र' (Daughter Nation) का सा व्यवहार हो तो भारत उसके लिए तैयार है या नहीं ? कुछ मित्र ने कहा, "जिसे कि औपनिवेशिक स्थिति या पद कहा जाता है उससे सन्तुष्ट होने में हिन्दुस्तान को कठिनाई न होनी चाहिए।" श्रीमती हचिन्सन ने कहा, "स्थिति ऐसी है कि कनाडा या दक्षिण अफ्रिका का जो पद है वह हिन्दुस्थान का नहीं हो सकता। क्या कभी हमने उसके साथ 'सन्तति राष्ट्र' के रूप में व्यवहार किया है ? उपनिवेश तो ऐसे हैं कि जिन्हें प्रकृति ने एक-दूसरे से सम्बद्ध कर रक्खा है, वे 'मातृदेश' (Mother Country) से ही निकल कर बढ़े हैं। हिन्दुस्तान को ऐसा नहीं कह सकते, उसे ऐसी बस्ती (Colony) या कड़ी (Link) कैसे मान सकते हैं ?" और गाँधीजी ने कृतज्ञता के साथ कहा, "श्रीमती हचिन्सन, आपने वार तो निशाने पर किया है।"

मुझे यह स्वीकार करना चाहिए, कि हिन्दुस्तानी मजलिस में, भारतीय लड़कों की अपेक्षा अंग्रेज लड़कों ने ही अधिक अच्छे प्रश्न पूछे थे। अज्ञानयुक्त प्रश्न पूछनेवाले तो दोनों ही में से थे। रावण के मस्तकों की तरह अल्पसंख्यक क़ौमों का प्रश्न बार-बार निकलता था। गाँधीजी ने उसका इस प्रकार उत्तर दिया, "यह ख़याल न करें कि भारत में हिन्दू, मुस्लिम और सिख जनता को लक़वा मार गया है। यदि यह बात होती तो भारत की सबसे

बड़ी संस्था का प्रतिनिधि बनकर मैं यहाँ न आया होता। परन्तु बेवकूफी तो केवल यहाँ आये हुए लोगों में ही है।" और जब गाँधीजी ने यह खुलासा किया कि "यहाँ आये लोगों के मानी यहाँ आये हुए श्रोता नहीं परन्तु गोलमेज़-परिषद् के भारतीय प्रतिनिधि हैं जिनमें से एक मैं भी हूँ" तो लड़के खिलखिला कर हँस पड़े। एक अंग्रेज़ लड़के ने यह अज्ञानपूर्ण-प्रश्न किया कि "गाँवों के बेकार लोग शहरों में जाकर किसी उद्योग में क्यों नहीं लग जाते हैं?" इसके उत्तर में गाँधीजी ने विनोद में कहा, "खेतीबारी के शाही कमीशन ने भी यह उपाय नहीं सुझाया था।"

लेकिन इस अट्टहास में सच्चा सन्देशा लुप्त नहीं हो गया। क्योंकि गाँधीजी ने बताया "कि किस प्रकार ब्रिटिश हुकूमत में सारी जाति वैज्ञानिक रीति से झुलस रही है।" एक अंग्रेज़ मित्र ने जो सेना में भरती होनेवाले थे और पन्द्रह दिनों में ही शायद भारत आने के लिए रवाना होनेवाले थे, पूछा—"क्या आप बतायेंगे कि भारत जानेवाला अंग्रेज़ भारतीयों से कैसे सहयोग करे और भारत की कैसे सेवा करे?" गाँधीजी ने इनसे कहा—"पहले तो उसे श्री एण्डरूज़ से मिलना चाहिए और वह उनसे पूछे कि उन्होंने भारत की सेवा करने के लिए क्या किया और उसके लिए क्या सहन किया। उन्होंने अपने जीवन का प्रत्येक क्षण भारत की सेवा में अर्पण किया है और कई हज़ार अंग्रेज़ों का

काम अकेले किया है। इसलिए अंग्रेज़ उनसे पहला सब सीखें। फिर वह सिखाने के लिए नहीं परन्तु भारत की सेवा करना सीखने के लिए जायँ और यदि इस भाव से वह अपना काम आरम्भ करेगा तो वह सिखायेगा भी। परन्तु यह करने में वह अपनी खुदी को छोड़ देगा और भारतीयों में मिल जायगा, जैसा कि श्री स्टोक्स ने शिमला की पहाड़ियों में किया है। वे सब उनके साथ मिल जायँ और मदद करने का प्रयत्न करें। सच्चा प्रेम क्या नहीं कर सकता ? वे सब, जिनमें भारत के प्रति प्रेम है, भारत अवश्य जायँ। वहाँ उनकी आवश्यकता है।"

अल्पसंख्यक जातियाँ

जिन क्वेकर मित्रों ने सबसे पहले राष्ट्र की तरफ से गाँधीजी का स्वागत किया था, वे जितना अपने से हो सकता है मदद करने का प्रयत्न करते हैं। वे कई बार गाँधीजी से मिल गये। एक मरतबा उन्होंने एक प्रतिनिधि-मण्डल के भारत भेजने के विषय में चर्चा की और उसमें कौन-कौन हों, वह क्या जाँच करे और किस तरह काम करे आदि सब विषय की चर्चा हुई। उन्होंने गाँधीजी से मिलकर भारतीय स्थिति के सम्बन्ध में बड़े आवश्यक प्रश्न पूछे। मैं सब सवाल जवाब यहाँ न दूँगा, परन्तु अल्प-संख्यक कौमों के प्रश्न को संघ-विधान के प्रश्न के मार्ग का रोड़ा बना देने में जो दंभ और इन्द्रजाल बिछाया हुआ था उसे

उन्होंने जिन तीक्ष्ण शब्दों में स्पष्ट किया, उसे यहाँ देने के लालच को मैं नहीं रोक सकता। "मैंने परिषद् को पसन्द किये लोगों की बताया है और यह विचरपूर्वक है। अगर आप चाहें तो कुछ बातें कितनी बुरी हैं और इस परिषद् के होने के पहले कैसी चालें हुई थीं यह मैं आपको दिखा सकता हूँ। यदि हमें हिन्दू महासभा, मुसलमान, या अस्पृश्यों के प्रतिनिधि चुनने को कहा गया होता तो हम आसानी से महासभा के प्रतिनिधि भेज सकते थे। क्या महासभा ने देशी राज्यों की प्रजा के अधिकार यों बिक जाने दिये होते? राजा जो अपनी प्रजा के भी प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं, उनका दावा टिक नहीं सकता है। राजाओं को इस दोहरे अधिकार से बुलाने में ही परिषद् का सबसे बड़ा दोष है। भारत में देशी राज्य प्रजा परिषद् है, वह इस प्रश्न पर बड़ा बखेड़ा खड़ा कर सकती थी, परन्तु मैंने उसे समझाकर रोक रक्खा है।

"मेरे मन में जो बात थी वह मैंने कह दी है। महासभा अल्पसंख्यक जातियों के अधिकारों को बेच देने में असमर्थ है। अछूतों को मैं अच्छी तरह जानता हूँ, यह मेरा दावा है। उन्हें जुदे प्रतिनिधि मण्डल देना उन्हें मार डालना है। अभी वे उच्च वर्गों के हाथों में हैं। वे उन्हें पूरी तौर से दबा सकते हैं और उनसे जो उनकी दया पर निर्भर है, बदला भी ले सकते हैं। मैं

यह रोकना चाहता हूँ, इसीलिए तो कहता हूँ कि मैं उनकी तरफ़ से जुदे प्रतिनिधि-मण्डल की माँग के विरुद्ध लड़ूँगा। मैं जानता हूँ कि यह कह कर मैं अपनी शर्म को आपके सामने स्पष्ट करता हूँ। परन्तु वर्तमान स्थिति में मैं उनके नाश को कैसे बुला लूँ ? मैं ऐसा अपराध कभी न करूँगा। श्री अम्बेडकर योग्य पुरुष हैं, परन्तु दुर्भाग्य से इस मामले में उनका दिमाग़ फिर गया है। मैं उनके अछूतों के प्रतिनिधि होने के दावे को अस्वीकार करता हूँ।

"अब दूसरा सिरा लीजिए—यूरोपियनों का। मैं दूसरे कारणों से उनके लिए जुदे प्रतिनिधि-मंडल होने का सख्त विरोध करूँगा। वे राज्य करनेवाली प्रजा हैं और उनका देश में असाधारण प्रभाव है। आप यह जानते हैं कि प्रथम भारतीय गवर्नर का जीवन उन्होंने कैसा असह्य बना दिया था? उनके मंत्री ही उनके पीछे पड़े थे, और नौकर ही उन पर जासूसी करते थे। गोलमेज परिषद् में यूरोपियनों के प्रतिनिधि सर-ह्यूबर्टकार से मैंने पूछा कि आप मत के लिए हमारे पास क्यों नहीं आते। एण्डरूज जैसे पुरुष को भारतीय मतदाता अवश्य चुनेंगे इसका आप यक़ीन रक्खें। उन्होंने कहा कि—'श्री एण्डरूज अंग्रेज़ों के योग्य प्रतिनिधि न होंगे। वे किसी भारतीय की तरह अंग्रेजों के मानस के प्रतिनिधि नहीं हैं।' इसके उत्तर में मेरा यही कहना है कि 'यदि अंग्रेज़ों को भारत में रहना है तो उन्हें भारतीय मानस का प्रतिनिधि बनना चाहिए।'

दादाभाई नौरोजी ने जिन्हें लॉर्ड सोल्सबेरी 'काला आदमी' कहा करते थे, क्या किया ? वे सेंट्रल फ्रीन्सबेरी के मतों से पार्लमेण्ट में गये थे। ऍंग्लो इण्डियनों में के ग़रीबों को कर्नल गिडनी की अपेक्षा मैं अधिक जानता हूँ। मुझे उनकी स्थिति का तादृश्य ज्ञान है। वे मेरे सामने आकर रोये हैं। उन्होंने कहा है—'हम अंग्रेज़ों की नक़ल करते हैं और वे हमें अपनाते नहीं। विचित्र रिवाज और रहन-सहन स्वीकार कर हम भारतीयों से दूर जा पड़े हैं।' मैं उनसे कहता हूँ कि, आप फिर हमारे पास चले आइए, हम आपको अपनावेंगे, यदि वे जुदे प्रतिनिधि-मण्डल स्वीकार करेंगे तो अस्पृश्य हो जायँगे। कर्नल गिडनी की स्थिति भले ही सलामत रहे, परन्तु उनकी तरह सब 'नाइट' तो न होंगे। परन्तु सेवा के ज़रिये वे लोगों के पास जायँगे और उनका मत माँगेंगे तो वे सब सलामत रहेंगे।

[५]

लंकाशायर के कारखानों के कुछ विभाग में ख़ास तौर पर हिंदुस्तान को भेजने के लिए ही सूती माल तैयार किया जाता है।

लंकाशायर में

"सज्जनों से जिस विनय की आशा रक्खी जा सकती है उसको अनुभव करने के लिए हम तैयार थे, मुसीबतों और ग़लतफ़हमी के कारण उत्पन्न कुछ कटुता

को भी अनुभव करने के लिए हम तैयार थे; परन्तु हमने तो उसके बदले यहाँ प्रेम की वह ऊष्णता पाई जिसके लिए हम तैयार न थे। मैं ज़िन्दगीभर अपने हृदय में इस स्मृति को क़ायम रक्खूँगा।" इन शब्दों में, जिनका कि सारांश वह वहाँ के मालिक और कारीगरों की हरएक सभा में दोहराते थे। गाँधीजी ने इन सब मित्रों से मिलने का जो अवसर उन्हें मिला, उसके लिए अपनी कृतज्ञता प्रकाशित की। इस स्वागत में जो प्रेम-भाव था, उसकी तो केवल भारत के शहरों और देहातों में गाँधीजी का जो स्वागत होता था उसीसे तुलना की जा सकती है। वहाँ कोई सर्वसाधारण सभा नहीं हुई, परन्तु उससे कहीं अच्छा मालिक और मज़दूरों के विभिन्न समुदायों से दिल खोलकर बातें करने का आयोजन हुआ। उन्होंने गाँधीजी के सामने अपनी सब बातें पेश कीं और गाँधीजी ने एक ही जवाब बार-बार दोहराने का जोखिम उठा करके भी सब समुदायों से मुलाक़ात की, किसीको इनकार न किया।

दुःख का कारण

उन सब की बातें धैर्य-पूर्वक सुन लेने के बाद गाँधीजी को यह कहने में कुछ आनन्द नहीं हो सकता था कि वह उन्हें बहुत कम सुख पहुँचा सकते हैं। वे शायद बड़ी आशायें रख कर आये होंगे। परन्तु गाँधीजी को बड़े दुःख के साथ उनपर यह बात स्पष्ट करनी पड़ी कि मुझे उस काम

का भार उठाने के लिए कहा जा रहा है जिसे उठाने के लिए मैं और मेरा देश दोनों असमर्थ हैं। "मेरी राष्ट्रीयता इतनी संकुचित नहीं है, कि मैं आपके दुःखों के लिए दुःख अनुभव न करूँ और उसपर हर्ष मनाऊँ। दूसरे देशों के सुख को नष्ट कर के मैं अपने देश को सुखी करना नहीं चाहता। किन्तु, यद्यपि मैं यह देखता हूँ कि आपको बड़ी हानि हुई है, परन्तु मुझे भय है कि आपका दुःख मुख्यतः हिन्दुस्तान के कारण ही नहीं है। कुछ वर्षों से स्थिति ख़राब ही चली आती है, बहिष्कार तो उसमें आखिरी तिनका है।" उन्होंने स्प्रिंगवेल गार्डेन नामक गाँव में कहा: "संधि पर ५ मार्च को दस्तख़त हो जाने के बाद विदेशी कपड़े से भिन्न ब्रिटिश कपड़े का बहिष्कार नहीं हो रहा है। एक राष्ट्र की हैसियत से हम तमाम विदेशी कपड़े का बहिष्कार करने के लिए बँधे हुए हैं। परन्तु यदि इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान में सम्मानपूर्ण संधि हो जाय, अर्थात् स्थायी शान्ति हो जाय तो हमारे कपड़े की पूर्ति के लिए और स्वीकृत शर्तों पर दूसरे विदेशी वस्त्रों के मुकाबले में मैं लंकाशायर के कपड़े को प्रधानता देने में न हिचकिचाऊँगा। परन्तु इससे आपको कितनी सहायता मिलेगी मैं नहीं जानता। आपको यह जान लेना चाहिए कि दुनिया के तमाम बाज़ार आपके लिए खुले नहीं हैं। आपने जो किया वही दूसरे राष्ट्र आज कर रहे हैं। हिन्दुस्तानी मिलें भी प्रतिदिन अधिकाधिक

कपड़ा तैयार करेंगे। मैं लंकाशायर के लिए हिन्दुस्तान के उद्योग में प्रतिबंध डालूँ यह तो निश्चय ही आप न चाहेंगे।"

एक दूसरी जगह उन्होंने कहा:—"यहाँ जो बेकारी है उसका मुझे दुःख है, परन्तु यहाँ भुखमरा या अर्ध-भुखमरापन नहीं है। हिन्दुस्तान में तो यह दोनों ही हैं। यदि आप हिन्दुस्तान के गाँवों में जायँ तो वहाँ आप ग्रामवासियों की आँखों में सर्वथा निराशा ही देखेंगे, अधभूखे कंकाल, ज़िन्दा मुरदे मिलेंगे। यदि हिन्दुस्तान काम के रूप में उनमें खुराक और जोवन डाल कर उन्हें पुनर्जीवन दे सके तो इससे वह दुनिया की मदद कर सकेगा। आज तो हिन्दुस्तान शाप रूप है। देश में एक पक्ष ऐसा है जो इन अधभूखे करोड़ों का शीघ्र ही नाश होना चाहेगा जिससे कि दूसरे लोग जीवित रह सकें। मैंने एक मनुष्योचित उपाय सोचा है। इससे उन्हें वह काम मिलेगा जिसे वे जानते हैं, जिसे वे अपनी झोंपड़ी में भी कर सकते हैं, जिसमें औज़ार वग़ैरा में कोई बड़ी पूँजी नहीं लगानी पड़ती और जिसकी उपज आसानी से बेची जा सकती। यह कार्य ऐसा है जिस ओर लंकाशायर को भी ध्यान देना चाहिए।

"लेकिन इन मिलों की हालत देखिए जो अभी उस दिन तो गूँज रही थीं और आज बेकार पड़ी हैं। ब्लैकबर्न, डारवन, ग्रेट हारवुड, एक्रींगटन में कोई सौ मिलें बन्द कर देनी पड़ी हैं। ग्रेट हारवुड के विभाग में कम-से-कम १७,४२६ करघे बेकार पड़े हैं।"

कुछ कारीगरों ने कहा—"हमने हिन्दुस्तानी कपड़ा बुनने की कालेज में विशेष शिक्षा पाई। हम ख़ास हिन्दुस्तान के लिए धोती तैयार करते हैं। और आज हम वह क्यों न तैयार करें और इंग्लैण्ड और भारत में अच्छा रिश्ता क्यों न पैदा करें ?"

कुछ मजदूरों ने कहा—"१८९७–९८ के अकाल में हमने हिन्दुस्तान की मदद की थी। हमने ग़रीबों के लिए चन्दा इकट्ठा किया और उन्हें भेज दिया। हम सदा उदारनीति के पक्ष में रहे। बहिष्कार हमारे विरुद्ध क्यों होना चाहिए ?" कुछ लोगों ने तो अपना वैयक्तिक दुःख भी गाँधीजी के सामने रक्खा। उसमें सबसे अधिक करुणाजनक तो यह था।

"मैं रुई का काम करनेवाला हूँ। मैं चालीस बरस तक बुनकर रहा हूँ और आज बेकार हूँ। आवश्यकता और तकलीफ़ की मुझे चिन्ता नहीं है। किन्तु मेरा अपना आत्मसम्मान चला गया है। मैं बेकारी की मदद पाता हूँ इसलिए मैं अपनी नज़रों में आप ही गिर गया हूँ। मैं नहीं ख़याल करता कि मैं अपना जीवन आत्मसम्मान से युक्त पूरा कर सकूँगा।"

कड़ुआ सत्य

मालिक और समृद्ध कारीगरों के लिए, जो वहाँ रविवार की छुट्टी बिताना चाहें योर्कशायर में हायेज़ फ़ार्म एक आरामगृह है। वहाँ पर बेकार लोगों के कुछ प्रतिनिधि-मण्डल गाँधीजी से मिले और उन्होंने क़रीब-क़रीब यही

बात कही और आरामगृह के भाइयों ने तो एक खास प्रार्थना की योजना की, जिसमें उन्होंने ईश्वर की इच्छा पूर्ण होने के लिए प्रार्थना की। गाँधीजी के लिए अपना हृदय छिपाना असंभव था। "यदि मैं आपको स्पष्ट न कहूँ तो मेरा आपके प्रति असत्याचरण होगा—मैं झूठा मित्र गिना जाऊँगा।" गाँधीजी ने पौन घण्टे तक अपना हृदय उनके सामने खोल कर रक्खा। उनके जीवन में अर्थशास्त्र, आचारशास्त्र और राजनीति किस तरह एकरूप हो गये हैं, इसका उन्होंने वर्णन किया। तमाम बातों के मुक़ाबले में सत्य का झण्डा उन्होंने किस तरह ऊँचा उठाया है, परिणामों से बंध जाने से उन्होंने अपनेको किस तरह रोका है, देश के सामने चरखा रखने की उन्हें किस तरह प्रेरणा हुई और दुनिया की स्थिति के कारण वे किस तरह आज की हालत में आ पहुँचे हैं इसका भी वर्णन किया। उन्होंने कहा—

"गत मार्च के महीने में मद्य और विदेशी कपड़े के बहिष्कार की स्वतन्त्रता के लिए मैंने लार्ड इर्विन के सामने प्रयत्न किया। उन्होंने सूचना की कि मैं परीक्षा के तौर पर तीन महीने के लिए बहिष्कार छोड़ दूँ और उसका फिर आरंभ करूँ। मैंने कहा मैं तो इसे तीन मिनिट के लिए भी नहीं छोड़ सकता।' आपके यहाँ ३,०००,००० बेकार हैं, परन्तु हमारे यहाँ तो ३००,०००,००० छः महीने के लिए बेकार रहते हैं। आपके बेकारों

की मदद की औसत दर ७० शिलिंग है और हमारी औसत आमदनी ७॥ शिलिंग है। उस कारीगर ने जो यह कहा है कि वह अपनी नजरों में आप गिर गया है सच कहा है। मैं यह विश्वास करता हूँ कि मनुष्य के लिए बेकार रहना और मदद पर जीना उसे हलका बनाना है। हड़ताल के समय भी हड़ताली लोग एक दिन के लिए बेकार रहे यह मैं सहन नहीं कर सकता था और पत्थर तोड़ने, रेत ले जाने, और सार्वजनिक सड़कों का काम उनसे लेता था और अपने साथियों से भी उसमें शामिल होने के लिए कहता था। इसलिए कल्पना करो कि ३००,०००,००० का बेकार रहना, प्रतिदिन करोड़ों का काम के अभाव में पतित होना, अपना आत्मसम्मान और ईश्वर में श्रद्धा को खो देना, यह कितनी बड़ी आफ़त है। मैं उनके सामने ईश्वर के सन्देश को ले जाने की हिम्मत ही नहीं कर सकता। एक कुत्ते के सामने ईश्वर का सन्देश ले जाऊँ और उन भूखे करोड़ों के पास जिनकी आँखों में नूर नहीं है और रोटी ही जिनका खुदा है, उसे ले जाऊँ, तो यह दोनों ही बराबर हैं। मैं उनके पास, सिर्फ़ पवित्र काम का सन्देश लेकर ही—ईश्वर का सन्देश लेकर जा सकता हूँ। बढ़िया नाश्ता करके और उससे भी बढ़िया खाने की आशा रखते हुए ईश्वर की बात करना अच्छी बात है। परन्तु जिन करोड़ों को दिन में दो दफ़ा खाना भी नहीं मिलता,

उनसे मैं ईश्वर की बातें कैसे कर सकता हूँ। उनको तो रोटी और मक्खन के रूप में ही ईश्वर दिखाई देगा। भारत का किसान अपनी रोटी अपनी भूमि से पाता है। मैंने उनके सामने चरखा इसलिए रक्खा है कि उससे वे मक्खन पा सकें। और यदि आज मैं ब्रिटिश जनता के सामने कच्छ पहनकर ही उपस्थित हुआ हूँ तो वह इसलिए, क्योंकि मैं इन अधभूखे, अर्ध-नग्न मूक करोड़ों का एक मात्र प्रतिनिधि बनकर आया हूँ। अभी हम लोगों ने प्रार्थना की कि ईश्वर के अस्तित्व के प्रकाश में हम आनन्द करें। मैं आपसे कहता हूँ कि जब करोड़ों भूखे आपके दरवाजे पर खड़े हैं, यह असम्भव है। आप अपने दुःखों में भी भारत की तुलना में सुखी हैं। मैं आपके सुख की ईर्ष्या नहीं करता। मैं आपका भला चाहता हूँ, परन्तु भारत के करोड़ों ग़रीबों की क़बरों पर समृद्ध बनने का खयाल छोड़ दीजिए। मैं यह नहीं चाहता कि भारत अकेला जीवन बितावे। परन्तु मैं अन्न और कपड़े के विषय में किसी देश पर आधार रखना नहीं चाहता। यद्यपि उपस्थित संकट को दूर करने के उपाय हम ढूँढ़ निकालेंगे, परन्तु मुझे यह कहना चाहिए कि लंकाशायर के पुराने व्यापार को पुनः सजीव करने की आप आशा न रक्खें। यह असम्भव है। उसमें मैं आपको धर्म से मदद नहीं कर सकता। मान लीजिए कि मेरा श्वास एकदम बन्द हो गया और

कुछ समय के लिए कृत्रिम श्वासोच्छ्वास की क्रिया से मुझे मदद दी गई और मैं फिर से श्वास लेने लगा तो क्या मुझे उसी कृत्रिम क्रिया पर सदा के लिए आधार रखना चाहिए और अपने फेफड़ों का उपयोग करने से इनकार करना चाहिए ? नहीं, यह आत्म-घात होगा। मुझे अपने फेफड़ों को मज़बूत बनाना चाहिए और अपनी ही शक्ति पर जीना चाहिए। आप ईश्वर से यह प्रार्थना करें कि भारत अपने फेफड़े मज़बूत कर सके। आप अपने कष्टों का दोष भारत के सिर पर न डालें। दुनिया की शक्तियाँ जो आपके ख़िलाफ़ काम कर रही हैं उनका विचार कीजिए। विवेक के विमल प्रकाश में वस्तु स्थिति को देखिए।"

और उसके बाद गाँधीजी ने कहा—

"मुझे कृपया यह बताइए कि भूखों मर कर जीनेवाले और आत्मसम्मान की सब भावनाओं से हीन मनुष्य जाति के १/५ का मैं क्या करूँ। बेकार लंकाशायर को भी उस पर ध्यान देना चाहिए। १८९९–१९०० के अकाल में लंकाशायर ने हमें जो मदद दी, वह आपने हमें सुनाई। ग़रीबों के आशीर्वाद के सिवा हम उसका बदला और किस तरह चुका सकते हैं ? मैं आप को न्याय्य-व्यापार का अवसर देने के लिए आया हूँ। परन्तु यदि मैं वह दिये बिना ही चला जाऊँ तो उसमें मेरा क़सूर न होगा। मुझमें कोई कटुता नहीं है। हलके-से-हलके प्राणी से भी

मैं बन्धुत्व का दावा करता हूँ, तो फिर अंग्रेजों से क्यों न करूँगा, जिनसे कि हम एक सदी से अधिक समय से भले या बुरे के लिए बँधे हुए हैं, और जिनमें मैं अपने अत्यन्त प्रिय मित्रों के होने का दावा करता हूँ। आपके लिए मैं तो बहुत आसान मसला हूँ, परन्तु यदि आप मेरे बढ़ाये हुए हाथ को झटक देंगे तो मैं चला जाऊँगा, मनमें कटुता रखकर नहीं, परन्तु इस ख़याल को लेकर कि आपके हृदय में स्थान पाने के लिए मैं काफ़ी शुद्ध नहीं था।"

एजवर्थ के मालिकों से जो बातचीत हुई वह बड़ी मित्रतापूर्ण थी और निर्विकार भाव से हुई थी। यहाँ गाँधीजी ने विदेशी वस्त्र-बहिष्कार के आर्थिक रूप का ज़ोरों से प्रतिपादन किया।

विदेशी वस्त्र-बहिष्कार

प्र०—"क्या राजनैतिक उद्देश्य से किये गये बहिष्कार को आर्थिक उद्देश्य से किये गये बहिष्कार से जुदा करना संभव है?"

उ०—"जैसा कि १९३० में ब्रिटेन को सजा देने के उद्देश्य से किया गया था, जब लोग ब्रिटिश माल के बदले अमेरिकन और जरमन माल को पसंद करते थे, यह बहिष्कार स्पष्ट ही राजनैतिक बहिष्कार था। ब्रिटिश मशीनरी का भी उस समय बहिष्कार किया गया था। परन्तु अब तो मूल आर्थिक बहिष्कार ही रह गया है। आप उसे बहिष्कार भले ही कहें, परन्तु यह

गाँवों के लिए लंकाशायर के सूती व्यापार से भी बढ़कर ख़तरा बन बैठेंगे।"

उ०—"यदि मैं तबतक जिन्दा रहा और ऐसा दुष्परिणाम हुआ भी तो मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि इस कार्य में मिलों का ही नाश होगा। और, सच्चे राष्ट्रीय अधिकारों के साथ बालिग़ मताधिकार भी आवेगा, और तब धनी वर्ग के लिए ग़रीब गाँववालों को कुचल डालना असंभव हो जायगा।"

प्र०—"क्या आप यह नहीं ख़याल करते कि जैसे अमेरिका में लोग मद्य-पान की तरफ़ फिर मुड़ रहे हैं वैसे ही आपके लोग भी मिल के कपड़ों पर लौट जायँगे?"

उ०—"नहीं, अमेरिका में, लोगों की इच्छा के विरुद्ध एक शक्तिशाली राष्ट्र ने मद्य-निषेध के महान् शस्त्र का प्रयोग किया था। लोग शराब पीने के आदी थे। शराब पीना वहाँ फ़ैशन में शुमार हो गया था। हिन्दुस्तान में मिल का कपड़ा कभी 'फ़ैशन' नहीं बन सका और खादी तो आज फ़ैशन में गिनी जाती है और सम्भावित समाज में दाख़िल होने के लिए एक परवाना-सा बन गई है। और कुछ भी हो, मैं अपने लोगों की आर्थिक मुक्ति के लिए लड़ता रहूँगा और यह आप स्वीकार करेंगे कि इसके लिए मरना और जीना उचित ही है।"

प्र०—"यह असमान युद्ध होगा। आर्थिक स्पर्द्धा के प्रवाह के सामने सब कुछ बह जायगा।"

उ०—"आप कहते हैं कि धन-लिप्सा के आगे ईश्वर की हार हुई है और यही चलता रहेगा। परन्तु हिन्दुस्तान में उसकी हार न होगी।"

कताई और बुनाई मण्डल (कॉटन स्पिनर्स एण्ड मेन्यु-फेक्चरर्स एसोसिएशन) के अध्यक्ष श्री ग्रे ने, जिन्होंने इस दिल-चस्प संवाद में बहुतायत से भाग लिया था यह स्वीकार किया कि यह कष्ट अधिक इसलिए मालूम होता है क्योंकि वे एक अधिक-से-अधिक केन्द्रित विभाग का ही विचार करते हैं। उन्होंने कहा, ब्लेकबर्न के इस विभाग में जब कि ५० फ़ीसदी बेकारी हिन्दुस्तान के कारण थी तो उनके अपने विभाग बर्नली में १५ फ़ीसदी बेकारी उसके कारण थी। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि महासभा ने बहिष्कार घोषित किया उसके पहले ही बहुत-सी मिलें बन्द हो गई थीं और यह आपत्ति तो अधिकतर दुनिया की वर्तमान परिस्थिति के कारण ही थी। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि यह बहिष्कार उठा देने से भी उन्हें अधिक मुक्ति न मिल सकेगी।

बेकार कारीगर जो गाँधीजी को मिले उनके मन में कोई कटुभाव न था। उलटे उन्होने तो भारत की खेतीबाड़ी की

स्थिति के सम्बन्ध में, और किसानों को साल में छः महीने काम क्यों नहीं मिलता तथा उनके जीवन के उपयोगी खर्च का आदर्श इतना नीचा क्यों है आदि के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे। जैसा कि उन्होंने स्पष्ट कहा उनके सम्बंध में भुखमरेपन का सवाल न था वरन् जीवनोपयोगी खर्च के आदर्श के घटने का प्रश्न था। पहले जहाँ वे एक शिलिंग खर्च करते, वहाँ उन्हें अब छः पेंस से ही सन्तोष करना पड़ता है। और जब बहुतेरे लोग तो कुछ बचा ही नहीं सकते हैं तो कुछ लोगों को अपनी बचत पर गुज़ारा करना पड़ता है। उनको सरकार की तरफ़ से जो बेकारी की मदद मिलती है उसकी वर्तमान दर यह है—पुरुष को १७ शिलिंग, स्त्री को १५ शिलिंग, (स्त्री जो मज़दूरी न करती हो उसे ९ शिलिंग) और हरएक बच्चे को २ शिलिंग, प्रति सप्ताह मिलते हैं। गाँधीजी ने कहा, "यह तो बहुत बड़ी आमदनी है और आपके जैसी बुद्धिमान जाति के लिए दूसरे हुनर और धन्धे ढूँढ़ निकालना कोई मुश्किल नहीं है। परन्तु हमारे करोड़ों भूखों के लिए तो कोई दूसरा धन्धा ही नहीं है। यदि आप में से कोई निष्णात कोई ऐसा धंधा ढूँढ़ निकाले तो मैं उसे चरखे के बदले चलाने के लिए तैयार हूँ। इस बीच में आपको इससे अधिक कुछ आशा नहीं दिला सकता कि स्वतंत्र भारत ग्रेट

भारत और इंग्लैण्ड में ग़रीबी

ब्रिटन के समान भागीदार की हैसियत से अपने लिए आवश्यक कपड़ा, खरीदने में तमाम विदेशी कपड़ों में लङ्काशायर के कपड़े को प्रधानता देगा ।"

[६]

डीन ने अपने मोहक और सरल ढ़ंग से कहा—"अखबार वालों को आश्चर्य हो रहा है कि गांधीजी कैण्टरबरी किस लिए आये होंगे । उनकी समझ में नहीं आता कि मैंने गाँधीजी को निमन्त्रित किया है, अथवा गांधीजी स्वयं यहां आये है । मैंने तो उनसे कह दिया है कि राजनीति को बिलकुल एक ओर रख देने पर भी गांधीजी और मेरे बीच समान रूप से एक बड़ा दिलचस्प विषय है और वह है धर्म । आध्यात्मिक विषयों पर बातचीत करने के लिए ही मैं गाँधीजी से मिलने के लिए उत्सुक था और मुझे पूर्ण निश्चय है कि हम फिर और मिलेंगे ।"

केण्टरबरी के डीन

गाँधीजी और डीन में दिल खोलकर बातचीत हुई, और उसके बाद ३ बजे गाँधीजी को मौन धारण करना पड़ा; क्योंकि दूसरे दिन उसी समय एक महत्वपूर्ण समिति के कार्य में उन्हें योग देना था । गाँधीजी ने कहा—"डीन महाशय मैं आपको साक्षी रखकर मौन ले रहा हूँ ।" डीन ने कहा, "और वह

आदमी अभागा होगा, जो आपको बोलने पर बाध्य करे।" इसी समय डीन ने गाँधीजी से पूछ लिया था, कि क्या वे दोपहर के बाद की प्रार्थना में सम्मिलित होना पसन्द करेंगे और गाँधीजी ने उसपर कह दिया था कि उन्हें वह प्रिय होगी।

इसलिए हम केण्टरबरी के प्राचीन गिर्जाघर की प्रभावोत्पादक उपासना में सम्मिलित हुए। उपासना के अन्त में डीन ने गोलमेज़-परिषद् के भारतीय प्रतिनिधियों के लिए प्रार्थना कर ईश्वर से याचना की कि इंगलैंड-जैसी सुव्यवस्थित स्वतन्त्रता का उपभोग कर रहा है, वैसी ही स्वतन्त्रता वह भारत को दे। दूसरी प्रार्थना में उन्होंने ईश्वर से चीन के विपत्ति-ग्रस्त करोड़ों दुखी लोगों को संकट-मुक्त करने की माँग की और जैसा कि मैंने तुरन्त ही देखा, ये प्रार्थनायें केवल शिष्टाचार-प्रदर्शन के लिए अथवा खाली शुभेच्छा की द्योतक न थीं।

मैंने कहा:—"आपकी बैठक की मेज़ पर रक्खी हुई पुस्तकों से मालूम होता है कि चीन के विषय में आपको दिलचस्पी है।"

चीन

यह छोटा-सा प्रश्न डीन के मन की बात निकाल लेने के लिए काफ़ी था। उन्होंने अत्यन्त भावुकता के साथ कहा:—"हाँ, मैंने चीन के सम्बन्ध में अध्ययन किया है, किन्तु चीन पर जो संकट आ पड़ा है, उससे चीन का तत्काल अभ्यास करने की आवश्यकता है, और हम आगामी वसन्तऋतु

में वहाँ जाने की योजना कर रहे हैं। मुझे आशा है कि डा० स्विट्ज़र और डा. ग्रेनफिल वहाँ होंगे और चार्ली एण्ड्रयूज़ और हम वहाँ जावेंगे। बाढ़ में डूबे हुए भाग का क्षेत्रफल ब्रिटिश टापुओं के क्षेत्रफल के बराबर है, करोड़ से अधिक लोग संकट-ग्रस्त हैं, और क़रीब एक करोड़ के मर गये हैं। हमें वहाँ जाकर वहाँ की स्थिति को प्रत्यक्ष देखना है और यदि सम्भव हो सके तो सारे संसार का ध्यान उस ओर आकर्षित करना है।"

मैंने पूछा—"क्या आप वहाँ की राजनैतिक स्थिति का भी अध्ययन करेंगे?" उन्होंने कहा—"हाँ, मेरे लिए स्वतन्त्रता का अर्थ मेरी स्वतन्त्रता नहीं है। उसका अर्थ है सबकी और प्रत्येक की स्वतन्त्रता।"

मैंने कहा—"इस जाँच के लिए आप इनसे योग्य व्यक्ति नहीं ढूँढ़ सकते थे?" इस पर वे तुरन्त ही डा. ग्रेनफिल और डा. स्विट्ज़र की प्रशंसा करते हुए कहने लगे—"डा. ग्रेनफिल के नाम से सारा इंगलैण्ड परिचित है। वे सुदूर लाब्राडोर में वहाँ के पीड़ितों की सेवा करने गये थे। और अल्बर्ट स्विट्ज़र के लिए तो वे जो काम अफ्रीका के मध्यभाग में करते थे; वही आगे जारी रहेगा।"

मैंने कहा:—"उन्होंने अपनी हाल ही की पुस्तक की एक प्रति गाँधीजी के पास भेजी है।" डीन ने कहा—"मैं इस पुस्तक

से परिचित हूँ। यूरोप के ईश्वर-सम्बन्धी विचार के मुख्य प्रवाह को डा. स्विट्ज़र ने नई ही गति दी है, और यद्यपि ऐसा भासित होता है कि वे दूसरे छोर पर पहुँच गये हैं; किन्तु मैं समझता हूँ कि उन्होंने यूरोप को ठीक समय पर चेतावनी दी है। वह एक विलक्षण व्यक्ति हैं। उन्होंने संगीत का गहरा अध्ययन किया है, विशेष कर बाक के संगीत का; उसके तो वे कुशल उस्ताद हैं। इसके बाद उन्होंने शल्य-चिकित्सा —सरजरी—का अध्ययन कर डाक्टरी की डिग्री ली और अन्त में सुदूर अफ्रीका में वहांके पीड़ितों की सेवा करने के लिए जाने का निश्चय किया। इसमें उनके दो प्रधान उद्देश्य थे—(१) ईसा मसीह के इन शब्दों में उनका अटल विश्वास कि 'जो जीवन देता है, वही जीवन पावेगा।' और (२) उनकी यह कामना कि गुलामों के घृणित व्यापार के रूप में अपने देशवासियों (इंग्लैण्डवालों) ने उनपर जो अत्याचार एवम् पाशविकतायें कीं तथा शराब के द्वारा उन्हें नीति-भ्रष्ट करके जो पाप किया, उसके प्रायश्चित के रूप में कुछ करना चाहिए। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई भी प्रायश्चित्त इसके लिए काफ़ी नहीं है, इसलिए उन्होंने अपने-आपको रोग, खतरों और मृत्यु के बीचोंबीच में फेंक दिया।"

उनकी मेज़ पर पड़ी हुई बरट्रेण्ड रसल की चीन-सम्बन्धी पुस्तक का मैंने ज़िक्र किया, इसपर डीन बरट्रेण्ड रसल के सम्बन्ध में

कुछ कहने लगे और इसी प्रसंग में अपने सम्बन्ध में भी उन्हें कुछ कहना पड़ा। उन्होंने कहा—"हाँ, हाँ, मैं बरट्रेण्ड रसल को अच्छी तरह जानता हूँ। रूस की क्रान्ति के समय मैंने इनसे मेंचेस्टर में रूस के सम्बन्ध में भाषण करवाया था और इस प्रकार मैं तात्कालिक फ़ौजी अधिकारियों का सन्देह-भाजन बन गया था; हमारी सभा में सैनिक मौजूद थे। मैं यह अनुभव करता था कि रूसवाले जो कर रहे हैं, वह ठीक है। यह कहा जाता था कि उन्होंने धर्म तथा ईसाइयत का परित्याग कर दिया है। मुझे इसकी परवा न थी, क्योंकि मैं यह साफ़ देख रहा था, कि वे जो कहते हैं, उसकी अपेक्षा वे जो करते हैं, उसका महत्त्व अधिक है। और ग़रीबों तथा पीड़ितों के लिए वे जो संग्राम कर रहे थे और वे जिस तरह यह आग्रह कर रहे थे कि जीवन की सुख-सुविधायें ऊपर से नीचे तक सबको समान रूप से मिलनी चाहिएँ, इससे अधिक ईसा की की आत्मा के अनुकूल और क्या हो सकता है? सिर्फ़ ज़बान से 'प्रभु-प्रभु' कहनेवाला व्यक्ति सच्चा ईसाई नहीं; सच्चा ईसाई तो 'प्रभु की इच्छा को व्यवहार में परिणत करनेवाला' व्यक्ति ही है।"

रूस

मैंने कहा, "आपको यह जानकर आनन्द और आश्चर्य होगा कि यही मत, लगभग इसी भाषा में नोएल तथा डोरोथी बक्स्टन ने अपनी 'दि चेलेन्ज ऑव् बोलशेविज़्म' (साम्यवाद की चुनौती)

नामक पुस्तक में प्रकट किया है। इस पर डीन प्रसन्न हुए। उन्होंने यह पुस्तक देखी न थी, इसलिए मैंने वह उनके पास भेजने का वचन दिया। डीन ने जर्मनी की चर्चा छेड़ी और आह भरते हुए कहा—"जिनके मुकाबले में हम लड़े, कितना अच्छा होता यदि हम उन्हें पहचानते होते। मैंने उन्हें देखा, और पहचाना, और मैंने यह अनुभव किया कि हम उनके साथ नहीं लड़ सकते।" मैंने लार्ड हेलडेन का नाम लिया, इसपर डीन ने कहा —"वह उन थोड़े-से लोगों में से एक थे, जो जर्मनों और जर्मनी के सम्बन्ध में जानते थे। वे स्कॉच थे; मेरा विश्वास है कि अपने स्वास्थ्य के कारण वे यहाँ की यूनीवर्सिटी में दाखिल न हो सके, इसलिए वे जर्मनी गये और जर्मन संस्कृति में जो श्रेष्ठातिश्रेष्ठ बातें थी, वे सब बातें उन्होंने ग्रहण करलीं।"

किन्तु इन और इस प्रकार के विषयों पर बातचीत करते हुए भी उनके मन में तो संसार के विभिन्न भागों के पीड़ित मानव जाति का चिन्तन चल रहा था, और इसलिए उन्होंने कहा— "आज दोपहर के बाद की प्रार्थना में २२ वाँ भजन पढ़ते समय मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था, कि इसमें जिस स्थिति का तादृश चित्रण है, गाँधीजी को उस स्थिति का कई बार अनुभव हुआ होगा और ईश्वर की शक्ति में उन्होंने अपने आपको शक्तिमान अनुभव किया होगा।" भजन की वे पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

"किन्तु जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो कीटक हूँ, मनुष्य हूँ। मानव-समुदाय-द्वारा तिरस्कृत और लोगों-द्वारा बहिष्कृत हूँ।

"मुझे देखनेवाले सब मेरी ओर तिरस्कारपूर्वक हँसते हैं; वे होठ लम्बे करके, सिर हिला कर कहते हैं कि इसने ईश्वर पर विश्वास किया था कि वह इसका उद्धार करेंगे; ईश्वर को यदि इसकी आवश्यकता हो तो इसका उद्धार करे।"

इसके बाद--"मैं मृत्यु की घाटी में चलता होऊँ तो भी मुझे किसी प्रकार का भय नहीं, क्योंकि हे प्रभु, तू मेरा साथी है; तेरी सोटी और तेरा दण्ड मुझे सुखदायक है।"

और डीन ने भजन की इन अन्तिम पंक्तियों को दुहराया और वे बोले ' बहुत से लोग मुझसे पूछते थे कि क्या तुम गाँधी को ईसाई बनाने वाले हो ? मैंने रोष-पूर्वक उनसे कहा, "इन्हें ईसाई बनाया जाय ! ईसा के समान जितना जीवन इनका है, वैसे मैंने दूसरे का बहुत कम देखा है।"

मैंने उन्हें याद दिलाया, "किसीने कहा है कि धर्म आकर्षक है; किन्तु चर्च (धर्म-संघ) पीछे हटानेवाला है; और ये मित्र धर्म का वास्तविक मर्म नहीं समझते।"

डीन ने कहा:—"यह बड़ा आकर्षक वाक्य है। मुझे आश्चर्य है यह किसने कहा होगा।" किन्तु तुरन्त ही उन्होंने सम्भालते हुए कहा—"और विकास और सुधार की सब प्रगतियाँ चर्च

(धर्म-संघ) के लोगों के पास से ही आनी चाहिएँ और आ सकती हैं। मेरे लिए चर्च वृक्षकी छाल के समान है। छाल का काम रक्षा करने का है, उसका स्वभाव संकोची है; जीवन का लाभ इसी में है कि प्रतिवर्ष छाल में सांध पड़े, जिससे जीवन का विकास हो सके, और फिर भी छाल वृक्ष की रक्षा करने के लिए रहती है। मैं यदि चर्च में न होता तो आज जितना बाग़ी हूँ, उतना नहीं हो सकता था।" और वे बग़ी तो हैं ही यह मैं बता ही चुका हूँ। श्री डीन अपने-आपको फ्रान्स के ह्यूजी-नोट सम्प्रदाय के जो रेशम की बुनाई का धन्धा करने लगे थे, उन्हीं के वंशज बतलाते हैं—'इस प्रकार मैं जुलाहा भी हूँ और बाग़ी भी हूँ। महात्माजी में और मुझमें इन दो बातों की समानता है।"

पादरी

किन्तु मूल बात पर लौट कर उन्होंने कहा कि महात्माजी की समानता का दृष्टान्त यदि कोई हो सकता है तो वह असीसी के सन्त फ्रांसिस का है। और असीसी का नाम आते ही उन्हें अपनी पत्नी का स्मरण हो आया। पत्नी की मृत्यु के पहिले उन्होंने कुछ समय असीसी में और सवोनारोला के गाँव फ्लोरेन्स में बिताया था, और उनकी प्रिय पत्नी के सम्बन्ध में अद्वितीय भक्तिभावपूर्ण वाणी में उन्हें बोलते हुए सुनकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि

दोनों छोर एक होंगे

मुझे ऐसे व्यक्ति के पास बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिसने इस बात को अनुभव कर लिया है कि मृत्यु का अर्थ अधिक गहरा जीवन ही है। उन्होंने कहा—"मृत्यु ने हमें जुदा नहीं कर दिया है, वह (पत्नी) मेरे अधिक निकट आ गई है। अपने जीवन में मैं प्रतिक्षण उसका प्रकाशमय सानिध्य अनुभव करता हूँ, और अब मैंने जो काम सिर पर लिया है, उसमें मैं निरन्तर उसके सहवास में रहूँगा।" और उनकी पत्नी ने मैञ्चेस्टर की २० हजार माताओं में जीवन भर जो काम किया; नासूर के दुःखद रोग को उन्होंने जिस शान्ति और अविचल धैर्य से सहन किया, इसका और उनकी मृत्यु का अमर चित्र स्मृति में ताजा करते हुए डीन की बातों को मैं सुन रहा था और मन में अंग्रेजी गीत के इन शब्दों को गुनगुनाता जाता था—"मृत्यु, कहाँ है तेरा डङ्क ? क़ब्र, कहाँ है तेरी विजय।"

उन्होंने जवानी के दिनों की भी याद की। जवानी में उन्होंने भारत जाने का विचार किया, तत्त्व-ज्ञान और उसके बाद ईश्वरवाद का अध्ययन किया; किन्तु उनके विचार बहुत आगे बढ़े हुए समझे गये, इसलिए उन्हें हिन्दुस्थान में पादरी बनाकर भेजना उचित न समझा गया। उन्होंने कहा—"कई बार मेरे जी में आता है कि मैं सब-कुछ छोड़ दूँ, पूर्वीय देशों में जाकर रहूँ और वहाँ के पीड़ितों की सेवा में अपना जीवन अर्पण कर दूँ,

मेरी पत्नी तो जीवन के एक-एक क्षण उनके साथ रहती थी।" किन्तु विश्वासपात्र और प्रभावशाली सलाहकारों ने इसके विपरीत विचार किया। उन्होंने कहा कि मेरी उपस्थिति केण्टरबरी में आवश्यक है, क्योंकि यह अँग्रेजी—भाषाभाषी ईसाइयों का केन्द्र-स्थान है, जहाँ कि मैं देश-देश के लोगों के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकूँगा, और यदि सम्भव हुआ तो जिन समस्याओं पर संसार के ध्यान की आवश्यकता है, उनके हल करने में कुछ सहायता दे सकूँगा। उन्होंने कहा—"गाँधीजी की मुलाक़ात ऐसी ही है, और मेरा विश्वास है कि यदि गाँधीजी यहाँ शान्ति अनुभव करेंगे, तो फिर यहाँ आवेंगे ही। अख़बारवाले पूछते हैं कि क्या गाँधीजी गिर्जा में आये थे? और वहाँ उन्होंने क्या किया?" मैंने उनसे कहा कि वे मेरे साथ आये, उपासना में सम्मिलित हुए, भक्तिभावपूर्वक खड़े रहे और विधिपूर्वक उपासना की।" किन्तु मैंने उनसे कहा कि "तुम यह भी कह सकते हो कि गाँधीजी हाथ में पुस्तक लेकर मेरी बैठक की सिगड़ी के सामने मानों घरमें खड़े हों इतनी शान्ति से खड़े हैं, यह चित्र मैं सदैव हृदय में संग्रह कर रक्खूँगा। कोई चित्रकार इसे चित्रित कर सके तो कितना अच्छा हो।"

अब फिर अमृतसर की पुनरावृत्ति नहीं

"किन्तु मुझे पता नहीं कि मैंने जो-कुछ कहा अखबारवाले वह सब छापेंगे या नहीं। जो बातें मैंने नहीं कही हैं, ऐसी बातें जबतक वे मेरी कही हुई न बतावें, तबतक मुझे परवा नहीं है। उत्तरीय अख़बारवाले मेरे प्रति बड़ी सज्जनता का व्यवहार करते थे। यहाँ मैं नहीं जानता कि वे मेरे साथ कैसा बर्ताव करेंगे, किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मुझे इस प्रसंग का लाभ लेकर उनके ज़रिये ब्रिटिश जनता को यह बता देना चाहिए कि यदि गोलमेज़-परिषद् असफल हुई तो मैं स्वयं दमन के शासन को सहन नहीं करूंगा—ब्रिटिश जनता अमृतसर की पुनरावृत्ति सहन नहीं कर सकती।"

गांधीजी को क्राइस्ट चर्च केथेड्रल बताकर उन्होंने इस पुरातन स्थापत्य के एक--एक भाग का इतिहास बताते हुए जिन घटनाओं में स्वतन्त्रता और सहिष्णुता के श्रेष्ठ गुणों का सच्चा मर्म प्रकट होता था, उन्हीं पर विशेष ज़ोर दिया। उन्होंने कहा—"थामस–ए–बेकेट ने वास्तव में स्वतन्त्रता के लिये प्राण दिये। उसने राजाओं की सत्ता के विरुद्ध बग़ावत की। इसीसे उसका नाम समस्त यूरोप में पूज्य है। वहाँ आगे, ठीक मध्य भाग में, एक पुराना गिर्जा है, जहाँ फ्रांस के अत्याचारों से भाग कर आये हुए फ्रांसीसी प्रेस्बीटेरियनों को शान्ति-पूर्वक प्रार्थना करने

की स्वतन्त्रता थी। वहाँ ह्यूबर्ट वाल्टर की क़ब्र है, जो क्रूसेड में शामिल हुआ, और तुर्क सुल्तान उसे बहुत नम्र प्रतीत हुआ। क़ब्र पर आप सुलतान का सिर देखेंगे, और यद्यपि दूसरे तीन-चार सिर बिगड़ अथवा मिट गये हैं, किन्तु मुझे ख़ुशी है कि यह बाक़ी रह गया है।"

रात को वह ज़मीन पर बैठकर गाँधीजी को चर्खा कातते हुए देखने लगे और कहा—"लोग कहते हैं कि गांधीजी मशीनों का तिरस्कार करते हैं, किन्तु यह तो ऐसा नाज़ुक यन्त्र है, मनुष्य मशीन के लिए जैसा मैंने पहले कभी नहीं देखा और नहीं बना है ? मैं इसके सूत के बने कपड़े पहनना बहुत पसन्द करूंगा।" अख़बारवालों से तो उन्होंने पहले ही कह दिया था कि गाँधीजी के मशीन (यन्त्र) सम्बन्धी विचारों के विषय में बड़ी ग़लतफ़हमी फैला दी गई है। मशीनों से मनुष्य को ग़ुलाम न बनाना चाहिये, यह एक बात है, और मशीनों से आदमियों को बेकार और दरिद्र नहीं बनाना चाहिये यह दूसरी। क्योंकि मशीनों से भारत के करोड़ों लोग दरिद्र हो गये हैं, इसीलिए गाँधीजी उनसे फिर चर्खा सम्भालने के लिए कहते हैं।"

जब कि वह बातें कर रहे थे, एक बार उनका हृदय फिर चीन के विपत्ति-ग्रस्त लोगों की ओर खिंचा। उन्होंने कहा—"महात्माजी, मैं समझता हूँ कि जब हम चीन को जायँगे,

आपका आशीर्वाद हमें प्राप्त होगा।" डीन जो-कुछ कहते हैं और करते हैं, उसमें उनकी सेवा-वृत्ति प्रकट होती है। और इस सेवा-वृत्ति का मूल उद्गम जितना इनकी ईश्वर के प्रति भक्ति है, कदाचित उतना ही उनकी सेवा-परायण पत्नी के साथ के सुन्दर समागम के वर्षों में भी होगा। ऐसा भासित होता है, मानों वह उनकी आत्मा के साथ ही रहते हों, विचरते हों, और निरन्तर उनका सहवास अनुभव करते हों। छोटी-से-छोटी बात उन्हें पत्नी का स्मरण करा देती है। प्रातःकाल हमारे लिए चाय बनाते समय वह कहने लगे—"यहाँ मुझे रसोईघर का पूर्ण परिचय नहीं। मैंचेस्टर के रसोईघर का मुझे पूरा परिचय था, क्योंकि वहाँ अपनी बीमार पत्नी के लिए मैं रात को पाँच या सात बार तक पकाता था।"

डीन में विनोदवृत्ति भी बहुत तीव्र है। उन्होंने कई बार अपनी ही, और इसी तरह डीनरी में जिन पुराने डीनों के चित्र टँगे हुए हैं उनकी, बातें करके हमें खूब हँसाया। किन्तु डीन का जो चित्र मैं सदैव अपने हृदय में संग्रह करके रखूंगा, वह है उनकी सदैव पीड़ित मानव-समाज का विचार करती हुई और इस प्रकार पत्नी का शाश्वत सहवास अनुभव करनेवाली उदार आत्मा।

[७]

किंगस्ली हॉल से लगा हुआ बच्चों का एक वसतिगृह है। जिस बच्चे ने गाँधीजी को 'चचा गाँधी' का प्यारा नाम दिया है

'चचा गाँधी'

वह उसीमें रहनेवाला एक तीन बरस का बच्चा है। जबसे बच्चों ने गाँधीजी को देखा है, तबसे वे रातदिन उन्हींका विचार करते हैं। "अम्मा! अब मुझे यह कह कि गाँधी क्या खाते हैं और वे जूते क्यों नहीं पहनते?" और ऐसे कई प्रश्न पूछते हैं। एक दिन माँ ने कहा:—"नहीं, देखो, उन्हें गांधी नहीं, गाँधीजी कहना चाहिए। तुम जानते हो कि गाँधीजी बहुत भले हैं।" छोटे बच्चे ने अपनी भूल सुधारते हुए कहा, "अम्मा, मैं अफ़सोस करता हूँ। अब मैं उन्हें 'चचा गाँधी' कहूँगा।" ईश्वर की भी यही दशा हुई थी और उसे भी 'चचा ईश्वर' कहा जाता है। परन्तु वह कहानी मैं छोड़ दूँगा, क्योंकि उसका मेरी इस कहानी से कोई सम्बन्ध नहीं है। अब यह नाम चल पड़ा और उनके जन्मदिन के उपलक्ष्य में छोटे बच्चों ने 'प्यारे चचा गाँधी' को खिलौने और मिठाई की भेंट भेजी। और लिखा—"यह जन्मदिन आपको मुबारिक हो! क्या अपने जन्मदिन के रोज़ आप यहाँ आयेंगे? हम बाजा बजायेंगे और गीत गायेंगे।"

परन्तु एक बच्चा है, जो बच्चों के इस वसतिगृह में नहीं रहता; अपने मातापिता की देखभाल में पल रहा है। वह चार बरस की लड़की है और गाँधीजी की एक संध्या की मुलाक़ात का स्मरण ताज़ा बनाये रखने के लिए वह यों प्रयत्न करती है।

सिद्धान्त और व्यवहार

गाँधीजी के जन्मदिन के रोज़ उसके बाप ने गाँधीजी से कहा, "आपसे मुझे एक शिकायत है।" गाँधीजी ने हँसते हुए पूछा, "वह क्या है?" "मेरी छोटी जेन रोज़ सुबह मेरे पास आती है, मुझे मारती है, जगाती है और कहती है। 'अब तुम लौट के मत मारो, क्योंकि उस दिन गाँधीजी ने हम लोगों से कहा था कि कोई मारे तो उलट के कभी मत मारो।" कई दूसरे बच्चों के भी माता-पिता प्रेमपूर्वक शिकायत करते हैं, कि वे उन्हें बड़ी तकलीफ़ देते हैं। जब गाँधीजी सुबह टहलने जाते हैं तब उन्हें नमस्कार करने के लिए जल्दी जगाने का आग्रह करते हैं और जो मातापिता जल्दी उठने के आदी नहीं हैं उन्हें जल्दी उठने में और इन बच्चों को जगाने में बड़ी कठिनाई मालूम होती है। शायद ये बच्चे भविष्य में जब बड़े होंगे तब बड़े बाग़ी निकलेंगे और मातापिता यदि समय के साथ आगे न बढ़े तो उनको उनसे ज़रूर कष्ट का अनुभव होगा। इस बच्चों ने जो बातें ग्रहण की हैं उसीसे साबित होगा कि मैं

खाली विचारतरंग ही नहीं वरन् वस्तुस्थिति लिख रहा हूँ।

उदाहरण के तौर पर एक छोटी लड़की ने गाँधीजी के जन्मदिन पर जो एक निबन्ध लिखा है वह देता हूँ। उसकी उम्र तो भूल गया हूँ, परन्तु मैं यह जानता हूँ कि वह दस बरस से छोटी है। निबंध यह है—

"असीसी का सन्त फ्रांसिस असीसी का छोटा ग़रीब आदमी गिना जाता था। वह सब तरह से गाँधीजी जैसा ही था।

"वे दोनों ही कुदरत को, जैसे कि बच्चे, चिड़ियों और फूलों को चाहते हैं, चाहते थे। गाँधीजी कच्छ पहनते हैं उसी तरह संत फ्रांसिस भी, जब इस पृथ्वी पर थे, कच्छ पहनते थे।

"गाँधी और संत फ्रांसिस धनवान व्यापारी के पुत्र थे। एक रात को जब संत फ्रांसिस अपने अनुयाइयों के साथ दावत में थे, उन्हें इटली के ग़रीबों का ख़याल हुआ। वह बाहर दौड़ गये, अपने क़ीमती कपड़ों का उन्होंने त्याग किया, अपना धन ग़रीबों को दे डाला और गाँधी जैसे पुराने कपड़े पहन लिये।

"सन्त फ्रांसिस ने कुछ अनुयायी अपने साथ लिये। उन्होंने वृक्षों की झोंपड़ियाँ बनाईं। गाँधीजी ने भी यही बात की। उन्होंने अपना धनी वैभवशाली जीवन ग़रीब भारतीय लोगों पर न्योछावर कर दिया।

"गाँधीजी के लोगों ने उन्हें लन्दन आने के लिए कपड़ा

दिया। जैसा कि हम बच्चों को, जो किंगस्ली हाल को जाते हैं, उन्होंने कहा, उनके पास उसे ख़रीदने के लिए काफ़ी पैसा नहीं है।

"वह सोमवार के दिन मौन रखते हैं, क्योंकि यह उनका धर्म है। गाँधोजी को उनके जन्मदिन के उपलक्ष्य में खिलौने, मोमबत्तियाँ और मिठाई की भेंट मिली है। वह बकरी का दूध मूंगफली और फल खा कर रहते हैं।"

एक दूसरा निबन्ध है, जो एक दस बरस के लड़के ने लिखा है। उसे ज्यों-का-त्यों यहाँ देता हूँ—

"गाँधीजी एक भारतीय हैं जिन्होंने १८९० में लन्दन में क़ानून की शिक्षा पाई। उन्होंने अपने देश की स्थिति सुधारने के लिए यह (वकालत) छोड़ दी।

"वह गोलमेज़-परिषद् में भारत के व्यापार के पुनरुद्धार के लिए प्रयत्न करने को आये हैं। ब्राह्मण लोग अस्पृश्यों को अपने मंदिरों में आने दें, इसके लिए वह प्रयत्न कर रहे हैं। वे क़रीब ६०,००,००० के हैं और वह नहीं जानते कि अच्छा खाना क्या है? गाँधोजी ने अपनी तमाम सम्पत्ति का त्याग किया है और ग़रीब-से-ग़रीब भारतीयों में से एक बनने का प्रयत्न करते हैं। यही कारण है कि वह कच्छ पहनते हैं।

"उनकी खूराक बकरी का दूध, फल आर शाक-भाजी है।

वह मांस और मछली नहीं खाते, क्योंकि वह जीवहिंसा के विरुद्ध हैं। गाँधीजी एक ईसाई भारतीय हैं।

"गाँधीजी अपनी रुई आप कातते हैं। वह इंग्लैण्ड में प्रतिदिन एक घण्टा कातते हैं और जब अस्पताल में थे तब भी कातते थे। लंकाशायर में रुई की मिलों में जाकर वह अभी ही लौटे हैं।

"वह रविवार की संध्या के ७ बजे से सोमवार की संध्या के ७ बजे तक प्रार्थना करते हैं और यदि तुम उनसे बोलो भी तो वह जवाब नहीं देते। जब वह मुलाक़ात करते-करते आये तो मेरे घर भी आये। उस वक्त मेरी माँ कपड़े पर लोहा कर रही थी। परन्तु उन्होंने कहा; 'काम बन्द मत करो, क्योंकि मुझे भी यह काम करना पड़ा है।' मैंने उनसे हाथ मिलाया था। 'हल्लो' और 'गुडबाय' का हिन्दुस्तानी शब्द 'नमस्कार' है।

डब्लू. ए. आई. सेविली, २१ ईगलिन रोड,

बाऊ, लन्दन, ई. ३ ३०-९-३१।

कुछ पत्रकार जो चौंकानेवाली कहानियाँ गढ़ डालते हैं और मन चाहा ऊट पटांग लिख डालते हैं, उसके सामने यह कैसा सच्चा और अमूल्य है!

मुझे यह कहना चाहिए कि उनके शिक्षक उन्हें जो सिखाते हैं और गाँधीजी के सम्बन्ध से वे जो कुछ सीखते हैं उसका यह परिणाम है।

इसके बिलकुल विपरीत, लन्दन से ४० मील दूर एक गाँव की शाला का, जहाँ मैं श्री ब्रेलसफर्ड के साथ गया था, यह चित्र है। मैंने वहाँ के विद्यार्थियों से पूछा—

हब्शी और हमारा झण्डा

"मैं जिस देश से आया हूँ उस देश का नाम लो।" कुछ क्षण चुप्पी रही, परन्तु आखिर को शिक्षक की पाँच साल की लड़की ने कहा:—"हबशी के मुलक से।" उसके पास बैठे हुए उससे कुछ बड़े लड़के को यह सुनकर आघात पहुँचा, उसने उसके कान में कहा, "यह काला नहीं है, यह तो हिन्दुस्तानी है।" एक-दूसरे वर्ग में ब्रेलसफोर्ड ने नक़्शे में हिन्दुस्तान बताने के लिए कहा। उन्होंने हिन्दुस्तान ठीक बताया, परन्तु शिक्षक ने फौरन् ही उनके ज्ञान में वृद्धि की, "यह देश हमारे झण्डे के नीचे है और यह सज्जन अपने लोगों के लिए हक माँगने आये हैं।" उन बेचारों ने गाँधी का नाम नहीं सुना था, परन्तु बाद में मैंने यह जान लिया कि जिस लड़के ने उस लड़की के कान में कहा था और उसकी भूल सुधारी थी वह एक मज़दूर स्त्री का लड़का है। वह अख़बार पढ़ती है और उसे गाँधीजी के प्रति बड़ा आदर है।

बच्चों के वसतिग्रह का जो चित्र मैंने दिया है वह उस गृह के अधिकारियों के लिए प्रशंसासूचक है और भावी पीढ़ी का नमूना है। गाँधीजी इंग्लैण्ड का किनारा छोड़ेंगे, उसके पहले

वहाँ के हज़ारों लड़के उनको देख सकेंगे और किसे मालूम है कि इसी पीढ़ी के साथ हमें हमारा हिसाब साफ़ करना होगा। आज के लोगों की बनिस्बत, जो उन अखबारों पर पले हैं जो भारत के लिए एक भी अच्छा शब्द नहीं लिखते बल्कि असत्य और बुराई ही करते हैं, यह पीढ़ी कहीं अच्छी और न्यायी होगी।

[८]

ब्रेल्स०—जब आप नमक-कर को उठा देंगे, तब इससे आमदनी में हुई घटी को पूरा करने के लिए क्या उपाय करेंगे ?

एच० एन० ब्रेल्सफर्ड

गाँ०—नमक-कर तो एक मामूली बात है; वास्तव में मुख्य प्रश्न तो ताड़ी और अफ़ीम की ज़कात का है। वस्तुतः यह आय का एक बड़ा अंश है। इस गढ़े को पूरा करने का कोई उपाय नहीं है, यदि हम सेना के व्यय में कमी न करें। यह सैनिक व्यय रूपी राक्षक ही हमारा गला घोट कर हमें मारे डाल रहा है। इस भयङ्कर अर्थ-प्रवाह का अन्त अवश्य ही होना चाहिए।

ब्रे०—मैं ख़याल करता हूँ कि गोलमेज़-परिषद् का यह मुख्य विषय होगा।

गाँ०—अवश्य ही यह उसका मुख्य विषय होगा। हम इसे छोड़ नहीं सकते।

कलाकार—तब क्या आप गोरी सेना को निकाल बाहर करना चाहते हैं ?

गाँ०—अवश्य ही मैं उसे हटा देना चाहता हूँ ।

ब्रे०—क्या आप सेना के साथ मुल्की अफ़सरों (सिविलियन्स) को भी शामिल करते हैं ?

गाँ०—हमें जो बोझ उठाना पड़ता है, वे उसके भाग हैं। उन्होंने शासन को अत्यधिक ख़र्चीला बना रक्खा है। वे जो बड़ी-बड़ी तनख्वाहें लेते हैं, उनका कोई औचित्य नहीं है । यहाँ, इंग्लैण्ड में उनकी श्रेणी के लोग जिस तरह रहते हैं, वे उससे कहीं अधिक बढ़-चढ़ कर रहते हैं ।

ऊँची तनख्वाह

ब्रे०—इन बड़ी-बड़ी तनख्वाहों के बारे में साधारणतः जो कारण दिये जाते हैं, क्या उस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता ? इन सिविलियन्स को अपने घर से सुदूर निर्वासन में और अत्यन्त विपरीत जल-वायु में रहना पड़ता है ।

गाँ०—अब यह बात नहीं है। आवागमन की सुन्दर सुविधाओं ने इस सारी स्थिति को बदल दिया है। सप्ताह में दो बार डाक आती-जाती है; इससे वे अपने देश में कुटुम्बी-जनों से बराबर संसर्ग बनाये रख सकते हैं; और गर्मी के मौसम में वे पहाड़ों पर जाते हैं । हम इन लोगों का स्वागत करेंगे, यदि ये हमारे

बीच हिन्दुस्तानियों की तरह रहना पसन्द करें। लेकिन वे स्वयं अकेले हो पड़ते हैं—स्वयं हम लोगों से अलग रहते हैं। वे अपने-आपको अपनी छावनियों में बन्द कर रखते हैं। छावनी शब्द स्वयं सैनिकता का परिचायक है और अवश्य ही अभीतक ये छावनियाँ फ़ौजी क़ानून के अन्तर्गत हैं। उनमें के किसी भी मकान के लिए यदि सेना कहे कि हमें उसकी आवश्यकता है, तो उसपर क़ब्ज़ा किया जा सकता है। हमारे एक आपसी मित्र ने यद्यपि अपने लिए मकान बनाया था, किन्तु उनके साथ ऐसा ही बर्ताव हुआ।

ब्रे०—सेना के सम्बन्ध में दो जुदे-जुदे प्रश्न हैं, अथवा एक ही प्रश्न की दो शाखायें हैं। एक प्रश्न है सिद्धान्त का, अर्थात् सेना पर भारत का अधिकार अथवा नियन्त्रण; और एक प्रश्न है आर्थिक, जो सेना में कमी करके पूरा किया जा सकता है। क्या आप दोनों पर ज़ोर देंगे ?

गाँ०—अवश्य ही मैं यह देखूँगा कि अपनी सेना पर हमारा अधिकार हो।

ब्रे०—कोई भी राष्ट्र पूर्णतः राष्ट्र नहीं है, यदि अपनी सेना पर उसका अधिकार न हो।

गाँधीजी०—सरकार मुझसे कहती है, कि पठानों से अपनी रक्षा करने के लिए मुझे यह सेना रखनी ही चाहिए; लेकिन मैं

उसका संरक्षण नहीं चाहता। मैं अपना तरीका अख्तियार करने की आजादी चाहता हूँ। मैं चाहूँ तो उनसे
सेना
लड़ने का या चाहूँ तो उन्हें मनाने का निश्चय करूँ। लेकिन मैं यह सब कुछ स्वयं अपनी इच्छानुसार करने की आजादी चाहता हूँ। कुछ समय के लिए हम भारत में कुछ गोरी सेना रखने के लिए रज़ामन्द हो सकते हैं; किन्तु सरकार हमसे कहती है कि गोरे लोग हिन्दुस्थानी-हकूमत के मातहत तबदील नहीं किये जा सकते।

ब्रे०—बिना उनकी सम्मति के वे तबदील नहीं किये जा सकते; (गाँधीजी सिर हिलाते हैं) लेकिन मैं ख़याल करता हूँ कि सन्तोषजनक स्थिति में, उनमें से बहुत से भारतीय सेना में भर्ती होने पर रज़ामन्द हो जायँगे।

गाँधीजी (प्रसन्नतापूर्वक)—हां, समस्या का यह हल हो सकता है; किन्तु जब सेना घटाई जायगी, तो मुझे भय है कि इससे आपके बेकारों की संख्या में और वृद्धि होगी।

ब्रे०—तब, यदि सेना पर भारत के अधिकार का सिद्धांत स्वीकार कर लिया जाय तो क्या आप कुछ वर्षों के लिए जितनी घटाई हुई गोरी सेना रखना पसन्द करेंगे, उसकी संख्या और ख़र्च के बारे में शर्तें तै करने पर रज़ामन्द होंगे?

गां०—हाँ, इस तरह की किसी भी बात पर रज़ामन्द हो

सकते हैं, बशर्ते कि वह बात भारत के हित में हो।

ब्रे०—मैं समझता हूँ वह आपकी अपेक्षा अधिकतर हमारे हित में होगी।

गाँधीजी (हँसते हुए)—फिर भी, हम उस पर रज़ामन्द हो जायँगे।

ब्रे०—यह अधिकार का सिद्धान्त ही कठिनाई पैदा कर रहा है। मैं नहीं समझता कि आपको वह अधिकार मिल जायगा। सेना की कमी का दूसरा प्रश्न है; एक हद तक आपको वह मिल जायगा। इस समय हम निःशस्त्री-करण परिषद् में जा रहे हैं। संसार के निःशस्त्री-करण में हमारे हिस्से का यह भाग हो सकता है।

गाँ०—मैंने बता दिया है कि मैं क्या चाहता हूँ। मेरी शर्तें प्रकट हैं। किन्तु सरकार पर्दे में कार्रवाई कर रही है मानों वह यह बताने से डरती है, कि वह क्या देना चाहती है। किन्तु मैं प्रतीक्षा करने के लिए सर्वदा तैयार हूँ।

ब्रे०—जब कि हम अपनी आर्थिक समस्याओं में उलझे हुए हैं, बातों का मन्दगति से तै होना अवश्यम्भावी है। किन्तु यह भी एक लाभ हो सकता है।

कलाकार—मैं सिर्फ एक बाहरी आदमी हूँ, लेकिन मैं जानना चाहता हूँ कि क्या इसमें एक दूसरी और कठिनाई नहीं है? क्या

देशी नरेश आपके मार्ग के निकृष्टतम रोड़े नहीं हैं ?

गाँ०—देशी नरेश भारतीय पोशाक में ब्रिटिश अफसर हैं। एक नरेश उसी स्थिति में है, जिसमें कि एक ब्रिटिश अफसर। उसे आज्ञा का पालन करना पड़ता है।

देशी नरेश

ब्रे०—तब क्या आप नरेशों को वाइसराय के नियन्त्रण में छोड़ सकते हैं ?

गाँ०—हमें वह नियन्त्रण भारतीय सरकार के लिए प्राप्त करना ही चाहिए।

ब्रे०—लेकिन क्या वे वाइसराय के अन्तर्गत रहना अधिक पसन्द नहीं करते ?

गाँ०—उनमें से किसीसे भी पूछिए और वे यही कहेंगे। किन्तु क्या यह सम्भव है कि वे दिल में इससे सन्तुष्ट होंगे ? कुछ भी हो आखिर में वे हमारे ही वर्ग के हैं। वे भारतीय हैं।

ब्रे०—किन्तु वर्तमान व्यवस्था में उन्हें कुछ लाभ मिलता है, जो आप हर्गिज़ नहीं होने दे सकते। नौकरशाही उनसे शिष्टता और शुद्ध राजकीय व्यवहार का ज़बरदस्ती पालन करवाती है; किन्तु वह उनको अपनी प्रजा के साथ मनमाना बर्ताव करने के लिए काफ़ी अधिक खुला छोड़ देती है।

गाँ०—इसके लिए "शिष्टता" शब्द ठीक नहीं है। इसकी अपेक्षा यह कहिए "क्षुद्र पारतन्त्र्य" अर्थात् नीच गुलामी। उसमें

से एक भी अपनी आत्मा को अपनी नहीं कह सकता । निज़ाम कुछ कल्पना या उपाय सोच सकते हैं । किन्तु वाइसराय का क्रोध से भरा एक पत्र उन्हें ठंडा कर देने के लिए काफ़ी है । लार्ड रीडिंग के शासन-काल में जो-कुछ हुआ वह आप जानते ही हैं ।

ब्रे०—अधिकार अथवा नियन्त्रण के इस प्रश्न के अलावा, यदि संघ व्यवस्थापक सभा के सदस्यों में ४० प्रतिशत सदस्य देशी नरेशों द्वारा निर्वाचित हों, तो क्या आपके 'लाखों' अध-भूखों के हित की कोई व्यवस्था हो सकने की आशा है ?

गां०—जिस तरह हम आपसे निपटेंगे, उसी तरह हम उनसे (देशी नरेशों से) भी निपट लेंगे । बल्कि उनसे निपटना कहीं अधिक आसान होगा ।

ब्रे०—मेरा ख़याल है कि उनका जवाब कहीं अधिक पाशविक होगा । हमने तो लाठी का ही इस्तेमाल किया है; किन्तु वे बन्दूक का इस्तेमाल करेंगे ।

गां०—यह आपका जातीय अभिमान है । यह ठीक है, इसके लिए मैं आपकी सराहना करता हूँ । हम सबको यह अभिमान होना चाहिए । किन्तु आप इस बात को अनुभव नहीं करते कि भारत में ब्रिटिश शक्ति प्रतिष्ठा पर कितनी निर्भर रहती है । भारतीय इससे सम्मोहित हो गये हैं । आप एक बहादुर जाति हैं

और आपकी प्रतिष्ठा आपको हम पर धाक जमाने में समर्थ बना देती है। यही बात मैंने दक्षिण अफ्रिका में देखी है। जुलू एक लड़ाकू जाति है, लेकिन फिर भी एक जुलू रिवाल्वर को देखते ही, चाहे वह खाली ही क्यों न हो, काँपने लग जायगा। यदि नरेशों से हमारा झगड़ा हो, तो उन्हें आपकी प्रतिष्ठा का लाभ न पहुँचेगा। यदि हमारे लोगों को मराठा फ़ौज का मुक़ाबला करना पड़े तो हम अपने-आपको कहेंगे—"हम भी मराठे हैं।" दक्षिण अफ्रिका की चर्चा करते हुए मुझे देशी नरेशों के साथ के सम्बन्ध में हम जो परिवर्तन करना चाहते हैं, इसके लिए एक उदाहरण याद आ गया। स्वाज़ीलैण्ड पर पार्लमेण्ट का नियन्त्रण रहा करता था, किन्तु जब यूनियन का निर्माण हुआ तो वह नियन्त्रण उसके हाथों सौंप दिया गया। इसी तरह हमारी यह दलील है कि नरेशों को भारतीय शासन के नियन्त्रण में सौंप दिया जाय।

[६]

वुडब्रुक उपनिवेश एक ऐसा स्थान है, जहाँ श्री अलेक्ज़ेंडर जो उन खतरनाक दिनों में, सदा उनकी सहायता पर आश्रित

लोहे की भूमि में

अपंग पत्नी को छोड़ कर गत वर्ष भारत पधारे थे, श्री जेक होईलेण्ड जिन्होंने भारत में आचार्य्य-पद पर कार्य करते समय तथा वुडब्रुक में

१५ राष्ट्रों के विद्यार्थियों को पढ़ाते समय भारत का सच्चा ज्ञान प्रचारित किया है, तथा श्री एस० जी० वुड, जो यहाँ के शिक्षण संचालक हैं, आदि क्वेकर मित्रों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय, शान्ति, मित्रता तथा बन्धुत्व की सृष्टि तथा विकास किया जाता है। उपार्जित धन के संग्रह और उसके उपयोग को मनुष्य जाति के हित की दृष्टि से नियंत्रित करने के लिए वुडब्रुक जहाँ उदाहरण स्वरूप है तहाँ यह तीर्थ स्थान भी है। इसका काम मि० केडबरी के, जो अपने चाकलेट के कारण प्रसिद्ध है, दान से चलता है। यह आश्रम उसी घर में है जहाँ मि० कैडबरी रहते थे और जहाँ उनके पुत्र वार्डन के पद पर हैं। गाँधीजी का यहाँ कैसा प्रेमपूर्ण स्वागत हुआ, इसका अन्दाज श्री वुड के उस पत्र से लगता है, जो उन्होंने उस शाम की अपनी अनुपस्थिति के लिए क्षमा-प्रार्थना करते हुए गाँधीजी को लिखा था। वह लिखते हैं :—

"एक पूर्व निश्चित कार्यक्रम के कारण वुडब्रुक के आज—रविवार-के तीसरे पहर के इस सम्मेलन के सभापति का आसन ग्रहण न कर सकने के कारण 'फ्रांसीसियो के शब्द में' मैं अपने-को उजड़ा हुआ-सा पाता हूँ, क्योंकि आज मैं घरमिंघमनिवासी आपके अनेक मित्रों और प्रशंसकों की ओर से आपका स्वागत करने के सुयोग से वंचित हो गया हूँ।

"इंग्लैण्ड के बहुत से लोग आपको नहीं समझते और जब कि हम आपको समझते हैं, या जिनकी यह धारणा है कि समझते हैं, तो सदा आपके अनुगामी होने में अपने-आपको असमर्थ पाते हैं, परन्तु ईश्वर को धन्यवाद है कि जिसने भारत के इतिहास के इस कठिन समय और संसार की इस विषम अवस्था में आप जैसा नैतिक शक्ति-सम्पन्न पैग़म्बर पैदा किया है। आप पर इस समय जो ज़िम्मेदारी है, हम कुछ अंशों में उसे समझते हैं, और अपने इस महान कार्य के लिए आपको जिस शक्ति की आवश्यक्ता है, यदि आपको वुडब्रुक-संघ में एक दिन शान्ति का बिताने से उस शक्ति के क़ायम रखने में मदद मिलती हो तो हम अपनेको धन्य समझेंगे। हमारी अभिलाषा है कि जिस परिषद् में आप इतना परिश्रम कर रहे हैं, उसमें भारत और इंग्लैण्ड तथा हिन्दू और मुसलमानों के बीच ऐसा समझौता हो जाय कि जिससे भारतीय राष्ट्रवाद के उचित आदर्शों की पूर्ति हो सके।

"हमें ऐसे समझौते की आशा इसलिए भी है कि इससे आपकी किसानों के मनुष्यत्व के उत्थान की अभिलाषा की पूर्ति होगी। हमें आपके जीवन और कार्य से वह ज़बरदस्त चेतावनी मिली है, जिसकी हमें आवश्यकता थी और जिसके लिए हम अपूर्ण रूप से तैयार हैं, और जिससे हमें बार-बार

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की यह प्रार्थना याद आती है—'हे ईश्वर हमें इतना बल दे कि जिससे हम ग़रीबों की कभी अवहेलना न करें।'

वास्तव में इस संस्था के आजीवन सदस्यों के जीवन और विचार कवि रवीन्द्र की उपर्युक्त प्रार्थना के अनुरूप ही है। बरमिंघम के बिशप को विज्ञान और धर्म एकसाथ दोनों के आचार्य होने का दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त है। वह रॉयल सोसायटी के सदस्य भी हैं। कालेज में वह श्री मॉण्टेगू के सहपाठी थे और जब कि श्री मॉण्टेगू ने अपने भारत-सचिव होने की महत्वाकांक्षा पूरी की, उनसे काफी परिचय होने के कारण बिशप भारत तथा उसकी समस्याओं के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान रखते हैं। व्यक्तियों और वस्तुओं के सम्बन्ध में उनके अपने अलग विचार हैं, किन्तु वैज्ञानिक मस्तिष्कवालों की तरह उनमें जिज्ञासु-भाव अवश्य हैं, और वह अपने विचार निःसङ्कोच प्रकट करने का साहस रखते हैं। एक बार किसी बात पर उन जैसों का विश्वास दृढ़ हो जाय तो वह फिर उसके बड़े जबरदस्त समर्थक अर्थात् हिमायती हो जाते हैं। भारत के विषय में गाँधीजी की उनसे बड़ी देर तक बातें होती रहीं। उन बातों में क्या हुआ, यह तो मैं नहीं बताऊंगा और न बताना उचित ही है; किन्तु एक-दो मनोरञ्जक

बरमिंघम के बिशप

चुटकलों का जिकर कर देना चाहता हूँ। वैज्ञानिक बिशप ने विज्ञान और मशीनों का बड़े जोरों से समर्थन किया और कहा कि जब इनके अर्थात् विज्ञान और मशीनों के द्वारा मनुष्य को शारीरिक परिश्रम से अवकाश मिल जायगा तो वह अपना सम्पूर्ण अथवा अधिकांश समय मानसिक श्रम को दे सकेगा। परन्तु गाँधीजी ने "निठल्ले पुरुष के सिर पर शैतान सवार रहता है" इस पुरानी कहावत की याद दिलाते हुए कहा कि मुझे विश्वास नहीं है कि मनुष्य अपना अवकाश का समय लाभ-दायक बातों के चिन्तन में व्यतीत करेगा। इसपर बिशप ने कहा—"देखिए, मैं दिन भर में मुश्किल से एक घण्टा काम करता हूँ, बाक़ी सब समय मानसिक चिन्तन में ही बीतता है।" गाँधीजी ने इसके उत्तर में हँसते हुए कहा कि "यदि सब मनुष्य बिशप हो जायँ तो बिशपों का धन्धा ही जाता रहेगा।"

डा० पारधी और उनकी धर्मपत्नी ने बरमिंघम के सब भारतीयों को गाँधीजी से मिलने के लिए अपने घर पर निमन्त्रित किया था, वहाँ हमने क़रीब एक घण्टा बिताया। डा० पारधी प्रायः तीस वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड आये और अपने निर्वाह के लिए परिश्रम करते हुए भी एफ० आर० सी० एस० की परीक्षा पास की और केवल अपने परिश्रम और गुणों के बल पर शल्य-चिकित्सा अर्थात्

चार आना रोज

सर्जरी में इतना नाम उन्होंने कमाया है। उनकी धर्मपत्नी एक अंग्रेज महिला हैं और वह वहाँ रह कर भी भारत के विषय में दिलचस्पी रखकर कुछ-न-कुछ सेवा करने में प्रयत्नशील रहती हैं। अस्तु। वहाँ मित्रों के सन्देश देने के आग्रह पर गाँधीजी ने एक ही वाक्य में कहा—"आप इंग्लैण्ड में रहने वाले मुट्ठी-भर भारतीयों पर भारत की गौरव-रक्षा का भार है, अतः आप सतर्क रह कर कार्य करें।" इसपर उपस्थित सज्जनों में से एक ने पूछा कि हम भारत की सेवा किस तरह कर सकते हैं? उत्तर में गाँधीजी ने कहा—"आप अपनी बुद्धि और चातुर्य को पैसा कमाने में लगाने के बजाय देश की सेवा में लगावें। यदि आप चिकित्सक हैं तो भारत में रोगों की कमी नहीं है। यदि आप वकील हैं तो भारत में विरोध और झगड़े निपटाने का बहुत अवसर है; आप झगड़े बढ़ाने के बजाय मौजूदा झगड़ों को ही निपटाइए और मुकद्दमेबाजी को बन्द करवाइए। यदि आप एंजिनियर हैं तो आप अपने देशवासियों की आवश्यकता और सामर्थ्य के अनुसार आरोग्यप्रद और स्वच्छ हवादार नमूने के मकान बनाइए। वास्तव में जो-कुछ ज्ञान आपने यहाँ प्राप्त किया है, वह सब देश के हित में लगाया जा सकता है।" जिस मित्र ने उक्त प्रश्न किया था वह चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट अथवा हिसाबनवीस हैं, अतः गाँधीजी ने उनके सामने श्री

कुमारप्पा का उदाहरण पेश करते हुए कहा—"श्री कुमारप्पा, आप ही की तरह, एकाउण्टेण्ट हैं; वह जो काम कर रहे हैं, वही आप भी कीजिए। भारत में महासभा और उससे सम्बन्धित संस्थाओं के आय-व्यय-निरीक्षण के लिए सुयोग्य एकाउण्टेण्टों की नितान्त आवश्यकता है। आप भारत में आइए, मैं वहाँ आपको काफ़ी काम बताऊँगा और प्रतिदिन चार आने के हिसाब से, जो करोड़ों भारतीयों की आय से अधिक है, आपको फ़ीस दिलाऊँगा।"

भारतीय मित्रों को वर्त्तमान से अधिक भविष्य की चिन्ता थी और गाँधीजी ने इस सम्बन्ध में उनसे कहा—

'हमें खेद है। जो बात हमें बहुत समय पहले कर देनी चाहिए थी, वह हमने नहीं की।' अंग्रेज़ों से ये शब्द कहलवाने के पहले भारत को और भी कष्ट की आग में से गुज़रना होगा। कोई भी बलवान राष्ट्र जितनी हम कल्पना करते हैं उतनी आसानी से झुकने के लिए तैयार नहीं होता। और अहिंसा के सिद्धान्त से बँधे होने के कारण, मैं इंग्लैण्ड को उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य करने के लिए बाध्य भी नहीं करूँगा। पूर्व इसके कि इंग्लैण्ड वस्तुतः अधिकार त्याग करे, यह आवश्यक है कि उसे यह निश्चय हो जाय कि भारत स्वतन्त्रता प्राप्त करे और इंग्लैण्ड इसके लिए झुके इसीमें उसका हित है।"

श्रीमती पारधी ने कहा—"क्या आप यह ख़याल नहीं करते कि इंग्लैण्ड को यह निश्चय कराने के लिए आपको कुछ अधिक समय तक यहाँ रहना चाहिए ?"

गाँधीजी ने कहा—"नहीं, मैं नियत समय से अधिक नहीं ठहर सकता। यदि मैं अधिक समय तक ठहरूँ तो यहाँ मेरा कुछ भी असर न रहेगा और लोग इधर तवज्जह भी कम देने लगेंगे। अभी मेरा जो असर होता है, वह केवल तात्कालिक है, स्थायी नहीं। मेरा स्थान तो भारत में अपने देशवासियों के बीच है और सम्भव है उन्हें एकबार फिर कष्ट-सहन का संग्राम आरम्भ करना पड़े। वस्तुतः अंग्रेज इस बात को जानते हैं कि मैं एक पीड़ित जनता का प्रतिनिधि हूँ और इसीसे वे मेरी बातों पर ध्यान देते दिखाई देते हैं; और जब मैं भारत में अपने देशवासियों के साथ कष्ट सहता होऊँगा, तब वहाँ से मैं जो-कुछ कहूँगा वह ऐसा होगा जैसे हृदय-से-हृदय की बात होती हो।

सुधारक शिक्षणालय

श्री रुडोल्फ स्टेनर के बाल-सुधारक शिक्षणालय की मुलाक़ात का वर्णन भी मैं यहाँ अवश्य करूँगा। रुडोल्फ स्टेनर का तो सन् १९२५ में ही देहान्त हो चुका है, किन्तु उनके शिष्य उनकी संस्था को चलाने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनका उद्देश्य मानव-हृदय का अधिक गहन और सच्चा अध्ययन करने तथा संसार के विकास

बालकों के हृदय पर गहरा असर पड़ता है। हमने उन्हें लेटिन, ग्रीक और जर्मन गीत गाते सुना (जिससे मुझे वेदोच्चार का स्मरण हो आया); वे इसमें काफ़ी कुशलता प्राप्त कर चुके हैं। वे वहाँ दुःखपूर्ण और उन्मादी जीवन व्यतीत करने के बजाय बड़े आनन्दपूर्वक कौटुम्बिक जीवन का सुख उठाते हैं, यहाँ तक कि हमें उनके विषय में पूर्णज्ञान न होता तो हम यह कदापि न पहचान पाते कि ये हीन-अङ्ग बालक हैं। शाम को गाँधीजी के आगमन के उपलक्ष्य में उनके खेल हुए, किन्तु उन्हें हम देख न सके। दुर्भाग्य से समयाभाव के कारण इस संस्था का हमारा अध्ययन सीमित ही रहा; परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस संस्था का भविष्य उज्ज्वल है और यह स्थान मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षकों के अध्ययन करने योग्य है।

वुडब्रुक हाल में जो वृहद् सभा हुई, उसमें अनेक संस्थाओं के प्रतिनिधि आये थे। गाँधीजी ने अपने भाषण में कहा:—

अंग्रेज जनता का कर्तव्य

"अन्य स्थानों पर तो मैं कार्यवश और अपना सन्देश सुनाने गया हूँ; परन्तु यहाँ मैं तीर्थ-यात्रा समझ कर आया हूँ—तीर्थ-यात्रा इसलिए कि इसी संस्था ने हमारे संकट के समय श्री होरेस एलेग्जेण्डर जैसे सुहृद्वर को हमारे पास भेजा था। वह ऐसा समय था कि जब सत्याग्रह के समाचार सरकार द्वारा रोक लिये जाने के कारण

बाहर नहीं पहुँच सकते थे और मुख्य-मुख्य सब नेता जेलों में बन्द थे। ऐसे कठिन समय में क्वेकर मित्रों ने भारत में अपना प्रतिनिधि भेजना निश्चित किया और श्री एलेग्ज़ेण्डर को इस कार्य के लिए चुना। केवल आपने ही नहीं किन्तु उनकी चिररोगिणी स्त्री ने भी उनको सहज ही में अवकाश दे दिया। इससे आप समझ सकते हैं कि यह स्थान मेरे लिए तीर्थ-यात्रा क्यों है।

"अपने कार्य के विषय में चर्चा करके मैं आपका समय नहीं लेना चाहता। अधिकांश में लोग अब यह अवश्य जान गये हैं कि राष्ट्रीय महासभा—काँग्रेस—की देश के लिए क्या माँग है। अपनी स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए कदाचित् इतिहास में पहली ही बार हमने जिस साधन का उपयोग किया है, वह आप जानते हैं। साथ ही आप यह भी जानते हैं कि गत वर्ष जनता ने उस साधन को कहाँ तक निभाया। मैं आपसे यह बात ज़ोर देकर कहना चाहता हूँ कि कि यदि गोलमेज़-परिषद् के वर्तमान चालू काम को सफल करना हो तो वह बुद्धिशाली लोकमत का दबाव पड़ने पर ही हो सकता है। मैंने अक्सर यह कहा है कि मेरा असली काम परिषद् में नहीं उससे बाहर है। अपने कुछ सार्वजनिक भाषणों में मैंने बिना किसी संकोच के कहा है कि परिषद् में कुछ भी काम नहीं हो रहा है, वह व्यर्थ ही समय बिता

रही है और जो लोग हिन्दुस्थान से आये हुए हैं उनका और साथ ही परिषद् के अंग्रेज प्रतिनिधियों का बहुमूल्य समय बरबाद किया जा रहा है। मेरी यह राय होने से, भारतवासी जो संग्राम भारी कठिनाइयों का सामना करते हुए लड़ रहे हैं, ब्रिटिशद्वीप के लोकमत के ज़िम्मेवर नेताओं को वह समझ लेना चाहिए। क्योंकि जबतक आप लोग इस आन्दोलन का सच्चा स्वरूप और इसका रहस्य न समझ लेंगे तबतक यहाँ के शासन-तन्त्र-संचालकों पर आप दबाव नहीं डाल सकते। मैं जानता हूँ कि इस सभा में आये हुए आप सब लोग सत्य के सच्चे शोधक हैं, और इसी कार्य में नहीं, प्रत्युत् मानव-समुदाय की सहायता की अपेक्षा रखने वाले सभी कार्यों के प्रति सत्य-मार्ग ग्रहण करने के लिए आतुर हैं, और यदि आप इस प्रश्न को उक्त दृष्टि-बिन्दु से देखेंगे तो बहुत सम्भव है कि गोलमेज-परिषद् का काम सफल हो जाय।"

भाषण के अन्त में गाँधीजी से पूछे गये प्रश्नों में एक प्रश्न यह था कि 'क्या स्वयं भारतीय प्रतिनिधि साम्प्रदायिक प्रश्न पर आपस में सहमत न होकर समझौते को असम्भव नहीं बना रहे हैं?' गाँधीजी ने इस सूचना का ज़ोरों से इनकार करते हुए कहा—"मैं जानता हूँ कि आपको इसी प्रकार विचार करना सिखाया गया है। इस मोहक

भेदभाव की नीति

सूचना के जादू के असर को आप दूर नहीं कर सकते। मेरा दावा यह है कि विदेशी शासकों ने 'फूट डाल कर शासन करने' की भेद-नीति से भारत पर शासन किया है। यदि शासकों ने वारांगना की तरह आज एक दल से और कल दूसरे से गठजोड़ा करने की नीति इख़्तियार न की होती तो भारत पर कोई भी विदेशी साम्राज्यवादी हुकूमत चल नहीं सकती थी। विदेशी शासन का फच्चर जबतक मौजूद है और गहरे-से-गहरा उतरता जाता है, तबतक हमारे में फूट बनी ही रहेगी। फच्चर का स्वभाव ही यह है। फच्चर को निकाल डालिए और चिरे या फटे हुए दोनों हिस्से इकट्ठे होकर मिल जायँगे। फिर स्वयं परिषद् के वर्तमान संगठन के कारण भी जनता का काम अत्यन्त कठिन हो गया; क्योंकि यहाँ आये हुए सब प्रतिनिधि सरकार द्वारा नामजद किये हुए हैं। उदाहरणार्थ, यदि राष्ट्रीय दल के मुसलमानों से अपना प्रतिनिधि चुनने के लिए कहा जाता तो डा० अनसारी चुने जाते। अन्त में हमें यह भी न भूलना चाहिए कि यदि ये ही प्रतिनिधि जनता द्वारा निर्वाचित होते तो अधिक जिम्मेदारी के साथ काम करते। किन्तु हम तो यहाँ प्रधान मन्त्री की कृपा से आये हुए हैं। हम न तो किसी के प्रति जिम्मेवार हैं, न किसी निर्वाचक-मण्डल से हमें प्रार्थना या अपील करनी है। फिर हमसे कहा जाता है कि यदि हम साम्प्र-

दायिक प्रश्न का आपस में निपटारा न कर लेंगे तो किसी प्रकार की प्रगति न हो सकगी। इसलिए स्वभावतः ही प्रत्येक अपनी ओर खींचता है और अधिक-से-अधिक जितना सम्भव हो जबरदस्ती प्राप्त करना चाहता है। इसके सिवा प्रतिनिधियों से साम्प्रदायिक प्रश्न का एकमत से निपटारा कर लेने के लिए तो कहा जाता है, किन्तु यह नहीं बताया जाता कि यदि वे एकमत हो जायँगे तो उन्हें मिलेगा क्या ? इससे जिस वस्तु के लोभ से पहले से ही समझौता कर सकते थे, उसकी आरम्भ में ही हत्या कर दी जाती है; इस प्रकार समझौता लगभग असम्भव हो जाता है। सरकार को यह घोषणा कर देने दीजिए कि भारतीय आपस में सहमत हों या न हों, हम तो इस देश से जा रहे हैं, फिर आप देखेंगे कि हम जल्दी ही एकमत हो जायँगे। बात यह है कि किसीको यह प्रतीत नहीं होता कि हमें सच्ची—सजीव स्वतन्त्रता मिलने वाली है। हमें जो-कुछ देना कहा जाता है, वह तो भारत को लूटने की नौकरशाही की सत्ता का एक अंग मात्र है और वही हमें आपस में लड़ा मारता है। फिर, सरकार के विधान की रचना का आधार साम्प्रदायिक प्रश्न का निपटारा रखने के कारण, प्रत्येक पक्ष अधिक-से-अधिक माँग करने के लिए ललचाता है। यदि सरकार को सचमुच कुछ करना हो, तो उसे बिना किसी हिचकिचाहट के मेरी यह सूचना स्वीकार कर

लेनी चाहिए कि साम्प्रदायिक प्रश्न के निर्णय के लिए एक न्याय-मण्डल नियुक्त कर दिया जाय। यदि यह हो जाय, तो बहुत सम्भव है कि इस न्याय-मण्डल के हस्तक्षेप के पहले ही समस्या का कोई सर्व-सम्मत हल निकल जावे।"

यदि ब्रिटिश सरकार अपना कर्तव्य छोड़ दे तो सन्धि-काल में भारत का क्या हाल होगा, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए

भारत में ब्रिटेन का एकमात्र काम

गाँधीजी ने कहा—"विदेशी शासन जीवित शरीर में विजातीय पदार्थ की तरह है। इस विष को निकाल दीजिए, और शरीर तुरन्त संचालित होने लगेगा। यह कहना कि ब्रिटिश सरकार का भारत से चला जाना अपना कर्त्तव्य छोड़ देना कहा जायगा, निरी डींग है। आज वह जिस कर्त्तव्य का पालन कर रही है, वह है भारत को लूटना या चूसना। ब्रिटेन के भारत को चूसना बन्द करते ही भारत की आर्थिक स्थिति सुधर जायगी।"

एक दूसरे सदस्य ने पूछा,—"आप भारत की दरिद्रता का कारण ब्रिटिश लूट को बताते हैं, किन्तु क्या यह सच नहीं है

अंग्रेज़ बनिया

कि किसानों की दुर्दशा का वास्तविक कारण बनियों का लालच और विवाह और मृत्यु के समय की फ़िज़ूलख़र्ची है? फिर आप ब्रिटिश सरकार पर फ़िज़ूलख़र्ची का आरोप करते हैं, किन्तु देशी नरेशों की

फ़िज़ूलख़र्ची के सम्बन्ध में आपका क्या कहना है ?"

गाँधीजी ने उत्तर देते हुए कहा—"हिन्दुस्थानी बनिये की तो अंग्रेज़ी बनियों के सामने कुछ भी बिसात नहीं, और यदि हम हिंसावादी होते तो हिन्दुस्थानी बनिया गोली से उड़ाये जाने योग्य समझा जाता। किन्तु उस हालत में अंग्रेज़ी बनिया तो सौ बार गोली से उड़ाये जाने योग्य समझा जाता। मुद्रा-नीति की जादूगरी और भूमिकर (लगान) की निर्दय वसूली द्वारा अंग्रेज़ बनिया जो लूट मचाता है, उसके मुक़ाबले में हिन्दुस्थानी बनिया जो ब्याज लेता है, वह कुछ भी नहीं है। भारतीय जैसी असंगठित और विनयशील जाति की ऐसी संगठित लूट का उदाहरण मैंने इतिहास में और कोई नहीं देखा। भारतीय नरेशों की फ़िज़ूलख़र्ची के सम्बन्ध में तो यदि मेरे पास सत्ता हो तो उनके पास से उनके उद्धत महल छीन लेने में मैं ज़रा भी सङ्कोच न करूँगा; किन्तु ब्रिटिश सरकार के पास से नई दिल्ली छीन लेने में तो मुझे उससे अनन्त गुना कम संकोच होगा। जब कि करोड़ों लोग भूखों मर रहे थे, उस समय भारत को देखने में इंग्लैण्ड का सा बना देने की एक वाइसराय की सनक को पूरा करने के लिए नई दिल्ली पर निर्दयतापूर्वक जो करोड़ों रुपये बरबाद किये गये हैं उनके मुक़ाबले में राजाओं की फ़िज़ूलख़र्ची किसी भी गिनती में नहीं है।"

दूसरा प्रश्न यह पूछा गया था—"क्या मौलिक प्रश्नों पर भारत के लोगों ने आपस में एकमत से निर्णय कर लिया है?" उत्तर में गाँधीजी ने कहा—"महासभा ने साम्प्रदायिक प्रश्न के निपटारे की एक योजना पेश की है; किन्तु वह अभी स्वीकृत नहीं हुई है। यहाँ परिषद् में जो अनेक दलों का कथित प्रतिनिधित्व करने आये हैं, उनमें महासभा भी एक दल है। किन्तु सच बात तो यह है कि भारत के करोड़ों की संख्यावाले जनसमूह की ओर से बोलनेवाली यह एक ही प्रतिनिधि-संस्था है। यह एक ही ऐसी जीवित, चैतन्ययुक्त और स्वतन्त्र संस्था है, जो लगभग ५० वर्ष से काम करती आ रही है। यह एक ही ऐसी संस्था है, जो असंख्य कष्टों को सहते हुए भी टिकी हुई है। सरकार के साथ सन्धि करने वाली यह महासभा ही थी, और आप चाहे जो कहें, पर यह एक ही ऐसी संस्था है जो एक दिन वर्तमान सरकार का स्थान ग्रहण करेगी। मेरा दावा है कि उसने अपनी कार्यसमिति के एक सिख, एक मुसलमान और एक हिन्दू सदस्य की बनी हुई प्रतिनिधि-समिति द्वारा जो योजना पेश की है, वह जहाँ तक औचित्य और न्याय का सम्बन्ध है, किसी भी न्याय-मण्डल की जाँच के सामने टिकी रह सकेगी।"

'मैञ्चैस्टर गार्जियन' में उसके सम्वाददाता ने लिखा था कि

गाँधीजी को अछूतों की ओर से बोलने का क्या अधिकार है, क्योंकि वे स्वयं ब्राह्मण वर्ग के हैं, जो अछूतों को अभीतक दबाता चला आया है। एक मित्र ने इस लेख का हवाला देते हुए गाँधीजी से पूछा कि "इस प्रकार क्या वे स्वयं ही समझौते के मार्ग में विघ्न-रूप नहीं हैं?" उत्तर में गाँधीजी ने कहा—"मैं कभी यह न जानता था कि मैं ब्राह्मण हूँ; हाँ, मैं बनिया अवश्य हूँ, और यह शब्द एक प्रकार का तिरस्कार-सूचक है। किन्तु मैं श्रोतावर्ग को बता देना चाहता हूँ कि ४० वर्ष पहले जब मैं विलायत आया था, तबसे मेरी जातिवालों ने मुझे बहिष्कृत कर दिया है, और मैं जो काम कर रहा हूँ, उससे मुझे अपनेको किसान, जुलाहा और अछूत कहलाने का अधिकार प्राप्त है। मैंने अपनी पत्नी से विवाह किया उससे बहुत पहले ही मैंने अस्पृश्यता-निवारण के कार्य को अपना लिया था। हमारे संयुक्त जीवन में दो बार ऐसे प्रसंग आये थे, जिनमें मुझे अछूतों के लिए काम करने और अपनी पत्नी के साथ रहने इन दो बातों में से एक को चुन लेने का प्रश्न उपस्थित हो गया था और इनमें मैं पहली को ही पसन्द करता; किन्तु मेरी नेकदिल पत्नी को धन्यवाद है कि उसके कारण वह कठिन प्रसंग टल गया। मेरे आश्रम में, जोकि मेरा कुटुम्ब है, कई अछूत हैं और एक मधुर किन्तु नटखट बालिका मेरी लड़की की तरह रहती है।

रही यह बात कि मैं समझौते में विघ्न-रूप हूँ, सो मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं इस कारण विघ्न-रूप हूँ कि भारत के लिए वास्तविक पूर्ण स्वराज्य से कम स्वीकार करके समझौता करने के लिए मैं ज़रा भी तैयार नहीं हूँ।"

अन्तिम प्रश्न इस प्रकार था—"आप बुद्धि को अपील करने के साथ ही अपने शोधे हुए शस्त्र का भी प्रयोग करते हैं, इन दोनों का मेल मिलाना हमें कठिन होता है। यह क्या बात है कि कभी-कभी आप यह ख़याल कर लेते हैं कि बुद्धि को अपील करना एक ओर रखकर अधिक कड़ी कार्रवाई करना अच्छा है ?"

हृदय या मस्तिष्क

उत्तर में गाँधीजी ने कहा—"सन् १९०६ तक मैं केवल बुद्धि को अपील करने की नीति पर विश्वास करता रहा। मैं अत्यन्त परिश्रमी सुधारक था। सत्य का नैष्ठिक उपासक होने के कारण मैं सदैव वास्तविक बातों से परिचित रहता था, इससे मैं एक अच्छा मज़मूननवीस था। किन्तु जिस समय दक्षिण अफ़्रिका में कठिन प्रसंग उपस्थित हुआ उस समय मैंने देखा कि बुद्धि को अपील करने का कुछ असर न हुआ। मेरे देशबन्धु उत्तेजित हो उठे थे—कीड़ा तक किसी समय उलट पड़ता है—और बदला लेने की चर्चा उठ खड़ी हुई थी। मेरे लिए हिंसा में सम्मिलित हो जाने अथवा संकट का मुक़ाबला करने और

गन्दगी को रोकने के लिए कोई दूसरा तरीक़ा ढूँढ निकालने इन दो बातों में एक को पसन्द कर लेने का प्रश्न उपस्थित था और मुझे यह बात सूझी कि हमें अपनेको पतित बनानेवाले क़ानून को मानने से इनकार कर देना चाहिए और इसके लिए यदि सरकार चाहे तो हमें जेल भेज दे। इस प्रकार शस्त्र-युद्ध के बजाय नैतिक-शस्त्र प्रकट हुआ। उस समय मैं राजभक्त था, क्योंकि मेरा यह दृढ़ विश्वास था कि सब मिलाकर अंग्रेज़ी साम्राज्य की प्रवृत्तियों का परिणाम हिन्दुस्थान और उसी तरह मानव-जाति के लिए लाभदायक ही है। महायुद्ध का आरम्भ होते ही मैं इंग्लैण्ड आया और उसमें कूद पड़ा, और बाद को जब मुझे 'प्लूरिसी' की बीमारी बढ़ जाने से विवश होकर हिन्दुस्थान को जाना पड़ा तो वहाँ जाकर भी मैंने अपनी ज़िन्दगी तक को ख़तरे में डालकर रंगरूट भरती करने का काम किया, जिसे देखकर मेरे कई मित्र काँप उठे थे। सन् १९१९ में जब रौलेट ऐक्ट नामधारी काला क़ानून पास हुआ और प्रमाणित अन्यायों के दूर करने की हमारी साधारण प्राथमिक माँग तक को पूरा करने से सरकार ने इनकार कर दिया, तब मेरी आँखें खुलीं और भ्रम दूर हुआ। और इसलिए सन् १९२० में मैं बाग़ी बना। तबसे मेरी यह प्रतीति बढ़ती ही गई है कि जनता की प्रधान महत्त्व की वस्तुयें केवल बुद्धि को अपील करने अर्थात् समझाने-

बुझाने से नहीं मिलतीं, प्रत्युत् कष्ट-सहन के मूल्य में ख़रीदनी पड़ती हैं। कष्ट-सहन मनुष्यों का क़ानून है; और शस्त्र-युद्ध जंगल का। किन्तु जंगल के क़ानून की अपेक्षा कष्ट-सहन में विरोधी का हृदय-परिवर्तन करने और उसके कान जो दूसरी तरह बुद्धि क आवाज़ के खिलाफ़ बन्द रहते हैं उन्हें खोलने की अनन्त गुनी शक्ति रहती है। मैंने जितनी प्रार्थनायें की हैं और निराशा के होते हुए भी जितनी आशा मैंने रक्खी है, उतनी किसी ने न रक्खी होगी; और मैं इस निश्चित परिणाम पर पहुँचा हूँ कि हमें यदि कुछ वास्तविक काम करवाना हो तो केवल बुद्धि को सन्तुष्ट करना ही काफ़ी नहीं, हृदय को भी हिलाना चाहिए। बुद्धि की अपील मस्तिष्क को अधिक स्पर्श करती है, किन्तु हृदय को स्पर्श करने के लिए तो सहनशक्ति की ही आवश्यकता है। यह मनुष्य के अन्तर के द्वार खोलती है। मानव-जाति की विरासत तलवार नहीं, कष्ट-सहन है।"

[१०]

मेडम मोण्टेसोरी के साथ गाँधीजी की भेंट एक आत्मा के साथ आत्मा का सम्मिलन था। मेडम मोण्टेसोरी पर गाँधीजी का इतना गहरा प्रभाव पड़ा था, कि उन्होंने लिखा—"गाँधीजी मुझे तो मनुष्य की अपेक्षा आत्मा-रूप अधिक प्रतीत होते हैं। वर्षों से मैं उनका विचार

मोण्टेसोरी

कर रही थी। मैंने अपनी आत्मा से उन्हें समझने का प्रयत्न किया है। उनकी विनम्रता, उनकी मधुरता ऐसी है, मानों समस्त संसार में कठोरता नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। उन्होंने तीक्ष्ण सूर्य-किरण की तरह अपने विचारों को सम्पूर्ण रूप से व्यक्त किया, मानों बीच में कोई मर्यादा या बाधा है ही नहीं। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं जिन शिक्षकों को तैयार कर रही हूँ, यह माननीय व्यक्ति उन्हें बहुत सहायता पहुँचा सकेंगे। शिक्षकों को खुले हृदय के और उदार होना चाहिए; उन्हें अपनी आत्मा का परिवर्तन करना चाहिए, जिससे कि वे बालिग़ पुरुषों के कठोर और मनुष्य-जीवन को कुचल डालने वाले विघ्नों से पूर्ण संसार से बाहर निकल आ सकें। शिक्षकों के साथ इनकी यह मुलाक़ात मानवी बालकों का आध्यात्मिक रक्षण करने में हमारी सहायक हो।" हमें बैठने के लिए गद्दी-तकिये दिये गये थे और आइलिंग्टन के ग़रीब किन्तु देव बालकों की तरह स्वच्छ और मधुर बालकों ने हिन्दुस्थानी तरीक़े से गाँधीजी को नमस्कार किया। वे सादी पोशाक पहने हुए थे और नंगे-पाँव थे। नमस्कार के बाद इन बालकों ने जो काम सीखे थे, उन्हें दिखा कर हमारा मनोरंजन किया। तालबद्ध हलन-चलन, ध्यान और इच्छा-शक्ति के अनेक प्रयोग, बजाने के बाजे और अन्त में मौन-साधन के महत्वपूर्ण प्रयोग कर दिखाये। उपस्थित सब लोगों पर इसका

गहरा असर हुआ। अपने बालकों से घिरी मेडम मोण्टेसोरी में मुझे बालकों के लिए मुक्त हुए संसार के दर्शन हुए। ईश्वर की सृष्टि में अकेले बालक ही अधिकतर उसके अनुरूप होते हैं। मेडम मोण्टेसोरी की शिक्षण-विषयक महत्त्वाकांक्षा पूरी-पूरी सफल न हो तो भी उन्होंने बालकों में जो पूजने योग्य है, उसकी ओर माता-पिताओं का ध्यान आकर्षित करके मानव-जाति की असाधारण सेवा की है। उन्होंने मधुर संगीतमय इटालियन भाषा में गाँधीजी का स्वागत किया और उनके मन्त्री ने अंग्रेजी में उसका अनुवाद किया। यह अनुवाद भी पूर्ण रूप से हर्षोत्पादक था—

"मैं अपने विद्यार्थियों और यहाँ एकत्र मित्रों को सम्बोधित कर कहती हूँ कि मुझे आपसे एक अत्यन्त महत्त्व की बात कहनी है। गाँधीजी की आत्मा—जिस महान् आत्मा का हमें इतना अनुभव है वह—उनके शरीर में मूर्त्त रूप से आज हमारे सामने यहाँ मौजूद है। जिस वाणी के सुनने का सौभाग्य अभी हमें मिलने वाला है, वह वाणी आज संसार में सर्वत्र गूँज रही है। वह प्रेम से बोलते हैं, और केवल वाणी से ही उसे व्यक्त नहीं करते, प्रत्युत् उसमें अपना समस्त जीवन भर देते हैं। यह ऐसी बात है, जो कभी-कभी ही हो सकती है; और इसलिए जब कभी यह होती है तब प्रत्येक मनुष्य उसे सुनता है।

"श्रद्धेय महानुभाव ! मुझे इस बात का गर्व है कि जिस वाणी में आज यहाँ आपका स्वागत हो रहा है, वह लेटिन जातियों में से एक की है—पश्चिम के धार्मिक विचारों के उद्गमस्थान रोम, भव्य रोम की है । मैं चाहती हूँ कि यदि आज पूर्व के सम्मान में पश्चिम के समस्त विचारों और जीवन को मैं मूर्त्त-रूप से यहाँ व्यक्त कर सकी होती तो कितना अच्छा होता ! मैं आपके सामने अपने विद्यार्थियों को पेश करती हूँ । यहाँ उप-स्थित केवल मेरे विद्यार्थी ही नहीं हैं; बरन् उनमें मेरे मित्र, मित्रों के मित्र और उनके सगे-सम्बन्धी भी हैं । किन्तु मेरे विद्यार्थियों में अनेकानेक राष्ट्रों के लोग हैं । यहाँ एकत्र हुए लोगों में उदार-हृदय अंग्रेज़ शिक्षक हैं और अनेक भारतीय विद्यार्थी हैं; इटालियन, डच, जरमन, डेन्स, जेकोस्लोवेकियन, स्वीड्स, आस्ट्री-यन, हंगेरियन, अमेरिकन और आस्ट्रेलियन विद्यार्थी हैं और न्यूज़ीलेण्ड, दक्षिण अफ्रिका, कनाडा तथा आयर्लैण्ड से आये हुए विद्यार्थी भी हैं । बालकों के प्रति प्रेम के ही कारण वे सब यहाँ आये हैं ।

"हे महानुभाव ! संसार की सभ्यता और बालकों के विचार की शृङ्खला से ही हम एक-दूसरे से आपस में जुड़े हुए हैं और इसी कारण हम सब आज आपके समक्ष आये हैं । क्योंकि हम बालकों को जीवित रहना सिखाते हैं— वह आध्यात्मिकजीवन कि

केवल जिसके आधार पर ही संसार की शान्ति स्थापित हो सकती है। और यही कारण है कि हम सब यहाँ जीवन की कला के आचार्य और हमारे सबके—विद्यार्थियों और उनके मित्रों के—गुरु की वाणी सुनने के लिए एकत्र हुए हैं। आज का दिन हमारे जीवन में चिरस्मरणीय होगा। ये २४ छोटे अंग्रेज़ बालक, जिन्होंने स्वयं तैयारी कर आपके सामने काम दिखाया, भविष्य में जो नया बालक होने वाला है, उसके जीते-जागते चिह्न हैं। हम सब आपके शब्द की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

गाँधीजी की हृद्‌तन्त्री के सभी तारों को हिला देने में इसका बड़ा असर हुआ और इस हृत्कंपन में से इस महान् अवसर के योग्य संगीत निकला, जो संसार के सब भागों के निवासी माता-पिता और बालकों के लिए एक सन्देश भी था और मुक्तिपत्र भी। मैं उसे यहाँ पूरा-पूरा देता हूँ—

"मेडम! आपने मुझे अपने शब्द-भार से दबा दिया है। मुझे अत्यन्त नम्रतापूर्वक यह स्वीकार करना ही चाहिए कि आपका यह कहना सर्वथा सत्य है कि कितना ही कम क्यों न हो, किन्तु मैं अपने जीवन के प्रत्येक अंग में प्रेम प्रकट करने का प्रयत्न करता हूँ। अपने सृष्टा का, जो मेरी दृष्टि में सत्य-रूप है, साक्षात्कार करने क लिए

माता-पिता की ज़िम्मेदारी

अधीर हूँ और अपने जीवन के आरम्भ में ही मैंने यह शोध की कि यदि मुझे सत्य का साक्षात्कार करना हो, तो मुझे अपने जीवन तक को खतरे में डाल कर प्रेम-धर्म का पालन करना चाहिए; और ईश्वर ने मुझे बालक दिये हैं, इससे मैं यह शोध भी कर सका कि प्रेम-धर्म तो बालक ही सबसे अधिक समझ सकते हैं और उनके द्वारा ही वह अधिक अच्छी तरह सीखा जा सकता है। यदि उनके बेचारे माता-पिता अज्ञान न होते तो बालक सम्पूर्ण निर्दोष रहते। मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि जन्म से ही बालक बुरा नहीं होता। यह जानी-बूझी बात है कि बालक के जन्म के पहले और उसके बाद उसके विकास में यदि माता-पिता अच्छी तरह आचरण करेंगे, तो स्वभाव से ही बालक सत्य और प्रेम का पालन करेंगे; और अपने जीवन के आरम्भ-काल में ही, जबसे मुझे यह बात मालूम हुई तभी से, मैंने उसमें धीरे-धीरे किन्तु सुस्पष्ट हेरफेर करना शुरू कर दिया।

"मेरा जीवन कितने और कैसे-कैसे तूफानों में होकर गुज़रा है, मैं यहाँ उसकी चर्चा नहीं करना चाहता। किन्तु मैं सचमुच पूरी-पूरी नम्रता से इस बात का साक्षी हो सकता हूँ कि जितने अंश में मैंने विचार, वाणी और कार्य में प्रेम प्रकट किया, उतने ही अंशों में मैंने 'न समझी जा सकने जैसी' शान्ति अनुभव की है। मुझमें यह ईर्षा-योग्य शान्ति देखकर मेरे मित्र उसे समझ

न सके और उन्होंने मुझसे इस अमूल्य धन का कारण जानने के लिए प्रश्न किये हैं। मैं इस सम्बन्ध में उन्हें केवल इससे अधिक कुछ नहीं बता सका कि यदि मित्रों को मुझमें इतनी शान्ति दिखाई देती है, तो उसका कारण अपने जीवन के सबसे महान् नियम का पालन करने का मेरा प्रयत्न है।

"जब सन् १९१५ में मैं भारत पहुँचा, तब सबसे पहले मुझे आपके कार्यों का पता चला। अमरेली में मैंने मोण्टेसोरी-प्रणाली पर चलने वाली एक छोटी पाठशाला देखी। उसके पहले मैं आपका नाम सुन चुका था। मुझे यह जानने में जरा भी कठिनाई न हुई कि यह पाठशाला आपकी शिक्षण-पद्धति के सिर्फ ढाँचे का ही अनुसरण करती थी, तत्त्व का नहीं। और यद्यपि वहाँ थोड़ा-बहुत प्रामाणिक प्रयत्न भी किया जाता था, किन्तु साथ ही मैंने यह भी देखा कि वहाँ अधिकांश में दिखावट ही अधिक थी।

"इसके बाद तो मैं ऐसी अनेक पाठशालाओं के सम्पर्क में आया और जितने अधिक सम्पर्क में आया उतना ही अधिक यह समझने लगा कि बालकों को यदि

शिक्षक का स्वभाव

प्रकृति के, पशुओं के योग्य नियमों द्वारा नहीं प्रत्युत् मनुष्य के गौरवरूप नियमों द्वारा शिक्षा दी जाय तो उसका आधार भव्य और सुन्दर है। बालकों को जिस

प्रकार शिक्षा दी जाती थी, उससे मुझे स्वभावतः ही ऐसा प्रतीत हुआ कि यद्यपि उन्हें अच्छी तरह शिक्षा नहीं दी जाती थी, फिर भी उसकी मूल पद्धति तो इन मूल नियमों के अनुसार ही निर्धारित की गई थी। इसके बाद तो मुझे आपके अनेक शिष्यों से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनमें के एक ने तो इटली की यात्रा को जाकर स्वयं आपका आशीर्वाद भी प्राप्त किया था। मैं यहाँ इन बालकों और आप सबसे मिलने की आशा रखता था और इन बालकों को देखकर मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ है। इन बालकों के सम्बन्ध में मैंने कुछ जानने का प्रयत्न किया है। यहाँ मैंने जो-कुछ देखा है, उसकी एक झलक बरमिंघम में भी दिखाई दी थी। वहाँ एक पाठशाला है। इस शाला में और उसमें भेद है। किन्तु वहाँ भी मानवता को प्रकाश में लाने का प्रयत्न होता दिखाई देता है। यहाँ भी मैं वही देखता हूँ कि छुटपन से ही बालकों को मौन का गुण समझाया जाता है। और अपने शिक्षक के संकेत मात्र से, सुई गिरे तो उस तक की आवाज़ सुनाई दे जाय, इतनी शान्ति से किस तरह एक-के-पीछे-एक बालक आया, यह देखकर मुझे अनिर्वचनीय आनन्द होता है। तालबद्ध हलन-चलन के प्रयोग देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ; और जब मैं इन बालकों के प्रयोगों को देख रहा था, मेरा हृदय भारत के गाँवों के अधभूखे बालकों के प्रति दौड़

गया। मैंने अपने दिल में कहा, 'यह पाठ मैं उन्हें सिखाऊँ, जिस रीति से इन्हें शिक्षा दी जाती है उस रीति से मैं उन्हें शिक्षा दे सकूँ, क्या यह सम्भव होगा ?' भारत के ग़रीब-से-ग़रीब बालकों में हम एक प्रयोग कर रहे हैं। यह कहाँ तक सफल होगा, मैं नहीं जानता। भारत के झोंपड़ों में रहनेवाले बालकों को सच्ची और शक्तिशाली शिक्षा देने का प्रश्न हमारे सामने है और हमारे पास कोई साधन नहीं है।

"हमें तो शिक्षकों की स्वेच्छापूर्वक दी गई मदद पर आधार रखना पड़ता है। और जब मैं शिक्षकों को ढूँढता हूँ, तो बहुत थोड़े मिलते हैं—ख़ास कर जो बालकों के मानस को समझें, उनमें जो विशेषता हो उसका अभ्यास करें और फिर उन्हें उनके आत्मसम्मान के भरोसे मानों छोड़ देते हों, इस प्रकार उन्हें अपने ही शक्ति-साधनों पर निर्भर बना देवें और उनमें जो उत्तम शक्ति हो उसे प्रकट करें। सैकड़ों, हज़ारों बालकों के अनुभव पर से मैं कहता हूँ; और आप विश्वास करें कि बालकों में हमारे से भी अधिक सम्मान का ख़याल होता है। यदि हम नम्र बनें तो जीवन का सबसे बड़ा पाठ बड़े विद्वानों के पास से नहीं, परन्तु बालकों से सीखेंगे। ईसा ने जब कहा कि बालकों के मुख से बुद्धिपूर्ण बातें निकलती हैं, तो इसमें उन्होंने उच्चतम और भव्य सत्य को प्रकट किया

शिक्षक के रूप में बालक

था। मेरा उसमें सम्पूर्ण विश्वास है और मैंने अपने अनुभव में यह देखा है कि यदि बालकों के पास हम नम्रतापूर्वक और निर्दोष होकर जायँगे तो उनसे जरूर बुद्धिमानी की शिक्षा पायेंगे।

"मुझे अब आपका और समय नहीं लेना चाहिए। अभी जिस प्रश्न का विचार मेरे मन में है वह जिन करोड़ों बालकों के बारे में मैंने आपसे ज़िक्र किया है, उनमें उनके उत्तम गुणों के प्रकट करने का प्रश्न है। परन्तु मैंने एक पाठ सीखा है। मनुष्य के लिए जो बात असम्भव है वह ईश्वर के लिए तो बच्चों का खेल मात्र है; और उसकी सृष्टि के प्रत्येक अणु के भाग्य-विधाता परमेश्वर में यदि हमारी श्रद्धा हो तो प्रत्येक बात सम्भव हो सकती है। इसी अन्तिम आशा के कारण मैं अपना जीवन बिता रहा हूँ, और उसकी इच्छा के अधीन होने का प्रयत्न करता हूँ। इसलिए मैं फिर यह कहता हूँ कि जिस प्रकार आप बालकों के प्रेम से अपनी अनेकों संस्थाओं के द्वारा बालकों को उत्तम बनाने के लिए शिक्षा देने का प्रयत्न करती हैं उसी प्रकार मैं भी यह आशा करता हूँ कि धन-वान और साधन-सम्पन्न लोगों को ही नहीं परन्तु ग़रीबों के बालकों को भी इस प्रकार की शिक्षा देना सम्भव होगा। आपने जो कहा सो बिलकुल सच है कि यदि हमें संसार में सच्ची शान्ति स्थापित करना है, युद्ध के साथ सच्चा युद्ध करना है, तो हमें

उसका बालकों से ही आरम्भ करना होगा। यदि वे स्वाभाविक और निर्दोष रूप से वृद्धि पावें तो हमें न लड़ना होगा, न फिजूल प्रस्ताव करने होंगे, परन्तु जाने-अनजाने संसार को जिस शान्ति और प्रेम की भूख है वह प्रेम और शान्ति दुनिया के कोने-कोने में जबतक फैल न जाय तबतक हम प्रेम से प्रेम और शान्ति से शान्ति प्राप्त करते जायँगे।"

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर के

प्रकाशन

१—दिव्य-जीवन ।=)
२—जीवन-साहित्य (दोनों भाग) १=)
३—तामिलवेद ॥)
४—शैतान की लकड़ी ॥=)
५—सामाजिक कुरीतियाँ ॥।)
६—भारत के स्त्री-रत्न (दोनों भाग) १॥-)
७—अनोखा ! १।=)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ॥।-)
९—यूरोप का इतिहास (तीनों भाग) २)
१०—समाज-विज्ञान १॥)
११—खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र ॥≡)
१२—गोरों का प्रभुत्व ॥=)
१३—चीन की आवाज़ ।-)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह (दो भाग) १।)
१५—विजयी बारडोली २)
१६—अनीति की राह पर ।≡)
१७—सीताजी की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्या-शिक्षा ।)
१९—कर्मयोग ।=)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यावहारिक सभ्यता ।)॥
२२—अँधेरे में उजाला ।≡)
२३—स्वामीजी का बलिदान ।-)
२४—हमारे ज़माने की गुलामी ।)
२५—स्त्री और पुरुष ॥)
२६—घरों की सफाई ।) (अप्राप्य)
२७—क्या करें ? (दो भाग) १॥=)
२८—हाथ की कताई-बुनाई (अप्राप्य) ॥=)
२९—आत्मोपदेश ।)

३०—यथार्थ आदर्श जीवन
(अप्राप्य) ॥-)

३१—जब अंग्रेज नहीं
आये थे— ।)

३२—गंगा गोविन्दसिंह
(अप्राप्य) ॥=)

३३—श्रीरामचरित्र १।)

३४—आश्रम-हरिणी ।)

३५—हिन्दी-मराठी-कोष २)

३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)

३७—महान् मातृत्व की
ओर— ॥।=)

३८—शिवाजी की योग्यता ।=)
(अप्राप्य)

३९—तरंगित हृदय ॥)

४०—नरमेध ! १॥)

४१—दुखी दुनिया ॥)

४२—ज़िन्दा लाश ॥)

४३—आत्म-कथा
(दो खण्ड) २)

४४—जब अंग्रेज़ आये
(ज़ब्त) १।=)

४५—जीवन-विकास
अजिल्द १।) सजिल्द १॥)

४६—किसानों का बिगुल =)
(ज़ब्त)

४७—फाँसी ! ॥)

४८—अनासक्तियोग तथा
गीताबोध ।)

४९—स्वर्ण-विहान (नाटिका)
(ज़ब्त) ।=)

५०—मराठों का उत्थान
और पतन २॥)

५१—भाई के पत्र—
अजिल्द १॥) सजिल्द २)

५२—स्व-गत— ।=)

५३—युग-धर्म (ज़ब्त) १=)

५४—स्त्री-समस्या
अजिल्द १॥।) सजिल्द २)

५५—विदेशी कपड़े का
मुक़ाबला ॥=)

५६—चित्रपट ।=)

५७—राष्ट्रवाणी ॥=)

५८—इंग्लैण्ड में महात्माजी १)

५९—रोटी का सवाल १)

६०—दैवी सम्पद् ।=)